THE

VIZIANAGRAM SANSKRIT SERIES

UNDER THE SUPERINTENDENCE OF

ARTHUR VENIS M. A. Oxon.

PRINCIPAL, SANSKRIT COLLEGE, BENARES.

THE

VEDÂNTAKALPATARUPARIMALA

OF

APPAYADÎKSHITA

EDITED BY

RÂMASÂSTRÎ TAILANGA

PROFESSOR, SANSKRIT COLLEGE, BENARES.

VOL. XII.

Part III.



PRINTED, PUBLISHED AND SOLD BY

E. J. LAZARUS & Co., BENARES.

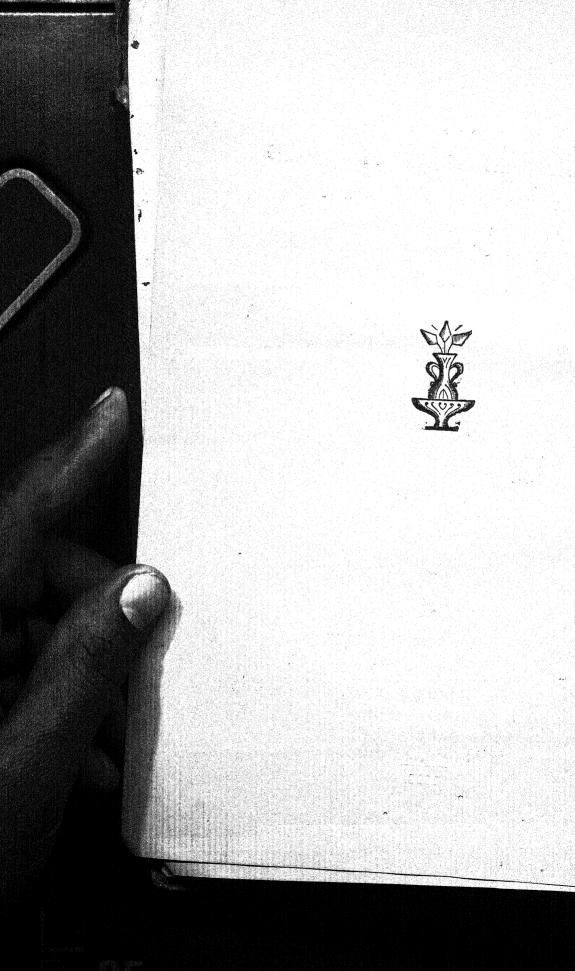
WAY BE HAD ALSO FROM GANESH DAS AND CO., CHOWK, BENARES:

JAYESTHARAM MUKUNDJI AND CO., BOMBAY:

OTTO HARRASSOWITZ AND M. SPIRGATIS, LEIPZIG:

LUZAC AND CO., LONDON.

1898.



वेदान्तकल्पतस्परिमलः।

भगवद्मलानन्द्यतीन्द्रविरचितवेदान्तकल्पतरुव्याख्यारूपः श्रद्धैतविद्याचार्यसकलतन्त्रनिबन्धकृच्छीमद्प्यदीत्तित-विरचितः।

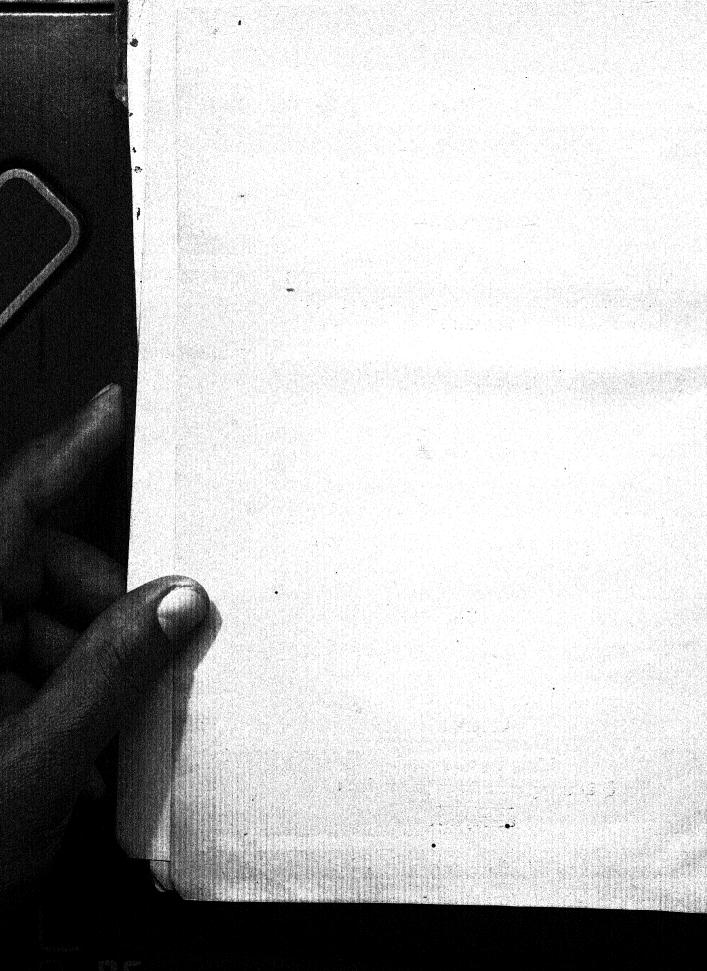
तच तृतीया भागः तृतीयाध्यायमारभ्य चतुर्थाध्यायपर्यन्तः ।

वाराणसेयराजकीयप्रधानसंस्कृतपाठशालायां साहित्यशास्त्राध्यापकेन मानवल्ल्यपाह्नतेलङ्गरामशास्त्रिणा सपरिष्कारं संशोधितः।



कारयाम् ।

मेडिकल् हाल् नाम्वि यन्त्रालये ई. जे. लाजरम् कम्पन्याच्येन मुद्रयित्वा प्रकाशितः । केकमसंबत् १६५४।



श्रीः । विज्ञापनम् ।

श्रहो सुदिनाहमद्य यदिता वत्सरचयात् पूर्व वेदान्तकल्पतहनामकेन भामतीव्याख्यानेन सह समारभ्यास्य तह्याख्यानरत्नस्य परिमलस्य मुद्रग्रश्चायमिविच्छेदेनानुवर्तितनिजकार्ये। महत्तरयारनयार्यन्थ्येः समाप्रिविषये नानाविध्यत्र्यूहसंदे।हशङ्कातङ्कितिचतः कथं कथमपि धृतधेर्ये। उस्खलन् स्वकृतेच्यात्क्रमश्चा विदुषां दृग्गे।चरतामुपनीय संपूर्णं कल्पतहमस्मिन्नेव वत्सरे, द्वितीयाध्यायान्तं परिमलयन्यं च खर्ण्डद्वयेन १६५२ वैक्रमवत्सरे, प्रभवामि किल साम्प्रतं परिमलस्य ग्रन्थसंपूर्तिभूषितं तृतीयं खर्ण्डमपि तथा कर्तुम्, समरामि चानन्टपरवशः । गति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षश्चतादपी नति वालमी-कीयां लीकिकीं गायाम् ।

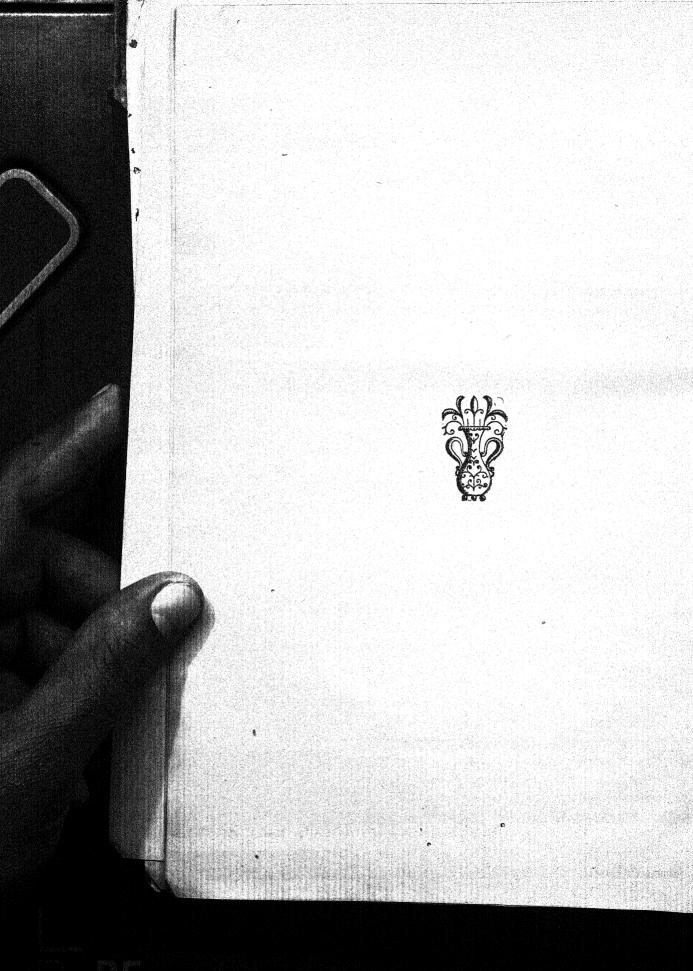
त्रवापि भागे पूर्वयारिवाऽधिकरणसूचीं, शुद्धिपत्तं, कल्पतसृष्टुष्ठपः ङ्त्यकांश्च पार्श्वे, निवेश्यावशिष्टानपि विषयांस्तयैव प्रदर्शितवानस्मि ।

मन्ये तावदधुना निजकर्तव्यमेकमेव यद्मिखिलान्तरायदूरीकरणपुर-स्सरं करुणया वितीये हस्तावलम्बं पूरितवते। निजमनारथं भगवते। निखि-लान्तर्यामिणा विश्वेशितुः प्रमुक्तकगठं धन्यवादीपगानं नाम ।

उपसंहारे चाच कार्ये पुस्तकवितरणादिना दत्तसाहाय्यानां महाशया-नामुपकारं श्लाघं श्लाघं प्रार्थये निर्मत्सराज्ञिखिलान् विपश्चिदपश्चिमानच यथावसरं नयनापेणपरिश्रमाङ्गीकारेण मामकप्रयाससफलीकरणायेति । श्रम् ।

वाराग्रस्याम् संवत् १६५४ । मानवन्त्युषाहुस्तेलङ्ग-रामशास्त्री ।





तृतीयाध्यायप्रथमपादादिचतुर्थाध्यायान्तभागाधिकरणसूची।

. तृतीयाध्यायस्य प्रथमपादे ।

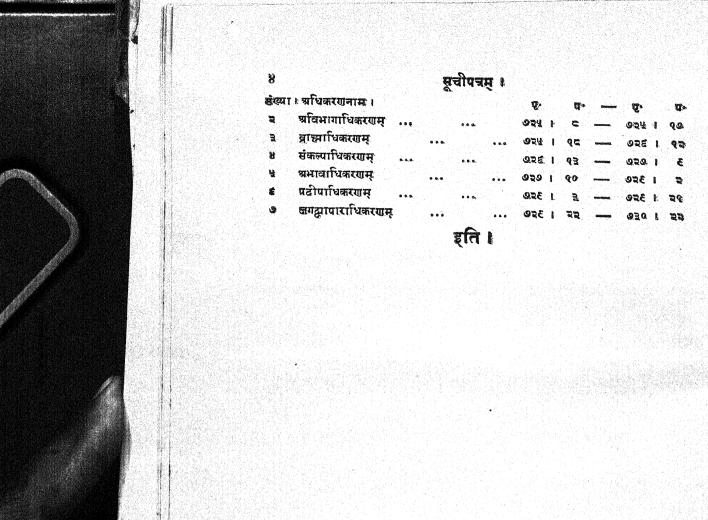
| संख्य | । श्रधिकरणनाम । | | | | | यु• | | ů٠ | | ű. | ů٠ |
|-------|-----------------------------|----------------|--------|----------|-------|-------------|---|----------|---|---------------|------------|
| Q | तदन्तरप्रतिपत्त्यधिकरण | म् | | | | ଌଵ | 1 | Q | | 1 338 | 3 |
| ঽ | कतात्ययाधिकरग्रम् | | | | | 338 | 1 | ន | | 1 638 | 39 |
| 3 | श्रनिष्टादिकार्यधिकरग्रा | Į. | ••• | | 0 0 0 | e38 | 1 | 20 | | 8£¢ 1 | 36 |
| 8 | साभाव्यापत्यधिकरणम् | | | • • • | | 338 | 1 | Q | - | 1 338 | ey. |
| ч | नातिचिराधिकरणम् | | | | | 338 | 1 | হর | | યું વધુ ન | ÐŲ. |
| E | श्रन्याधिष्ठिताधिकरणम् | Į | | | | สังฮ | ı | Q | | ५०७ । | 23 |
| | | र ुतीया | ध्याय | स्य द्वि | तीयप | ादे । | | | | | |
| Q | संध्याधिकरणम् | | | | | ५० ८ | 1 | Q | - | 465 1 | 5 € |
| 2 | तदभावाधिकरणम् | | | *** | | યુર્વ | | Q | - | 498 1 | 127,10 |
| 3 | कर्मानुस्रतिग्रब्दविध्यी | धकरण | म् | | | યુવ્દ | 1 | QB | - | 450 I | |
| R | मु ग्धाधिकरणम् | | | | | 420 | ı | 6.5 | | ध्रव् । | `` 2 |
| ч | उभय निङ्गाधिकरग्रम् | | | | | હર્ | ı | 3 | | 423 1 | È |
| É | प्रकृतितावस्वाधिकरणम् | | | ••• | | 453 | | S | | પૂર્ય | |
| | į | चृ तीय | ाध्याय | स्य तृः | तीयप | हि । | | | | | |
| 9 | सर्ववेदान्तप्रत्ययाधिकरा | U+Į | | | | પ્રરહ | 1 | Q | | પ્રક્ષવા | 90 |
| 2 | उपसंहाराधिकरणम् | | | ••• | | 486 | 1 | QQ | | 483 1 | |
| 3 | श्रन्यथात्वाधिकरणम् | | ••• | | | 483 | 1 | 98 | | 443 1 | • |
| B | व्याप्त्यधिकरग्रम् | | | | | 443 | 1 | 3 | | 448 1 | |
| М | सर्वाभेदाधिकरणम् | | 0-9-0 | | • • • | AAE | 1 | 65 | - | प्रप्रह । | |
| E | ग्रानन्दाट्यधिकर णम् | | | | | યુપુદ | 1 | 65 | | ४ ६० । | |
| ૭ | श्राध्यानाधिकरणम् | | 509 | | | 4E0 | | QE | | | 98 |
| • | भ्रात्मरहोत्यधिकरणम् | ••• | | | | પદવ | ı | Qų | - | 463 1 | হ9 |
| ε | कार्याच्यानाधिकरणम् | | | | | 4E8 | 1 | q | | 468 1 | |
| Q0 | समानाधिकरणम् | | | | | นสช | 1 | হয় | | ueu i | QE |
| 99 | मंबन्धाधिकरणम् | | ••• | | | પ્રદય | ı | 60 | | 466 1 | 4 |
| ବ୍ୟ | संभत्यधिकरणम् | | | ••• | | NEE | ı | 3 | - | 456 1 | ی |
| 63 | पुरुषविद्याधिकरग्रम् | | ••• | | ••• | 488 | 1 | 9 | | पहरू । | 98 |
| 98 | वेधाद्यधिकरणम् | | | | | 450 | ı | QY | | ५८७ । | E |
| qu | ष्टान्यधिकरणम् | | | | | んどつ | ı | y. | | 456 1 | 28 |
| QE | सां यरायाधिकरणाम् | | | | | 450 | 1 | Q | | 460 I | 9 |
| ବ୍ୟ | गतेरर्थवस्वाधिकरणम् | | | | .,, | પ્રદ૦ | 1 | ~ | - | 4£0 I | 96 |

| | ર | | | 200 Ju | | | | | | |
|--|-------------------------------|--|---------|---------|---------|-------------|--------------|------------|--------------|-----------|
| | | ।। प्रधिकरणनासः। | | सूचीप | त्रम् । | | | | | |
| | 95 | णाः अर्थायकारणनासः । श्रानियमाधिक्ररणास् | | | | ₽. | | 7· | - G. | |
| | 98 | श्रानयमा धक्ररणम् यावदधिकाराधिकरणम् | | •• | • | 4 | 1 03 | {o — | – પ્રદેશ | 19 |
| | 20 | ्याचदायजारा। यजरणम् श्रद्धारथ्यधिक्रासम् | | •• | •• | | | \8 | - 485 | |
| | 20 | 엄마 하늘이 없다고 하는 것이 되었다. | ••• | • 4 | • | | | · | - 463 | |
| | 25 | इयदाधकरग्रम् श्रन्तरत्वाधिकरग्रम् | • | 4.6 | ••• | | | E | - A63 | 7 |
| Note that the second of | 23 | व्यतिहाराधिक्र रणम् | *** | • • | • | | E3 1 9 | | - 4£8 | |
| | - 28 | मत्याद्यधिकरणम् सत्याद्यधिकरणम् | • | •• | •• | , પુર | | E | - 468 | 1 |
| | 24 | कामाट्यधिकरणम् | 444 | •• | • | | | · - | - પુશ્પ | 1 |
| | 76 | ग्रादराधिकरणम् | | •• | • • • | યુદ | | g — | · પ્રસ્દ | |
| | | तिवर्धारणाधिकरणम् | ••• | • • • | | 3.5 | | | . ४१८ | |
| | 56 | प्रदानाधिकरणम् | | • • | ••• | 48 | | 8 | . E00 | 1 9 |
| | 28 28 | प्रदाना। यकारणम् लिङ्गभूयस्त्वाधिकारणम् | | • • | | E | | • | E08 | |
| | 30 30 | ालङ्गमूयस्त्रवाधिकारणम् येकात्म्याधिकरणम् | • (| • • | ••• | €0 | | s — | . દ્વર | 1 9 |
| | 30 39 | यक्षात्म्या यजारणम् ग्रह् षवबद्धाधिकरणम् | *** | • • • | | £0 | 219 | £ — | Edi | 1 98 |
| | 31 32 | भूमज्यायस्त्वाधिकरणम् | • | • | ••• | Eq | | t — | EGE | ! ! |
| | | "다 보는 BATH 는 일 경우를 하지 않는 것이 하고 있다. 그 사람은 | ••• | ••• | | E € | E I I | f — | E 95 | 1 . |
| | 33 | शब्दादिभेदाधिकरग्राम् | ٩. | • | • • • | €6 | 5 1 1 | E | द 98 | 1 6 |
| | 38 | विकल्पाधिकरणम् | *** | ••• | | દ્દવ | 13 | : — | ह५€ | 1 62 |
| 9 | 3 4 | काम्याधिकरणम् | • | • | ••• | ٤q | € Q: | : | \$9.€ | EP 1 |
| | 36 | यथात्रयभावाधि करग्रम् | | ••• | | E 9 | 1913 | ı — | ६२२ | । १६ |
| | | ਰ | तीयाध्य | ायस्य : | वतुर्घप | ाद्रे । | | | | |
| 4 | 9 | पुरुवार्थाधिकरणम् | | | | สอจ | | | ens 1 | 98 |
| | 2 | 7777767675777 | | | | 6 26 | El Quy | | ERRI | 10 |
| The same of the sa | 3 | स्तुतिमात्राधिकरसम् | ••• | | | ERR | | | E49 1 | u |
| | Я | mfi warfirana | | | | Eyq | | | E42 1 | 53 |
| | | ग्रानीन्धनाद्यधिकरग्राम् | | | | | | | | |
| | • | minare | | | ••• | Eds | 1 68 | | EY3 I | 4/9/45 1. |
| | | सर्वाचानुमत्यधिकरणम् | | | | | 1 99 | | EAR I | Set line |
| | ς | 22 | | | | | 1 Q | 46.00 | E44 1 | |
| | ŧ | विधुराधिकरग्रम् | | ••• | | | 1 99 | | 84C I | - 4 |
| | 90 | तट्यूताधिकरणम् | | | | EUE | | | eae i | |
| | 99 | भ्राधिकारिकाधिकर ग्र म् | | | | | | | | ¥ |
| | 92 | बहिरधिकरणम् | • • • | | ••• | EE0 | 1 E | | ggo I | 3 |
| | EP | स्वाम्यधिकरग्राम् | | *** | | | 1/9 | | EEO I | |
| | 98 | सहकार्यन्तरविध्य धिकर ग्राम् | | | | | | | E90 | |
| | 94 | श्वनाविष्काराधिकरणम् | | ••• | | | 1 93 | | | 76 |
| | the state of the state of the | प्रेष्टिकाधिकरणम् | | | ••• | E 96 | | | 595 I | |
| | 9.9 | मुक्तिफलाधिकरणम् | | | | € 99 | | - | E9C | W |

| | | सू | चोपत्रा | म् । | | | | | ą |
|------------|--|------------------|---------|--------|-------------------|----------|--------------------|---------------|------------|
| संख्या | । श्रीधकरणनाम । | | | | ų. | ਧ∙ | | ď. | ₹. |
| | चत् | र्याध्या | यस्य ! | प्रथमप | ादे । | | | | |
| q | त्रावृत्यधिकरणम् | | | | E9E 1 | q | - | ecu i | १८ |
| 3 | भात्मत्वो षासनाधिकर ग्र म् | -40 | | ••• | 8 4 1 | 39 | _ | EC4 1 | 5.5 |
| 3 | प्रतीकाधिकरणम् | | 48-4 | | ECA I | 23 | | EC9 | 93 |
| ¥ | ब्रह्मदृष्ट्यधिक रणम् | ••• | | | EC0 | 98 | - | E44 1 | • |
| ч | श्रादित्यादिमत्यधिकरणम् | | | | 8CC 1 | ε | | हर्र । | 9 도 |
| Œ | श्रामीनाधिकरणम् | | | ••• | 1 933 | 39 | | 1 <i>6</i> 33 | 3 |
| 8 | ण्काग्रताधिकरणम् | | | | E&2 1 | 8 | - | EE2 1 | 90 |
| • | श्रा प्राय णाधिकर ग्रम् | ••• | | | €€2 I | 99 | | EE8 1 | 6.5 |
| Έ. | तदधिगमाधिकरणम् | | • • • | | ह्र । | ЕŞ | | E88 1 | 23 |
| QO | द्वतरासंघ्लेषाधिकरणम् | | | | EE8 1 | 28 | | eey i | ૧૬ |
| ହଦ | ग्रनारब्धकार्याधिकरणम् | | ••• | | EE9 1 | 3 જ | - | EE9 1 | 98 |
| Q R | श्रमिक्होत्राद्यधिकरणम् | | | ••• | 1 033 | 94 | | 88E 1 | 8 |
| 63 | विद्याज्ञानसाधनत्वाधिकरग्र | स् | ••• | | 1 333 | ų | | ७०९ । | ą |
| ୧୪ | च तरचपग्राधिकरग्रम् | • • • | | • • • | 906 1 | 3 | ********** | ७०९ । | 20 |
| | चत्रं | ोध्याय | ास्य हि | दुतीयः | गादे । | | | | |
| Q. | वागधिकरणम् | | ••• | | 305 I | q | - Charles (Marie) | 302 I | 20 |
| 2 | मने।धिकरणम् | | | | 305 1 | 20 | | 305 I | 28 |
| 8 | श्रध्यद्वाधिकरणम् | | ••• | | 303 1 | Q | | 90E 1 | 28 |
| ¥ | भारत् युपक्रमाधिकरणम् | 960 | | | 30E | 54 | | 909 | 29 |
| ч | संसा रव्यवदेशाधिकरणम् | | | | 909 | 22 | | ७०० । | c |
| • | प्रतिषेधाधिकरणम् | | | ••• | ७१९ । | ε | | ७१४ । | ч |
| 9 | वागादिलयाधिकरणम् | | •.• | | ७१४ । | E | | ७५४ । | 95 |
| E | श्रविभागाधिकरणम् | | | | ବ୍ୟ । | 39 | | कड्र । | 22 |
| ε | सदीकोऽधिकरणम् | | 8 | | ୬୧୫ । | 53 | | ७ १५ । | ବ୍ୟ |
| 90 | रभयधिकरणम् | ••• | | | ૭૧૫ ા | qc | - | 99E 1 | 3 |
| Q Q | दव्विणायनाधिकरणम् | | ••• | | 998 1 | 3 | · | 998 1 | E |
| | चतुः | धै ।ध्याः | षस्य त् | गुतीयः | गदे । | | | | |
| • | श्रचिराद्यधिकरगाम् | | | | ୬୧७ । | Q | | 999 1 | _ |
| • | वार्व्वधिकरणम् | | | | 999 1 | ` & | | ७१८ । | |
| 3 | तिंद्विधिकरणम् | | | | 998 1 | ų. | | | 8 |
| 8 | श्रातिवाहिकाधिकर ग्रम् | | | | ७१६ । | 23 | | 390 | 33 |
| ų | कार्याधिकरणम् | | | | 920 I | 94 94 | | 920 | 98 _ |
| • | श्रप्रतीकालम्बनाधिकरणम् | | | | अप्रज्ञ । जन्म | e E | | 923 I | - E |
| | | <u>.</u> | | | | | | W48 1 | ₹• |
| | | | यस्य । | वतुथप | | | | | |
| • | संपद्माविभीवाधिकरण म् | | | | OZ4 I | • | | .e. uee. | |

.

.





शुद्धिपत्रम्।

युः । येः श्रशुद्धम् । शुद्धम् । श्रानन्दादयः ४८६। १९ म्रानन्दादय रंह्यास्या-४६५ । ९६ रहिणास्या-हिंसे।प-५०४। ६ हेसेप-दुवैत-५०७। ११ इवेत-५२३। ५ एचाति यचित ५३६। २ कार्कुः काका-संहरण-**४४९। २९ मंहारण**-निमित्तं ५४८। २५ निमितं सामर्थ्या-५४६। ९७ सामर्थाः दर्शिता थपर। २४ दशर्थिता-त्वादेश-भूपष्ठ । १५ त्व देरा-विद्धि युप्प । ७ विद्धि-५५६। ६ व्यवहारजनजननेन व्यवहारजननेन पहरा र यवाग्वा वा यवाग्वा विद्योक्य-यहर । १८ विद्यक्य-तदपि प्रदेश प्रतदीप ५६३। ९५ इत्य स ह्त्यस प्यविशि-थहा। १० प्यक्तिः-५६६। ६ व्याख्यानः व्याख्यानं **५६६। ९५ प्रकरणा**‡दि-प्रकरगा†दि-प्रसिद्धं व्र-५७९। ६ प्रसिद्धम्। दः ५७३। २३ इत्वन इत्वेन प्रवृत्ते-५७४। ७ प्रवृत्त-परिहारार्थ-५७७। २४ परिहार्थ-वर्मक-५७६। ९ वमक-**५८०। ९**९ पत्तके टि-पचकारि-वान्वेती-५८०। १२ वान्वती-प्रदय । ९६ प्रर्वेन्त्र-पूर्वतन्त्र-करणसि-५८८। १३ करणासि-पर०। १४ रिमेति। रिमेति

ए । पै श्रश्दम्। ५६८। ९३ दयद्ति ह०४। २५ वंडजीयत्वा ह० ह। १६ मां वि-EBE 1 99 त मा-ह्वा १ ताहुष ६००। २५ चास्ति ६१८। ५ व चात्मे-ह९ ह। १३ यधाकामं **६९६। ९५ विध्य**न्नेः ६९६। ९७ निमित्तेच्छया ६९६। ९७ त्यदाते हरह। २० प्रतिचप्तम् **६३५। ६ धार**णी ६३८। २७ यान ह३८। २७ च्वेनीचैः **६४३। २**९ घेतकेतु-६४६। १८ तत्सबन्धा-६५१। २१ चेतर्हि ६५६। ८ दशयति ६५६। २२ लेंकिका-६५६। ३६ करगीनेव ह्रह्र । ३ ग्यतुं ६७०। १२ समया ६७२। ९६ सामर्थात्। स-६७८। २ मादते ६७६। ७ भावाादति ६८०। १६ प्रमाणामेवेति ६८७। १६ प्रोच्चणाघारा-**६६९। ६ समस्तस्यति** ६६२ । १७ ज्जीविकत्व-

शुद्धम् । दय इति र्वर्जीयत्वा -मात्रं वि-तस्मा-ताद्वैष-वास्ति ष ग्रात्मे-यथाकार्म विध्याचे-निमित्ते च्छाया त्पद्येते प्रतिचिप्तम् धारियो। यानि चैर्नीचैः प्रवेतकेत्-तत्संबन्धा-चेतर्हि दर्भवति र्चेंाकिका-करगोनैव यित् समर्था सामर्थ्याल्ल-मादते भावादिति प्रमाणमेवेति प्रोच्चणाद्यारा-समस्तस्येति क्जीवकत्व-

टि॰ ६९६, ६५२ एष्ठये।रस्कत् सुवदिति सर्वपुस्तकानुरोधात् स्यापितं तत्र त्रिवृदिति सुद्धं स्यादिति प्रतिभाति ।

क्व चिन्सुद्रणे स्प्युटान्यचराणि न गुद्धिपत्रे विन्यस्तानि सुखाचेयात्वादिति बाध्यस् ।

प्रान्ता क्षशुद्धिपन्नम् ।

| - प्रमुद्धाः पङ्गी श्रङ्काः । | शुद्धाः ग्रङ्काः । | पह्नै। एष्ठे | श्रश्रद्धाः पङ्गी श्रद्धाः । | युद्धाः श्रद्धाः । | पह्नी। एछे |
|----------------------------------|-----------------------|--------------|---------------------------------|-----------------------|------------|
| वस ३७०। वद | 390 1 92 | વધ પ્રવહ | 898 1 24 | ં,, ા ૨૧ | १८ हरस |
| ब्रह्म १ | 9 1 33E | בב עשם | २४ "। २८ | ,, । २८ | 383 EF |
| 3£< 1.50 | 9 1 =3£ | द ५३८ | प्रह्म । ५५ | प्रदेश । ५० | પ દપ્પ |
| ,४१२। २ | ४९२। ९ | ૧ પ્રકર | A051 A | 405 54 | |
| 62 I 358 | 836 1 26 | 99 | ५०४। ⊏ | ५०४। १८ | q o |
| 8451 3 | 8.1 E | प्र ह०३ | " 1 93 | ,, । २१ | 3E 603 |



वेदान्तकल्पतरुपरिमले वतीया उध्यायः।

तदन्तरप्रतिपत्ती रंहति संपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम् ॥ १ ॥

₹88 1 5

अविरोधेनेति । द्वितीयाध्यायकृतेन स्मृतिन्यायश्रुतिविरोधसमाधा-नेन वेदान्तवेदां ब्रह्मेत्यस्मिन्न्ये प्रतिष्ठिते तस्य ब्रह्मणः प्रामा वेदान्तात्यं चानं माधनमिति तत्सापायमस्मित्नध्याये चिन्त्यतइत्यर्थः । सेापायमाध-ननिरूपणमध्यायार्थः । तत्र वेदान्तमूलकं ब्रह्मज्ञानं ब्रह्मप्राप्रिमाधनमित्ये-तत्पुरुषार्थाधिकरणे निर्दृषितं तच्च जीवाभिन्नब्रह्मविषयमित्यात्मेति तूपग-च्छन्ती†त्यधिकरणेःतत्त्वमिवाक्यार्थमाचरस्यास्य ज्ञानस्य तत्त्वंपदार्थज्ञान-पूर्वकत्वाद् द्वितीयपादे न स्थानते। ऽपी‡त्यतः प्राक् न्वंपदार्थः शोधितः । ततः प्रभृति तत्पदार्थः शोधितः । शोधितस्य तत्पदार्थस्य तथात्वेन वेदान्तै: सिद्धार्थे तस्मिन्नपसंहरगीया विधिनिषेधहृगा धर्मा त्रानन्दादय 🗽 श्रह्मरिधया मित्यधिकरणयार्देशिताः । प्रथमपादे वैराग्यह्रपं द्वितीयपादान्त्या-धिकरखे परमेश्वरप्रसादहृषं तृतीयपादे सगुणविषयाधिकरखेष् सगुणविद्या-परिशोलनहृपं चतुत्रेपादे कर्मतत्संन्यासशमदमादिहृपं च तदुपायजातं निरूपिर्लामिति विवेतः । पादसंगतिरिति । जीवेषकरग्रागादिस्वरूपिन-रूपणार्थेन पूर्ववदिन सेापकरणजीवगतागतनिरूपणार्थस्यास्य पादस्य संग-तिरित्यर्थः । भूतपरिष्वङ्ग इति । इदं चिन्ताप्रयोजनं भूतगमनाभावे त्तद्रात्रयाणां प्राणानां गत्यसंभवं सूचयता प्राणगतेश्वेशति सूचेण दर्शितम् । यदि शरीरात्पत्यवस्थामित्येतदनन्तरम् त्राहुतिवामनाहुतिमिति द्विविधः पाठः । द्विविधो ऽप्युपपन्नः । ऋग्निहोत्राहितिप्रभवत्वाद् वस्तुत स्राह्नुतित्वा-भावाद्य । अधिदैवं यजमानप्राणा इत्यन्वय इति । ऋम्यादया ह्याधि- ३४२ । १ दैविकयचमानप्रागाः वागादयस्त्वाध्यात्मिकयचमानप्रागाः । स्रतं स्राध्या-

^{&#}x27; व्या॰ सू॰ ऋ॰ ३ मा॰ ४ सू॰ ९।

[🗜] ट्यान्सून् आरु ३ पा २ सून् १९।

^{||} व्याः सूरु भ्राः ३ याः ३ सूर ३३।

[†] ट्या मूर्ण भा ४ पा १ सूर ३।

[§] व्याः सूः ग्रः ३ पाः ३ सूः १९।

^{¶ं} व्यान्सून् श्रन् ३ पान् १ सून् ३ ।

त्मिकप्राणव्यावर्तकत्वेनाधिदैवमित्येतत्प्राणविशेषणमिति भावः । तथापीत्या-दिग्रन्थाकादथीत् तथा होत्यादिग्रन्थेनाच्यमानस्यार्थस्य नास्ति विशेषः उभयचापीष्ट्रादिकारिणां जीवस्य च संबन्धमाचप्रतिपादनाद् श्रतः पुनक्-३४२ । २४ तिरित्याशङ्का विशेषमाह अद्धां जुन्हतीत्यन्नेति । पूर्वे श्रद्धां जुह्नतीति पञ्चाग्निविद्यावाक्ये श्रद्धाशब्दलिवतास्त्रिवृत्कृता श्राप एव होम्यत्वेनाकाः न तासामिष्टादिकारिमि: संबन्ध उक्त इति शङ्का वारिता इदानीमेव सामा सकेति दिचयमार्गवाक्ये इष्टादिकर्तृयां सामराजभावमाचमुत्तं न तेवामद्भिः परिष्वङ्ग उत्त इति शङ्का वार्यतहत्यग्रे: । स्रुतिद्वये उपि परस्पराग्रेविश्रेषग्र-ह्यो से।मराजयुतिस्वर्गस्थानयारैक्यमेव हेतुः। यद्वाहुतिः प्रथमा कथं द्विती-योक्तेत्याशङ्क्ष्याह अन्त्याहुत्यपेत्त्ययेति। यजमानशरीरस्य वैतानिकाम्नावा-हुतिरन्त्र्याहुति: । सा ऽपि छान्दोग्ये दर्शिता तं प्रेतं दिष्ट्रिमितो उम्नय एव हरन्तीति । बृहदारगयके तु स्पष्टमुक्ता तस्याग्निरेवाग्निः समिदेव समिदित्या-दिना । तदपेचया अद्धाहुतिर्द्धितीयत्यर्थः । चन्द्रभूषं गतश्चन्द्रलोकं गत इत्यनयार्व्याख्यानव्याख्येयभाच्यङ्कां निराकुर्वन् तयारन्वयं दर्शयति चन्द्र-स्तोकं प्राप्त इति । न द्वितीय इत्याहेति । अविद्यापाधेर्व्यापकत्वे ऽपि पूर्वदेहत्यागहेतुरन्तः करणाद्यपाधिः परिच्छित्त इति भावः । इयणुकादेर-पीति । तथा चादाहृततकीनुमानानामाभाषपमानयागचेमतया न साधक-तित्यर्थ:। उच्छियेत चेति । अञ्चनातीयं गानातीयेन विरुद्धं तादात्म्य।या-म्यमिति या तज्जातीयानां परस्परविरोधप्रसिद्धिः सोच्छिद्गेतेत्यर्थः । तथा सित देशमाह तथा चेति।

३८४ । १५ उक्तरित्योरेकामाप्तादिभ्यः परिच्छिद्य प्रवृत्त्युपपत्तिरिति ।
ग्रवमनङ्गोकारे च भूतत्वमूर्तत्वेषाध्योः समावेशाङ्गोकारादन्यबाष्युणाधिसमावेशशङ्क्षया क्ष चिदाप्रवाक्याद्यवगतिर्नित्यत्वादिभिरिनत्यत्वाद्यभावानुमानं न सिध्येदिति भावः । ननु गोत्वाश्वत्वाद्यनन्तविबद्धुजातीनां
परस्पराऽसामानाधिकरग्र्यमनुभूयते । तत्र च परस्परात्यन्ताभावसमानाधिकरणजातित्वमवच्छेदकं न तु गोत्वाश्वत्वादिह्रपत्वमननुगमादिति परस्परपरिह्णारिग्योजीत्योरसमावेशिसिद्धः । न चैवमवच्छेदके गैरिवान्जातित्वं
न प्रवेशनीयमित्युणाधिसङ्करस्यापि त्यागापतिः । तथा सति घटान्यत्वप-

टान्यत्वयाः घटपटयारेव परस्परपरिहारिगोरन्यनाप्यसमावेशः स्यादिति कुड्यादीनां घटाद्यात्मकतापत्या उपाधिमङ्करस्य परिहर्तुमशक्यत्वेन जाति-विशेषगागैरवस्य प्रामाणिकत्वादिति चेन्मेवम् । क्रिंचिद्धर्मक्रोडीकारेगामन्त-व्यक्तिषु प्रवृत्त्यादिव्यवहाराथे ग्राह्मस्य कार्यत्वकारगत्वव्यापकत्वश-क्यत्वादेरिवासामानाधिकरण्यस्यावच्छे उकापेचत्वाभावात्। त्रनुगतावच्छेदका-भावे ऽप्युपाध्यमामानाधिकरण्यवज्जात्यमामानाधिकरण्यस्याप्यात्मलाभाप-पतेः । क्रिं च जातीनाममामानाधिकरण्यमाचं नावद्यम् । सर्वासामपि जातीनां यत्किंवित्समानाधिकरगत्वेन क्व विद्धि जाती। सामानाधिकरगयसामान्याभा-वाभावात् । परस्परामामाचिक्ररगयं तु परस्परशब्दार्थाननुगमादननुगतम् । यवमवच्छेदकमपि परस्परात्यन्ताभावसमानाधिकरगात्वं तत यवाननुगतस्। तस्मात्परस्परणब्दार्थानुसारेग गोत्वाश्वत्वादिषु १ पृथक् तेन तेन रूपेगास-मावेशे। ग्राह्म इति पृथिवीत्वादिसंकरे न का चिदनुपपति: । कि च सर्वेच जातिसंकरस्य प्रत्याख्याने मृन्मयहिरगमयादिघटेषु घटत्वनातेर्देवदत्तीयय-चदतीयतारमन्दगकारादिषु देवदत्तीयत्वादिजातीनां अध्यमभ्युपगमः । यदि पृणिबोत्वादिक्याप्यं घटत्वं नाना गत्वादिक्यार्म्यानि च देवदसीयत्वादीनि नानेति तासु संकरपरिहार: तहीं हापि भूगोलके समुद्रादिषु चरीरेषु च पृथिबोत्वजनलन्वादिकं नानेति तत्परिहारी उस्तु ।

UM

परस्परपरिहारित्वादिति । परस्परपरिहारिजातित्वादित्यथेः । ३८४ । ३० गुणात्वह्रपत्वये। रनेकात्विकता गोत्वाध्वत्वविवद्यापचे अविशेषपचे च समाना । तचाद्यपचे तयो। नेकात्विकतां विवृणाति गोत्वाश्वत्वे त्यजतो। रिति । विवृणाति यत्विकं चिदिति । प्रसिद्धिसामध्यादिति । पञ्चभूतकार्यवर्थनं प्रसिद्धः । एतज्जनकत्वे सतीति । पचीकृतदेवदत्तर्थाः रोरजनकृत्वसमानाधिकरणानि यान्यनुदकत्वाऽतेजस्त्वावायुत्वानाकाशत्वानि तेषामत्यन्ताभाववद् यद्भूतं तत्समवायिकारणक्रित्यर्थः । पृथिवीमाचसमिन्वायिकारणक्रत्वेन परामिमते दृष्टान्ते समवायिकारणं यद्भूतं पृथिवी तस्य पचजनकृत्वविश्वशृनुदकत्वात्यन्ताभाववन्वं पचजनकृत्वह्रपविशेषणाभावाः दित्याह यद्यपीति । पचे समवायिकारणानि यानि भूतानि तेषामुकह्रपविशेषणाभावाः दित्याह यद्यपीति । पचे समवायिकारणानि यानि भूतानि तेषामुकह्रपविशेषणाभावाः

^{*} अभवाविष्विति २ पुः पाः।

शिष्टामाववन्वं विशेष्याभावात्मध्यतीत्युदकादिभूतममवायिकारणकत्विसिः रित्याह एतज्जनकत्वे सतीति। न चानुदक्रत्वाद्यभावचतुष्ट्रयवदुदकादिचः तूरूपम् एकं भूतं नास्तीति साध्यस्य एवे बाधः शङ्कनीयः। एतज्जनकत्विविश्वानुदक्रत्वात्यन्ताभाववद्भूतसमवायिकारणकमित्येवमादिह्याणां चतुणीमनुमान्त्रातं तेन साध्यनिद्धेशेन भूचनादनुमानचतुष्ट्येन शरीरस्य पाञ्चभीतिकत्विसिः सुप्रपत्तेः। यद्वा चात्मकत्वातु भूयस्त्वा*दिति भूत्रे शरीरकारणानां चात्मकन्त्वमुत्तं तत्पञ्चात्मकत्वस्योपलचणमिति शरीरकारणेषु भूतेषु प्रत्येकमुदकादि-चत्रुह्यत्विसद्धाविष न बाधः। गतिस्त्वाश्रयस्यैवेति। यदि जीवद्वेहे गतिः राष्ट्रयस्येव न प्राणानां तदा मृताविष् प्राणानां गतिनीभ्यूपगन्तव्येति न तदाय-प्रभूतपरिष्वङ्गिसिद्धिरिति शङ्कितुङ्केदयम्। यतच्छङ्कापरिहाराथे जीवद्वशाया-माष्ट्रये गच्छित प्राणानां गित्नी साध्यति न चेत् प्राणा गच्छन्तीति।

ननु पञ्चम्यामाहुतावित्यादिटीकाग्रन्थे। न युक्तः । प्रथमाहुताव-नयां होतव्यत्वे ऽपि पञ्चमाहुतेरब्द्रव्यकत्वमाचेणापां पुरुषवचस्त्वप्रका-रप्रश्नोपपनेरित्याशङ्कः पञ्चस्वप्याहुतिष्वपामेव होतव्यत्वं शास्त्रान्तरान्नि-बातं सदुपजीव्य प्रथमाहुतावनपां हातव्यत्वाभिधानस्यापंबद्धत्वमुक्तमित्यु-३४६ । १ प्रपादर्यात पष्चम्यामाहुतावर्षं पुरुषशब्दवाच्यत्वं यथा भवतीत्या-दिना । ननु शास्त्रान्तरमनपेद्य प्रश्नोत्तरसंदर्भपर्यालाचनयैव पञ्चस्वप्याहृतिषु श्रपामनुवृत्तिनिश्चेतुं शक्या । यदि ह्यपां ब्ल्यमपर्याये हूयमानानां पुरुषाका-रपरिणामं वतुं प्रथमादिपयेगयत्वेषि तासामेव हूरमानानां सामराजादिपरि-. गाम डकः स्यात् तदानीमिति तु पञ्चम्यामाहुर्ताविनीतिशब्देन प्रकारवा-विना पूर्वोक्तसर्वप्रकारपरामर्शः संगच्छते प्रथमादिपर्यायेष्वागः सामराजादि-भावं प्राप्य पञ्चमपर्याये पुरुषभावं प्राप्नवन्तीत्यन्वयात् । यदि तु श्रद्धादिश-क्टोक्तानामनपां सामराजादिभाव उक्तः स्यातदा पूर्वेकाः सर्वे। ऽपि प्रकारा ऽमां परिणामक्रमविषया न भवतीति स न संगच्छेत श्रपां पुरुषवचस्त्वप्र-कारे ष्ट्रष्टे तत्प्रकारं विहाय प्राचीनपर्यायेष्वन्यदन्यदुच्यते चेदपृष्टे।तरता स्मात्। त्रत एव सै।चगङ्काभागविवरग्रभाष्ये श्रद्धाग्रब्दस्य प्रत्ययपरत्वसम्पर्धे-नानन्तरं तस्मादयुत्तः पञ्चम्यामाहुतावपां पुरूषभाव इति प्रश्नोत्तरयार-

^{*} व्यासमूः श्रः ३ पाः १ मूः २।

नुपपितरेवोपमंहृतेति चेत् सत्यम् । एवं प्रश्नेत्तरसंदर्भपर्याले।चनया प्रतीय-मानमप्यपां प्रथमाहुतिमारभ्य होमद्रव्यत्वं न प्रश्नवाक्यएव विधेयम्। श्राहुतिष्वपां होमद्रव्यत्वं पञ्चमाहुतै। तासां पुरूषाकारपरिवातिप्रकारश्चेत्यु-भयं पृष्टमिति प्रश्नवाक्यस्याभयविषयत्वकल्पने वाक्यभेदापत्तेत्रिशिष्टस्य प्रश्न-विषयत्वकल्पने ऽपि गारवात् । ऋतः प्रश्नस्य पुरुषाकारपरियतिप्रकारद्वपवि-शेषणपंत्रान्तत्विद्धार्थे विशेष्यप्राप्टाकाङ्घायां तत्प्रापकं शास्त्रान्तरमुदाहृतम् ।

ननु यदि शास्त्रान्तरवशात्पञ्चस्वप्याहुतिष्वपां हे।तव्यता ऽस्ति तदा प्रथमादाहितव्विपि हूयमानानां तासां परिगतिविशेषाः संभवन्तीति तेव्विपि सत्सु तानजिज्ञासित्वा पञ्चमाहुतावेव किम्यू विशेषा जिज्ञास्यतहत्याशङ्कर तद्मिप्रायमाह तत्र प्रथमाद्याहुतिष्वपीति। यैव पञ्चम्याहुतिरिति। यदेव पञ्चमाहुतिद्रव्यं तदेव प्रथमादााहुतिष्विष द्रव्यमिति तावच्छास्ता-न्तरान्निश्चितम् । तच प्रथमाहुतिमारभ्य हूयमानानामपां पञ्चमाहुते। केन प्रकारेण पुरुषाकारपरिणाम इति प्रश्ने जिज्ञासितप्रकारविशेषान्तर्गतत्वा प्रश्न-माद्याहुतिपरिगतिक्रमे। ऽपि पृष्टे। भवतीति पञ्चमाहुतिविशेषमाचविषयः प्रश्न इत्यर्थः । आद्वत्यपूर्वेरूपा इति । ननु आहुतिजन्यापूर्वे आत्म- ३४६ । २१ गुगारूपं जलादााहुतिद्रव्यजन्यमपि न जलादिरूपमिति तत्परिवेष्ट्रने।त्या न मूतपरिष्वङ्गिविद्धिः। तित्यद्वाविः तत्परिवेष्टनं भाष्यटीक्योरन्त्याहुत्यनन्त-रमुक्तमिति नेत्त्रमणकालमारभ्य प्राणगतिनिवीहकस्य भूतपरिष्वङ्गस्य सिद्धि-रिति चेत्। उचाते। अपूर्वहृषा इत्यनेन सूदमहृषा इति विवित्ततं न त्वात्मगुग्रह्णा इति कर्मगामीश्वरप्रसाद एव द्वारमिति सिद्धान्ते यावत्पत्तं स्याय्यदृष्टुम्हणद्वाराऽनङ्गीकारात् । भाष्यटीकये।रन्त्याहुतिकयनं नान्त्याहुत्य-नन्तरमद्भिः परिवेष्टनमित्येतदभिष्रायं किं तु यजमानस्य शीघ्रं परलेकनयमा-थेमन्त्याहुत्यपेचाभिप्रायम् । उपकेषिकविद्यायामचिरादिमार्गप्राप्निरस्त्रीत्युतिन सामर्थादन्येशं शवकर्माकरणे शीद्यं मार्गप्राप्तिनीस्तीति सूचनेनापासनान्तरः निष्ठानां कर्मिणां च भटिति मार्गप्राप्यथैमन्त्येष्ट्रपंचणस्य पदामाध्ये माध्य-कारैककत्वात्। श्राहुतिगत्यागतिसाम्याद् दृष्टान्तत्विमिति। स्तेनेय-मिप यङ्का निरस्ता षट्प्रश्ननिद्धपयो त्रानिहोत्राहुतिसूदम्हुपैः संपरिष्यतस्य चीवस्योध्वंगमनं नाच्यते किं तु तेषामेवाहुत्युष्टेष्मदेवतातृष्ट्राके तत्त्ववाकं

प्रत्युर्ध्वगमनमुच्चते ते अन्तरिन्नं तर्पयतः ते दिवं तर्पयत इति वाक्यशेषात् तस्मादाहृतिमूहमांशा जीवं संवेष्ट्य परलेकं नयन्तीत्यवेदमुदाहरणिमिति । तथापि भूतसूहमाणां द्युपर्यन्तोत्ऋमणं पुनरावर्तनं चाऽस्तीत्येतावत्यंशे दृष्टान्तताया अवैकल्यात् ।

op 1 e8\$ प्रौद्धाः विद्यैक्यमुपेत्येति श्रव्याभेदवादिनां परिताषार्थम्-त्तम् । वस्तुतस्तु विद्येक्यमुपपदाते एव द्युपृथिवीपुरुषयोषिदग्निकल्पनाप्र-त्यभिज्ञानाद् ये।षिदग्निपर्याये पुरुषाकारपरिग्रतिप्रत्यभिज्ञानाच्च । अय वा ऽऽहुतित्रवर्णयेः सामान्यविशेषभावेनैकार्थपर्यवसाने।पपनेः एकैकचानुक्तानाः विशेषाणां परस्परे।पसंहारोपपते: ऋन्तरिचपजैन्ययाः परस्परोपसंहारेखाम्नीनां पञ्चमंख्यातिरेके ऽपि त्रय ह एतानेव पञ्चाग्नीन्वेदेति पञ्चमंख्याभिप्रायेगोपपते:। अन्यथा तस्याग्निरेवाग्निः समिदेव समिदित्यादिना वृहदारायकात्तस्य पृष्ठाग्ने-रप्यनुपसंहारप्रसङ्गात्। एकस्यामेव वाजसनेयिषाखायां प्राणिडल्यविद्याया इव पञ्चाग्निविद्याया ऋषि उभयच संक्षीतेनस्य विशेषविधानार्थत्वोपपनेर्बहुतरार्थ-प्रत्यभिज्ञाने ऽपि क्षिंचिद्वैलचग्यादिमाचेग विद्येश्यपरित्यागे क्ष चिदपि विद्यै-क्यांचिद्धिप्रसङ्गाञ्च । न च तर्पयत इत्युक्या देवतातृष्ट्रार्थम् त्राहुत्यारुत्क्रमणं संकीत्येतइति गङ्कनीयम् । स्रानिहोचाहुत्ये।रन्तरिचस्य दिवस्ततःहोकस्यितप्रा-... श्विनां वाद्वेश्यदेवतात्वाभावेन तेषां तर्पणीयत्वाऽयागात् । तस्माने देवा भच-यन्तीति युत्युक्तप्रकारेणाजानदेवानां कर्मदेवा मृत्या इत्यग्निहोत्राहुती भृत्यानः यनेन तत्त्व्लोकस्थितानाजानदेवान् प्रीणयत इत्येवमभिप्रायं तर्पयत इति वाक्य-द्वयमपि योज्यते ।

श्रमिन सिमिद्धमा चिरङ्गार विस्फु लिङ्गे बिवति । यथा श्रान्दोग्ये श्रमां पुरुषशब्दवाच्यत्वप्रकारमा चिष्यतया प्रतीयमानस्यापि प्रश्नस्यानि-सिमद्भुमादिविषयत्वमपि कल्यते । श्रन्यया प्रश्नोत्तरवैयधिकर एयापतेः एव-मचापि श्रवणाप मंहाराभ्यामग्निसिद्धमादिष द्व्यपुत्तरवाक्यगतेषु सत्सु ताव ११ । २९ त्पर्यन्ते प्रश्नवाक्यानामिप्रायः कल्यनीय इति भावः । प्रथेति शेष इति । मूले यथा से। मस्येति यथाशब्दयुक्तपाठे तु न शेषाध्याहारः । ननु क्रियासमिन

विद्योक्तमभ्युपेत्वीत २ पुः पाः ।
 कल्पते इति २ पुः पाः ।

[†] श्वरनीति नास्ति २ पुः।

हारिक्वचायां तस्य तस्य धाताद्विभावा उनुप्रयोगश्च प्राप्नातीति तत्यूववार्तिके द्विभावानुशासनाद् यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्योति* सूचेण तस्य धातारनुप्रयोगः नियमाच्च । नैष देषः । आप्यायनापचययोः प्रत्येकं पानः पुन्यं समुद्धयश्चेत्यु-भयविवचापपतेः । उभयविवचायां हि समुद्धयविवचाप्रयुक्तमेव कार्ये भविति विप्रतिषेधे परं कार्यमिति समरणात् । प्रपञ्चितश्चायमर्थः प्रथमसूचे जायस्व सियस्वेति युत्यर्थकथनाचसरे ।

युक्ततरश्चायमर्थे इति । युक्ततरत्वोक्तेरिमप्रायं न विद्वः । यदाय्येष ३४७ । २६ मोमा राजेत्य सोमा राजेति शब्दावादित्याच्चन्द्रमसमिति प्रस्तुत बन्द्रवरी त्रयास्तव लेक्कवेदप्रसिद्धत्वानद्वेवानामन्नमिति च तस्मिन् प्रथमां पिवते बह्रिरित्यादिप्रसिद्धं देवाच्चत्वमुच्यते तं देवा भचयन्तीत्येतदप्र स्वगै प्राप्य कर्मदेवहृषा इष्ट्रादिकारिगो। ऽपि तं भुञ्जतइत्येवं तेषां चैविष्ट्रपभागक्रयनार्थम्। एवं च ते धूममिमंभवन्तीति बहुवचनान्तशब्देन प्रकृतानां देवा इति बहुः वचनान्तगब्देन परामर्थः । चन्द्रमसमित्येकवचनान्तेन प्रकृतस्य चन्द्रस्य सेमा राजेत्येकवचनान्तेन परामर्थ इल्येसदप्युपपदातइति प्रतिभाति तथाप्येष सोमा राजेत्येतस्य प्रकृतेष्टादिकारियरत्वमेव युक्तम् । पञ्चाग्निविद्यावाक्ये सामा राजेति श्रुतस्य प्रथमाहुतितः: संभवस्य द्वितीयाहुतै। हे।तव्यत्वस्य चेष्टादिकारिगीव चन्द्रे उन्वयसंभवात्पञ्चानिविद्यावाक्ये पितृयाग्ववाक्ये च शुत्रयाः सामराज्ञश-ब्दयाः युतिस्यानसामान्याभ्यामेकार्थ्यावश्यम्भावात्तदुवजीवनेनेव भूतर्शस्वतः **कोवरंहणोस्यायुतत्वा†दिति सूचेण समर्थितत्वाच ।कि च छान्टोग्ये सोमेा राचेति** प्राप्यस्य से।मस्य प्राधान्येन प्रकृतत्वे।त्या एतांस्तन भचयन्तीतिः युर्व्यन्तरस्येता-नित्यस्य चन्द्रले।कपरत्वे का युक्तिर्देशिता स्यात् । क्रन्दोगश्रुत्यर्थे श्रुत्यन्तर-स्यापि पर्यवसानं स्यादिति युक्तिरिति चेत्र । युत्यन्तरे ते चन्द्रं प्राप्यात्रं भवयः न्तीति कर्मिणामेवाद्वभावश्रवणं प्राधान्येन प्रकृतत्वं चास्तीति तद कर्मिणा-मेबान्नत्वं भच्यत्वं चाच्यतद्ति तदनुषारेश छन्दोगयुताविष अन्नत्वभद्य-त्यथवगस्य तद्विषयत्वस्थितै। तद्विवाहार्थे पञ्चान्निवद्यागतसामराजयब्दै-कार्थ्यनिविद्धार्थे च द्वान्द्राग्ये पितृयागवास्यगतसे।मराज्ञशब्दस्यैवेष्टादिकारि-षरत्वप्राप्तिः चन्द्रबाचकस्याप्यमृतमयदेहत्वहृषचन्द्रसादृश्यविधानार्थत्वेन दे-

[&]quot; पूर्विस्मित्रितिः से।तः पाः b

वभाग्यत्यक्रपतत्सांदृश्यित्रधानार्थत्वेन चेष्टादिकारिषु गीरातोषपतेः । बहुष्य-प्येकवचनस्य ग्रहं संमाष्ट्रं पत्नीं सन्नह्येत्यादिष्यिव प्रतिव्यक्तिगतैकत्वानुवा-दक्रतेषपत्तेश्च । तस्मादस्या युक्ततरत्वेक्तिरिमप्राये। ऽन्वेषगीयः ॥

३८ । १४ कृतात्यये उनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च ॥ ६ ॥

एक भविक तथा दिति। प्रायणस्य सकलक मेशतयभिव्यञ्जकत्वाद-भिव्यक्तर्शक्तिभः क्रमेभिः प्रागानन्तरभाविन्येकस्मिन्नेव शरीरे फलजननावश्य-म्साव एकभविकनयः । सम्यग्ज्ञानस्य नैष्फल्यमिति । न चाचारेणान्य-कृतिन कर्मणा वा जातस्य पुनर्षि देहान्तराण्यदनीयकर्मप्रम्परा प्रतीयेतिति न सम्यग् चाने नैष्मल्यमिति बाच्यम्। तिर्थेभ्योनिजातस्य कर्मानुष्ठानसामध्याः त्यागेव मृतस्य वा तेन देहेनाचारान्यकृतकर्मग्रीरि चपग्रेन सम्यग्चानने-फल्यं स्यादिति भावः । लोके तथापलम्भादिति । कर्मणामृतरदेशसं-योगादिफलिकनाश्यत्वदर्शनादिल्यधेः । स्वर्गादवरोहतामिति कथमवग-म्यतइति । तृतीयस्थानादवतीयीनां दृश्यमानं भागवैचिच्यमस्तु श्रतः स्वयादवरोहतां न तद्भेत्वनुशयिषद्भिति शङ्काभिग्राय: । स्वयादवराहतां कपूयरमणीयानुगयत्रवणालेषामपि तत्कृतं भागवैचित्रं भवेदिति परिहाराभि-संधि: । यदाव्ययमभिसंधिरित्यादिटीकायन्था उन्यकृतकर्मणा ब्राह्मणादिदेह-प्रापिरिति पूर्वपचस्य कपूयचरणा इत्यादिबहुत्रीहिप्रतिपाद्ये मतुबर्थे कर्मसंबन्धे मुख्यसाचात्संबन्थहृषे संभवत्यमुख्यपरम्यरासंबन्धहृषः स नात्रयणीय इति युत्तया निराकरणार्थः प्रतीयते तथापि भाष्यातां भागवैविच्यमन्वर्धापपतिनि-राकरखेनायवादिवतुं प्रवृत्तस्य टीकायन्यस्य तद्प्यानुविङ्गकं प्रयोजनमितिः ता-त्ययंस् । विसित्तत्विसिति । सायंप्रतःकालाविक स्वीवनं निमित्तिसित निमिनसंकोषकत्या निमिनकोट्यनुप्रविष्ठत्वमित्यर्थः । पृथम् निमिननेमिति-कारंकोचकत्वानुपपते:। अभ्यासा ऽकर्मशेषत्वा दिनि पूर्वतन्त्वाधिकस्यो सासं-३५०। १६ प्रातःकाल्योर्जीवनविशेषण्तया निमितसंकोचकत्वस्येवीक्तत्वाद्य । उपसि माच इति । उत्प्रेत्तमाण इत्यर्थः । वर्षानीयपुरं हि शेषपुरम्भूतकल्पित्यस्य बडतादात्म्येनेत्रेत्यते न तु तथाभूतेम केन चिद् राखगडेनेडं सङ्गमित्युपमी-यते । शुवि भोगामिति । यस्य कर्मगाः स्वर्ग गव पलमुक्तं तद्विषया भवि भागा-

[•] भात्र प्रथमं तदन्तरत्रं तिप्रस्वर्धिकारणं पूर्णम् । + के मूः भः ६ माः च मूः २३।

मावाितः । यस्य तु कर्मणः स्वर्गभागानन्तरं मुच्चिष फलमनेकजन्मानुयाि युतं तस्य युतिवशाद्भुच्चिष फलं भवत् निवार्यते । श्राचारस्य यागादिवदिति । ३५० । २२ भाष्ये पुरुषार्थत्वोत्त्या यागादिवदाचारस्य स्वतन्त्रपुरुषार्थसाधनत्वं नेततं कि तु पुरुषार्थस्कारत्वमुत्तिमित्याहेत्यर्थः । वाक्येन पुरुषार्थमत्वप्रतीतेरिति । जञ्जभ्यमान इति कृत्यत्ययान्तेन जृम्भणक्रते। पुरुष उच्यते कर्ता कर्त्तरि कृदित्य-नुशासनात् ततस्तत्स्यमिन्याहारहृषेष वाक्येन मन्त्रवचनस्य पुरुषार्थत्वमवसी-यते तिविविद्यामाववात्मन् धतहत्यर्थवादावगतं विरचीवित्यं फलमु-खेन विपरिणमनीयं तीर्थे स्नातीत्यव यद्यपि शब्दतस्तीर्थस्नानकर्ता न प्रतीयते आख्यातस्य कर्तृसंख्यामाववाचित्वात्त्यापि स्नानं मलापकर्षकार्थे तीर्थेविशेषणं मुखावतर्शार्थमिति लिङ्गानीर्थेस्नानमिप तत्कर्तृपुरुषार्थतया ऽवगम्यते । अतस्तवापि तीर्थमेव समानानां मवतीत्यर्थवादश्वतफलविपरिणामः कार्यः इति भावः । यवं च मूले वाक्येनित शब्दो लिङ्गस्याप्युपलस्को दृष्ट्यः ।

गुणकर्म तु स्यादिति । पुरुषपंस्कारकतयेति भावः । तच न पुरुष्मात्रइति । यथा त्रीहिग्राचणं न त्रीहिमाचे विधीयते वैयर्ध्यात्फलान्तर-कल्पने गारवाच्च किं त्वपूर्वधाधनेष्ठत्रीहिष्यिति प्रकृतक्रत्वपूर्वधाधनत्वलाभा-धेमितप्रवज्ञया ऽपि युत्या प्रकरणमपेचितमभ्यनुचायते । यवमिहापीति क्रतु-युत्तपुरुषपंस्कारा स्नानमन्त्रवचने यथा क्रतुयुत्तत्रीहिपंस्कारः प्रोचणमिति भावः । कदा चित्पुकृतं कमेति श्लोके पुकृतशब्दं दुष्कृतसाधारस्येन व्या-चेष्ठे सुष्ट्विममानपूर्वकं कृतमिति ॥।

अनिष्टादिकारिणामपि च अतुतम्॥ १२ ॥

३५२ । १

इष्ट्रादिकारियां प्रतीतिरित्युक्तमित्यादिना व्यवहिताधिकरणसंबन्ध ठक्तः । अव्यवहिताधिकरणसंगतिमाह यत्किंचयावच्छब्द्योरिति । यथा-पात्तमनुष्येति । पुरुषशब्दो मनुष्यवाचित्वेन नैधस्टुकैः स्मृत इति भावः । टीकायामसा लोक इति स्थाने असा मार्ग इत्यपि पाठान्तरं दृश्यते तन्न्याच्छे न्यायसाम्यादिति । गन्तव्यलेकासंपूरसे मार्गासंपूरसमप्यर्थसिद्धमित्यर्थः ।

भागवैषम्यमर्थाद्गम्येत इति । परमते दुष्कृतिनां चन्द्रमण्डला-राहो ऽस्ति तेषां सुकृतिभिर्मागसम्यं स्यातत्त्वमुक्तमिति शङ्कां भागवैषम्यप्र-

^{*} अन दिलीयं इतात्ययाचित्रारणं पूर्णम् ।

दर्शनेन निराकृत्य पूर्वपद्मापपादनार्थमिदं सूचं तच भागवैषम्यं शब्दता न प्रतीयते किं तु संयमनइति स्थानविशेषकीर्तनेवाथीत्सिध्यति । न च यदथै सूच्यवृत्तिस्तस्य शास्त्रत्वे संभवति त्रार्थत्वं वतुं युत्तं तस्माचुन्द्रमगडलारे।-ष्टावरे।हरूर्वण्चनिरासस्तुशब्दार्थे इति सिद्धान्तमूचत्वमेव वर्तुं युक्तमि-त्यर्थः। नम् पूर्वपचसूचत्वे ऽपि तुशब्दो भागसाम्यशङ्काव्यावृत्यर्थे इति विव-चितार्थः शाब्दो मनत्येव । मैवम् । सिद्धान्तसूचतायामनिष्टादिकास्यां संय-मने रनुसूय प्रत्यवरे।हणमित्येतदनन्तरं भाष्ये । एवं भूतारोहावरे।हाविति सूच-शेषयाजनया न तु चन्द्रमग्रङलारे।हाक्रेशहाविति तुशब्दार्थः स्पष्टं प्रतीयते । षरमते भागवैषम्यस्य शब्दार्थत्वाभावात् तत्यतिद्वन्द्विभागसाम्यशङ्कानिरास-स्तुशब्दार्थतया स्पष्टं न प्रतीयतइति वैषम्यसङ्घावात् । ननु स्पष्टमप्रतीयमानेः ऽपि स ग्रव तुशब्दायों वत्तव्यः ऋन्यया विद्याकर्मगों इति सूचस्य सिद्धा-कारमभूषत्वाभावे तद्गततुश्ब्दस्य‡ बैफल्यप्रसङ्गादिति चेन्न । श्रवत्यः तुशब्देन दुष्कृतिनां चन्द्रमण्डलारोहावरोहशङ्काया भागराहित्येन नैष्मल्या-विरामे मित मर्वे चन्द्रममं गच्छन्तीति श्रुतिमवलम्ब्य पुनस्त छङ्कोत्यिते। मार्गद्वयभ्रष्टानां तृतीयस्थाने।तिहेतुना सर्वशब्द पंकोचावश्यम्भावप्रदर्शनेन त-विरासार्थतया भाष्यएव तन्त्यतुराब्दस्य व्याख्यातत्वात् ।

३५३ । १८

चन्द्रमगडलाद्वरोह् इति च अध्याहारापेन् स्यादिति ।
परमते हि प्रथमं चन्द्रमगडलारोहः ततस्तस्मादवरोहस्तद्द्वारा संयमनं
प्राप्यानुभूयावतरण्यिति हि सूचार्थः । तथा च संयमने ऽनुभूय प्रत्यवरे।हणमित्येतावत्यंशे मतद्वये ऽपि सूचयोजनायाः साम्ये ऽप्यारोह्वावरोहावित्यच स्वमते युतस्येव संयमनस्यारोहणीयन्त्रम् अवरोहाणदानत्वं च। परमते
तु अध्याहृतस्य चन्द्रमगडलस्येति विशेष इत्यर्थः । अग्रडजमित्यादिविभागा न युक्तः अग्रडजादीनामणि जीवजत्वादित्यागङ्क्य यज्जीवदवस्थाज्ञायते तज्जीवजं विवितितम् अग्रडजादिकं तु क्रिं चिन्मृतादेव जायते
क्रिं चिदचेतनादेव भूतलाज्जलाद्वा जायते अते। विभागा युक्त इत्याहः
अग्रडजं हि क्रिं चिदितिशः।

[ै] विविवितार्थश्रद्ध इति ९ पुः पाः । † आस्ये इति नास्ति २ पुः ।

[्]रै भवतुश्रद्धस्पेति २ पु॰ पा॰ । ﴿ व्या॰ सू॰ ग्र॰ ३ पा॰ १ सू॰ ५० । ॥ इति वेति ५ पु॰ पा॰ । ¶ अत्र दतोयम् श्रानिष्टादिकार्यधिकस्यां पूर्णम् ।

साभाव्यापत्तिरूपपत्तेः॥ २२॥

इत्र । म

न तु भवतिश्रुतेः सादृश्यलच्णार्थत्वे ऽस्ति निमित्तमिति । यद्यपि वायुर्भृत्वा धूमा भवतीत्यादिवाक्येषु वायुधूमादिशब्दानां ततत्सदृशे गै। गो वृत्तिरित्यिप वतुं शक्यं तथापि तद्वावस्तत्सादृश्येनै। पचारिके। व्या-क्ष्येय इति सिद्धान्तटीकानुसाराद्वाय्वादिसादृश्यं वाय्वादिभवनन्वेने।पचरित-मित्यभिष्रेत्य षिद्धान्ते भवति युति लेच गोता । वाक्यशेषानि एयेनेति । **अवराह्नां सूदमशरीरस्य क्रमेणाकाशवायुभावापना तदन्प्रवेशे कर्मतया उप्या-**काशं वायुमिति द्वितीयानिदेंश उपपद्यते । धूमा भवतीत्यादिनिर्देशस्तु देवा भवति मनुष्ये। भवतीत्यादिनिर्देशवततच्छरीरकत्वर्ये।पपदातइति व्यव-स्थितार्थेन वाक्यशेषेगाव्यवस्थितार्थस्योपक्रमस्य निर्गयो विवित्ततः । गङ्गायां चाष इत्यन गङ्गाशब्दस्य तीरे गङ्गासम्बन्धितीरत्वेन लचणा न तु तीरत्व-सामान्येन गङ्गायां घेष इति वाक्यश्रवणानन्तरं घेषं जिगमिषाविशिष्य गङ्गातीरे प्रवृत्तिदर्शनादित्येकं मतम् । तीरत्वेनैव लच्चणा तस्य गङ्गासंबन्ध-स्त्वश्रीत्यद्भिति मुख्याश्रीषंबन्धिने। लच्चत्वाश्रीगादित्यपरं मतम् । चिन्-मांगवक इत्यच मुख्यार्थमारृश्यह्रपपैङ्गल्यविधिष्टे मांगवके गाँगी वृतिरित्येकं मतम् । ऋग्निशब्दस्य माणवकवृतिपैङ्गल्यमाचे लचणा तदिवनाभावाद्धिम्प्र-तीतिः सैव गाँगी वृत्तिरित्यपरं मतम् । तच लच्चणागै। णवृत्ये। द्वितीयमता-षययोन भेदमाह लच्च्णायामिति । त्राकाशसदृशा भवन्तीति सुदमता-पनिः । सादृश्यं गमनकाले यो धूम आसीदिति । यद्यपि धूममा श्रुतं तथापि गमनकाले।कप्रत्यभिज्ञानादेवमुक्तम् । गवमुक्तिश्चाकाशवद्भम-स्यापि पूर्विषिद्धतया ताद्रप्येणानुशियनां सूदमशरीरस्य परिणामा न संभव-तीति न्यायसाम्यसूचनार्थम् । एवमाकाशवाक्ये धूमवाक्ये च ताद्र्येण परि-ग्रात्यसंभवात् तत्सादृश्यार्थेकत्वव्यवस्थिते। वाक्येव्वपि* तथैवार्थव्यवस्था षिथ्यतीति तात्पर्यम् । तत्तुरुया भवतीति । वायुष्वभावानुवृतिबद्धमादि-स्वभावानुवृत्तिस्तेन तेन तुल्यता ॥

नातिचिरेग विशेषात्॥ २३॥

श्राकाशादिष्वनुशयिनां चिरमचिरं वा ऽवस्थानिति विशये नियमः

३५५ । १४

^{*} वाष्यभमेष्यवाक्योक्षयोति ५ पुः पाः। । । अत्र चतुर्ये साभाव्यापस्यधिकरणं पूर्णम्

कारिकः शास्त्रस्यामाबाद् श्रनियम इति पूर्वपचे। भाष्ये दर्शितः स न युक्तः । चिरावस्थानश्रुतिबलादाकाशादिष्वचिरावस्थानलाभादित्याशङ्कर दीकाकारैस्तदुपपादनं कृतम् । दुर्निष्पपतरशब्दे। न विरावस्थानवाचकः किं तु दुःखनिष्क्रमणवाचकः । त्रतस्तद्वशादाकाशादिभ्यः सुखनिष्क्रमणं लभ्यते न तु चिरा*वस्थानमिति । सवं पूर्वपचेषपादनमपि न युक्तम् । ब्रीह्यादि-भावे ऽनुषयिनां दुःखस्द्वावस्थानन्तराधिकारे निषेत्स्थमानतया दुर्निष्प्रपतः रमित्यस्य लघग्या विलम्बपरत्वादित्यपरिताषादाचार्यैः सामान्यतादृष्टावल-म्बनपूर्वपर्व प्रदर्श्य तस्य युतार्थापवादः सिद्धान्ते वर्णितः । सामान्यतादृष्ट्-मानावलम्बनः पूर्वपचात्तुच्छ इति तनाप्यपरितोषादानार्यैः पूर्वपचस्येत्यमुप्रो-द्वलनं कृतम् । श्रते। वे खल्बिल्यचातःशब्दः प्रकृतानामाकाशादीनां सर्वेषां परामर्थक इति सर्वेष्वपि तेषु विस्वस्थानं युतित एव प्रतीयते तदनुपाहक-मनुमानमिति । त्रतःशब्दः समनन्तस्वाक्रयेकान् ब्रोह्यादीनेव परामृशेद् न व्यवहितानाषायादीन् सर्वेनामस्वाभाव्यातया च ब्रीह्यादिषु विरावस्यान-श्रुतिसामर्थ्यादाकारादिव्वचिरावस्थानलाभानद्वाधितमनुमानमिति सिद्धान्ता बर्णितः । बस्तुतस्तु यथामाध्यमनियमपूर्वपद्य एव दृढः । ऋते। वै खलु दु-र्निष्यपतरमिति वाक्येन ब्रीह्यादिषु चिरावस्थाननियमे। बाध्यते‡ न तत्स-नामाचं चिरमचिरं बेत्यनियतस्य चिरावस्थानस्य ब्रीह्यादिष्ववस्थानात्रयेव लब्धत्वेन तस्याविधेयत्वात् । तथाः च विशिष्य ब्रीह्मादिषु चिरावस्थाननि-यमप्रतिपादनसामर्थ्यादाकाशादिभ्यश्चिरावस्थाननियम एव व्यावतंते न त्व-नियतं चिरावस्थानमपि । अतः स्वार्द्धमन्तर्वेदार्द्धे बहिर्वेदीति पूर्यमानदेश-विधावन्तर्वेदीत्येव विधिस्तत्सामध्यादर्द्धान्तरं बहिवेदीति सभ्यते । श्रता ऽद्धें बहिवेदीत्यनुवाद इति पूर्वपचे दूषणमुक्तम् । तथा यूपस्य वेदि§रित्य-चित्ररग्रे श्रद्धमन्तर्वेदीति नियमविधिसामर्थ्यादद्धीन्तरादन्तवेदिनियम एव व्यावर्तते नान्तवेदिस्बहुपमित्यद्धान्तरमन्तवेदि बहिवेदि वेत्यनियमः प्राप्नोति न तु बहिवेंद्येवेति नियमा लभ्यते । स्रोता ऽद्धे बहिवेंद्यीत्यनुवाद इति पूर्वपचे पाचिकानुवादे। ऽयं स्यादिति नित्यवच्छवयविरोधः तत्परिहारायादुं बहिवें-

^{*} न तु तेषु चिरेति २ पुः धाः । ‡ बोध्यते इति २ पुः धाः ।

[†] यनुमानमानमिति २ पुः पाः । हुँ जैः सूः ग्रः इ पाः ७ सूः ५३ ।

दीत्यपि विध्यन्तराश्रयणे वाक्यभेदः । तस्मादन्तवेदिबहिवैदिशब्दाभ्यां लविता उन्तरालदेशे। विधीयतद्त्यङ्गीकर्तव्यमिति । एवं प्राप्रस्य पूर्वपचस्य निरासप्रकारो ऽपि भाष्यएव विशेषादिति सीचपदव्याख्यानेन स्पष्टीकृत:। स इत्यम् । दुर्निष्यपतरमिति तरप्पत्ययार्थस्यातिशयस्य प्रतियोग्याकाङ्घायां प्राग-नुक्रान्तानाम् त्राकाशादीनां बुद्धिसिवधानातत्प्रतियोगित्वेनान्वयः स्यात्रया च त्रीह्यादिष्याकाशादावेचा चिरमक्स्यानाक्तावाकाशादिष्यवस्थानस्य तदये-चया ऽल्पकालत्वं पर्यवस्यतीति । नन्वसिद्धस्तरष्प्रत्ययस्तकारलापवद्रेफे।प-जनस्मापि छान्द्रसस्य वर्तुं शक्यत्वादिति चेन्न। उभययासंभवे ऽथीतिशयसि-द्धार्थे तकारलेपिन तरप्रत्ययसद्वावस्येवात्रयितं युक्तत्वात्। दुरूपपदात् पति-थातोः खलर्थे डग्रत्यये सति दुनिष्मपतरमिति इपसिद्धे। विनेव तकारलापं तरप्प्रत्ययान्तत्वस्य निर्वेतुं सुकरत्वाच्च । स्रन्येष्वपि दृश्यतदति जनेरूपप-दान्तरेषु डप्रत्ययविधायकसूचे ग्रान्येभ्यो ऽपीति दृश्यतद्दित वक्तव्यमिति वा-निककृता धात्वन्तरेभ्यो ऽपि डप्रत्ययस्यानुशिष्ठत्वातच दृशिग्रहणं सर्वे।पाधि-व्यभिचारार्थमिति वृतिकारेग्राक्ततया कृत्यल्युटा बहुलमिति बहुलग्रहगादन्ये ऽपि कृतः प्राप्रमभिधेयं व्यभिचरन्तीति तेनैवोक्ततया च तस्य डप्रत्ययस्य खल-श्रेवृतित्वोपपत्तेश्व । एतेनातः शब्दः संकाचकाभावादाकाशादिसर्वपरामर्शक इति शङ्कापि निरवकाशीकृता । स्नातिशायनिकप्रत्ययार्थप्रतियोगित्वेनान्वयि-ताया वक्तव्यत्वेन तस्या व्यवहितव्रीह्यादिमाचपरत्वावश्यंभावाद् व्रीह्यादि-भ्यो दुनिष्प्रपतरत्वेक्तिसामर्थ्यादाकाशादिभ्यो ऽपि दुनिष्प्रपतरत्वमाचमस्तीति तेष्वपि चिरावस्थानावगमात् सूचे नातिचिरेग्रेत्यतिचिरावस्थाननिषेधः कृत इत्यास्तां विस्तर: ।

कथं तत्रापि चिरावस्थानेन पूर्वपत्त इति । चिरावस्थानस्य को- ३५५ । १८ ट्यन्तरतया प्रवेशनेन कथं पूर्वपत्त इत्यर्थः । भाष्योक्ते ह्यनिग्रमपूर्वपत्ते चि-रावस्थानमपि के।ट्यन्तरत्वेन प्रविशति । ज्यवधानादिति । विलम्बे दुस्-पर्सगस्याप्रसिद्धत्वेन साचाद्वाचक्रतया तस्मिन्नप्रवृतेरित्यर्थः ॥

[ै] अत्र पञ्चमं नातिचिराधिकरणं प्रर्णम् ।

३५६। १ अन्याधिष्ठिते पूर्ववदिभिलापात्॥ २४॥

ननु कतुप्रकरणस्थेति । यथा खल्वामतक्रं केष्ठि कर्फं हन्तीति वाक्यस्येष्ट्रमाधनत्वं त्रिषयः कगठे कफं करोतीति वाक्यस्यानिष्ट्रमाधनत्वं विषय इति विषयभेदादविरोधः सर्वं विधिनिषेधयारिवरोधश्चेत्तिः क्रतु-हिंसा विहितापि निषिद्धेति वत्तव्यम् । ततश्च क्रतुमध्ये निषिद्धानुष्ठाने कयं क्रतुवैगुग्यं न स्यादिति शङ्कार्थः । न हि ऋतुशेषः प्रतिषेध इति । यथा कलञ्जभवगप्रतिषेधस्य क्रतुशेषत्वाभावात्कलञ्जभवग्रेन न क्रते।वै-कल्यम् एवं हिंसानिषेधस्यापि ऋतुशेषत्वाभावाद्धिंसया न ऋताः साकल्यमेव किं तु क्रतुसाकल्यले।भात्पुरुषार्थनिषेधमितक्रामतः पुरुषस्य परं प्रत्यवाय इति परिहारार्थः । एवं विहिताया अपीति । यथेष्टसाधनत्वबेाधनास्य-दमेव तक्रपानमनिष्टमाधनत्वबे।धनस्याप्यास्पदम् गर्वं विहितेव हिंसा यदि निषेधस्यापि गाचरा स्थानहोंत्र सा दुःखफला स्याद् न त्वेवं निषेधस्य पुरु-षार्थेहिंसामाचिषयत्वादित्याहेत्यर्थे: ।

ननु पुरुषार्थिहिंसाया एव निषेध्यत्वादिति हेतुसाधनाय प्रवृते तथा होत्यादिटीकाग्रन्ये हिंसानिषेधस्यानृतवदननिषेधवत् क्रतुप्रकरगाम्बान ঠ্য বি দাসাবান্ क्रत्वर्धिहंसा न निषेध्येत्येताबति बक्तव्ये । বৃহাৰ্থ निषेध्ये तद्या निषेध इति निषेध्यनिषेधयारेकविषयत्वनियमानिः द्वापयुज्य-🤫 । २३ तहत्याशङ्क्य तदुपयोगं दर्शयन्नवतारयति । ऋत्वर्था हि प्रति-षेघ इति । त्रयमाशयः । क्रत्वर्थपुरुषार्थीभयविधस्य हिंसामात्रस्य पुरुषार्थी िषेध इति सांख्यमतेन खल्वच पूर्वपत्तः कृतः । न तन्मतं युज्यते । निषे-ध्यनिषेचयोरेकविषयत्वनियमेन निषेचस्य पुरुषार्थत्वे निषेध्यहिंसाया ऋषि पुरुषार्थत्वावश्यंभावादित्येवं नियमऋथनस्य सांख्यप्रक्रियानिराकर्योन हेतु-षिद्धापयोगित्वं तावत् स्पष्टमेव तर्हि नियमाऽविरोधाय निषेध्यनिषेधावुभा-विष क्रत्वर्था स्ताम् ग्रवमिष पुरुषार्थाया ग्रव निषेधादिति हेतारिनिद्धिमेवे-दिति शङ्कोत्याने ऽपि नियमवर्षानस्यास्त्युपयागः । तस्यां शङ्कायां निषेध्यस्य क्रत्वर्यत्वार्धभवेन दूषितार्या तहीनारभ्याधीतस्य हिंसानिषेधस्यानृतवदननिः षेधवत् क्रतूपस्थापकप्रकरणाभावेन क्रत्वर्थनिषेधत्वासंभवे क्रत्वर्थत्वं पुस्-षार्थत्वं च विशेषणं विना हिंसिधात्वर्थमानस्य निषेधा उस्तु । तथा च

क्रत्वश्रेहिंसाया ऋषि निषेधा लभ्यतहति शङ्कायो निषेधस्य क्रत्वश्रेत्वपुरुषा-श्रेत्वक्षेत्रधनाय बाक्यवेद्घ्यापत्या तद्रूषणे चास्त्र्यस्य नियमवर्णनस्योपयाग हति । एवं च क्रत्वश्रे हि प्रतिषेधः क्रत्वश्रे प्रतिषेधिदिति हिंसानिषेधयार्व-स्यमाणनियमलभ्यस्य क्रत्वश्रेत्वस्य वचनम्ये शङ्किष्यमाणस्य क्रतुपुरुषेत्रभ-यार्थत्वस्याप्युपलचणमिति बन्धन्तित्येतत्क्रतुपुरुषोप्त्रयार्थत्वं नास्तोति बन्ध-माणान्तरस्याप्युपलचणम् । तेन प्रकारेण न हिंस्पादित्येतत्कस्य चित्र्यकरणे न समाम्बातमिति दार्श्वान्तिकांशमाकाङ्कितमध्याङ्गत्य टीकार्थः कथितः ।

कथं कत्वर्थः स्यादिति । बाज्यभागजन्योपकारस्याभावेगासंभवा- ३५९ । ५ दिति भावः । प्राभाकरास्त्विति । प्राभाकराणां पर्युदासपची दर्शेपूर्णमासप्र-करणगतवाक्यस्यार्थवादत्ववचश्च हाना तूपायने*त्यधिकरणएव स्पष्टीकरि-ष्यते। प्रवृत्तिकैमर्थ्यनिर्णयाय चेति । यदाष्ट्यातेन कर्ता ऽभिधीयते तदा श्रुत्युपानकर्तृपुरुषशेषभूतमनृतवदनं निषेध्यमिति तिन्नषेधा ऽपि पुरुषाशौ भवति यदि तेन कर्ता नामिधीयते तदा प्रकरणसन्निधापितक्रत्वर्धे तन्निषेध्य-मिति तिन्निषधा ऽपि क्रत्वर्धे। भवतीति विचाराणां फलफलिभावमाह अभि-हितेति । ननु न ते। पशै। करातीति निषेधे आज्यभागवन्नानृतं वदेदिति निषेधे निषेध्यमनृतवदनं क्रत्वर्थतया विहितं नास्तीति चेत् । सत्यम् । क्र-त्वर्थद्रव्यादिषंपादनोषायभूतं यदनृतवदनं तदविहितमपि द्रव्याजेनवत्क्रतूप-कारकतया क्रत्वर्थमिह विविचतितम् । अथ वा व्रीहिमियेच्यइति संकल्प यस्तदलाभे तत्प्रतिनिधीन्नीवारादीन् त्रिहाय यवैर्यजते तस्य तत्संकल्पवच-नमनृतं जायतद्ति तथाभूतमनृतमिह क्रत्वथै।नृतववनमिति । विविचतम् । गम्यमानकर्तुः संख्याया इति । समानप्रत्यये।पातकर्तृसंख्याभिधानपत्ते नातिप्रमङ्गः । गम्यमानस्यापि चेत्कर्तुः संख्या ऽऽख्यातेनाभिधीयेत तदा पदान्तरोपानकरणादिसंख्या तेन सुतराममिधातुं शक्येति चिषे: काष्ट्रे: पच-तीत्यपि प्रयागप्रसङ्ग इत्यर्थः । ऋष गम्यमानस्यापि कर्तुरेव संख्या तेना-भिधेया तदैककर्तृके पाके तन्दुलाः पच्यन्तइति प्रयोगप्रसङ्ग इत्याह पच्य-तइत्यत्रापीति । अनभिहितस्यापीति । यत्प्रधानं कारकं तत्संख्या ३५८ । ४

^{*} व्याः सूर श्रार ३ याः ३ सूर **२**६।

[†] इहेति २-५ पु॰ पा॰।

वेदान्तकल्पतस्परिमले [अर ३ पा. १ ऋधिः इ ऽऽख्यातेनाभिधेयेति नियमः । तथा च पचित तन्दुलानित्यच कतुः प्राधा-न्यातत्संख्या तेनाभिधेया । पच्यन्ते तन्दुला इत्यन कर्मगाः* प्राधान्यात-त्संख्या बरणादीनां तु सर्वेचाप्राधान्यात्र क्वाप्याख्यातेन तदिभिधानप्रसङ्ग इत्यर्थः । अनुवादकत्वमाहेति । बलवदनिष्ठाननुबन्धीष्टमाधनत्वसूपं येय: साधनत्वमनूदा तन्निषेधः क्रियते स च निषेधा विशेष्यसत्वाद्विशेषग्र-निषेधमादाय पर्यवस्यतीत्यर्थः । रागपाप्तेति । पुरुषार्थेत्यर्थः । तथा चा-ख्यातापातभावनाचेपोपस्थितपुरुषशेषहिंसाविषयत्वेन चारितार्थ्यादनुपस्थित-क्रतुशेर्षाहं सानुवादति चिषेधविषयत्वकल्पनं गै।रवषराहतमित्यर्थः । नन् पुरुषा-र्थत्वेन क्रत्वर्थत्वेन च इसे।एस्थितिमपेच्य तिन्निषेधी ने।च्यते किं तु हिंसासा-मान्यनिषेधेन पुरुषार्थेहिंसानिषेधवत् क्रत्वर्थेहिंसानिषेधा ऽपि लभ्यतदत्यु-च्यते ऽतो न क्रत्वर्थते।पस्थितिगै।रषिमत्यस्वरसादाह उभयनिषेधे चेति । रागप्राप्ततेति । पुरुषार्थतेत्यर्थः । न तु रागाधीनप्रवृत्तिविषयतेत्यर्थः । क्रत्वर्थेहिंसाया ऋषि रागांधीनप्रवृत्तिविषयत्वात्फलरागं विना ऽद्यापि प्रवृत्त्य-संभवात्त्रामाधिकारे करगांशे रागतः प्रवृत्तिः ऋङ्गेषु वैधी प्रवृत्तिरिति नि-रालम्बनायाः प्रामाकरपरिभाषायाः सिद्धान्ताऽनभिमतत्वातदयुक्तम् ।

३५६ । ६

विशेषविधिविहितस्यार्थस्येति। ऋचेदं वक्तव्यम् । इहाप्युत्सर्गाप-वादन्यायः प्रवर्ततग्व हिंस्यादित्यनेन विहितहिंसाया ऋषि क्रोडीकारात्। मर-ग्रफले।पहितमरग्रकारगपुरुषव्यापारत्वं हिंसात्वं हिंसायब्दप्रवृतिनिमितं तद्वै-थहिंसायामप्यविशिष्ट्रम् । न च सत्यपि हिंसाशब्दार्थत्वे हिंस्यादित्याख्याते।पा-तभावानाविप्रतत्कर्तृषु रूषशेषभूतेव हिंसा प्रतीयतहति न तन हिंसिधातुना वै-थहिंपाक्रोडीकारे। ऽस्ति तद्यावतेकविशेषग्रमद्वावादिति वाच्यम् । उद्वेश्ये तया विशेषणायागात् । अन्यथा त्राहवनीयवाक्ये ऽपि जुहोतिघातुना ऽऽख्याते।पा-त्तभावनाचिप्रपुरुषशेषायां पुरुषार्थेह्यामानामेवानुवादे। न क्रत्वर्थह्यामानामिति च्योतिष्ठोमक्रत्वर्थस्य पदहोमस्य तेनाविषयीकरणादाहवनीयपदवाक्ययास्त्स-गीपवादन्यायः प्रत्युद्धियेत नारिष्टहोमादीनां च क्रत्वथानामाहवनीयसिद्धिने स्यात्। ननु तच प्रत्यचविधिविह्नितानां सर्वेषां होमानामनुवादसंभवादनपेचि-ते।द्वेश्यविशेषणे वाक्यभेदापतेर्ने पुरुषशेषत्वं विशेषणमिह तु हिंसामाचनिषेधे

^{*} कर्मगोति ३ पुः पाः।

श्रनृतवदननिषेधस्य क्रत्वर्धेत्वम् । हिंसानिषेधस्य पुरुषार्धेत्वम् । ५०५ लैकिके पुरुषार्थत्वं वैदिके क्रतुशेषतेति वाक्यवैद्धयापतेलैंकिकवैदिकान्यत-रग्रहणाकाङ्घायामुपस्थितपुरुषशेषभूतेव हिंसा गृह्यते नानुपस्थितक्रतुशेषभू-तिति चेत्र । लैाकिकवैदिकाभयविधहिंसानिषेधस्य पुरुषार्थैकहृपत्वोपपते: । निषेध्यनिषेधये।विषयैकह्य्यनियमस्विषदुः । स्त्र्युपगमनमांसभवणादीनां प्रतिषेधस्य ऋत्वर्थत्वदर्थनात् स्त्र्यपायमांसभद्यादिपुरुषार्थमपि श्रितः/ प्रति-षेथः क्रतारङ्गमिष्टः प्रकरणात्र्यादिति वार्तिकालेश्च । तथापि क्रत्वर्थस्य निषेध: क्रत्वर्थं ग्रव न पुरुषार्थं इति नियमोस्तीति चेन्न । श्रप्रयोजक-त्वात् । क्रत्वर्थेपुरुषार्थेसाधारगापगारगसामान्यादिनिषेधानां पुरुषार्थेत्वसंप्र-तिपत्तेश्च । ऋन्यथा ऋत्वनुष्ठानप्रतिबन्धकब्राह्मणापगारणादिषु स्वाच्छन्दाप्र-सङ्गात् । नन्वेवं सति क्रत्वर्थस्यैवानृतवदनस्य निषेधः क्रत्वर्थे इति क्रतुमध्ये क्रत्वर्थानृतवदनएव क्रते।वैंकल्यं पुरुषार्थानृतवदने तु या नाम क्रतुमध्यस्य इत्युक्तरीत्या पुरुषस्यैव प्रत्यवाय इति क्रवधिकरण्*िसद्धान्तो नावतिष्ठेत । उत्तनियमानङ्गीकारे क्रत्वर्थानि पुरुषार्थानि वा यावन्त्यनृतवद-नानि तेषां सर्वेषामपि निषेथस्य क्रत्वर्थत्वोपपतेरिति चेत् । उच्यते । नानृतं वदेदिति वाक्ये श्रनृतं वदेदिति भागस्य प्रकरणाम्नानादयमर्थे। भवति अनृतवदनेन दर्शपूर्णमासयारुपकुर्यादिति । ततस्व नजा संबन्यादयमंशा ऽनुवादे। न विधिरित्यवसायात् कृत्स्वस्य वाक्यस्यायमधै। भवति ऋनृत-वदनेन दर्शपूर्णमासयास्पसुर्यादिति यत्तन्नेति । इत्यमेवास्य वाक्यस्य याज-नाप्रकारे। वार्तिके दर्शित: । ग्वमनया रीत्या प्रकरणसमध्येत्क्रत्वधीनृतव-दननिषेध एव क्रत्वर्थे इति लाभान्न तिन्निवाहार्थमुक्तनियमा उपेचगीय: । न वेवं प्रकरणाम्बातानृतवदननिषेधवाक्यार्थकयने अनारभ्याधीतहिंसानिषे-धवास्यस्यानया प्रक्रिययेत्यमर्थे। भवति हिंसया पुरुषस्योपकुर्यादिति यत-न्नेति । तथा च पुरुषायेहिंसानिषेध एव वाक्याये इति क्रत्वयेहिंसायाः तद-विषयत्वातच नात्सगं।पवादन्यायप्रवृत्तिः । जत इदं घट्टजुट्यां प्रभातमिति वित्र । क्रत्वर्धहिंसाया: परंपरया पुरुषोपकारकत्वेन तस्या ऋपि तेन विष-यीकरणात् क्रत्वर्थताद्वारा ऋन्यया वा यया कथं चित् पुरुषोपकारपर्यवसा-ममाचमेव हि तचानुवादाकाटी प्रविष्टुं यथा उनृतवदननिवेधे पुरुषार्थता-

^{*} व्यतुमध्ये अधिकारणेति च पु॰ पा॰।

द्वारा उन्यथा वा क्रतूपकारमाचं न हि तचानृतवदनं पुरुषार्थतामनपेद्य क्रतूपकारकम् । क्रतूपयोगिद्रव्यादिराहित्यावस्याविशिष्टस्य पुरुषस्येव हि शेषभूतं सद् द्रव्यार्जनापायान्तरवत् क्रतूपकारकम् । एवं ब्रीहीन् संकल्प्य यवानुपाददानस्य संकल्पवचनानृततापादनमपि । न हि तदुभयं क्रत्वर्ध-तया विह्नितम् । नन्वेवं निषेध्यनिषेधयोरेकार्धतानियमाऽनादरे क्रत्वर्धः पुरुषार्थेषाधारणहिंसामान्यनिषेधस्य केवलपुरुषार्थतापपते: सांख्य एव विजयी स्यात् । महाफलसाधनस्य यागस्य प्रत्यचादिप्रमाखाप्राप्नं वित्तव्ययाया-सप्रयुक्तमिव पशुमालभेतेत्यादिश्रुतिप्राप्तं हिंसादिकरम्बितत्वप्रयुक्तमपि स्व-ल्पदुःखमस्त्विति प्रवृत्युपपतेः । त्रमिति विरोधे हिंसासामान्यनिषेधस्य वैर्थाहं साविधिना बाधनायागात् । श्रता हिंसानिषेधवाक्यस्य वैधहिंसापरि-हारमिच्छता निषेथवाक्यस्य प्रथममेव पुरुषार्थेहिंसाविषयत्वं वर्गनीयमिति न तचेात्सर्गापवादन्यायप्रवृत्तिः । श्रपवादसद्वावप्रयुक्ततद्विषयपरिहारस्थल-स्यैव तत्र्यायविषयत्वादिति चेदुच्यते । हिंसानिषेधविधानयोहत्सर्गापवाद-न्यायविषयत्वाभावव्यवस्थापनप्रत्याशया निर्मूलं निषेध्यनिषेधयोरेकविषय-न्वनियममवलम्ब्य पुरुषार्थेहिंसाया एव निषेध इति समर्थने ऽपि तया-हत्सर्ग।पवादन्यायविषयता नापैति मरणान्तप्रायश्चितमाहवाभिमुखहनन-मुचितदगडह्मपचारहननं स्तेनहननमिति बहूनां पुरुषार्थहिंसनानां निषेधेन परिहरणीयत्वात् । न हि सुरापस्य ब्राह्मणस्योष्णामासिञ्चेयुः सुरामास्ये मृतः शुध्येदिति शुद्धार्थमेव विहितमात्महननमशुद्धाषादकमिति वतुं शक्यम् । न दोषा हिंसायामाहवहति परस्पराहु।नपूर्वके धर्मयुद्धे ये।दुमभिमुखस्य हनने देवियाभावः कर्यत ग्रवातः ।

> भदराङ्यान् दराङयन् राजा दराङ्यांश्चेवाप्यदराङयन् । श्रयशा महदामोति नरकं चैव गच्छति ॥

स्तेनः प्रकीर्णकेशा मुमली राजानमीयात्कमां चचायाः पूता वधमाः चाभ्यामध्रत्नेनस्वी राजेति राज्ञा दग्रहरूपचाराद्यहनने स्तेनाहनने च दोष-स्मरणातादृशहनने ऽपि दोषाभावः पिद्धः । तथा च पुरुषार्थहिंसानिषेधपचे ऽप्यनुपदिष्ठप्रायश्चितविहितहिंसातिरिक्तहिंसाविषयत्वमवश्यं वक्तव्यम् । तथा च तत एव वैधपशुसंज्ञपनस्याप्युत्सर्गापवादन्यायेनेव परिहारिसद्धेः किं प्रथ-

श्रनुत्वदननिषेथस्य क्रत्वर्थत्वम् । हिंसानिषेथस्य पुरुषार्थत्वम् । ५०० ममैव तत्परिहाराथे पुरुषाथेहिंसाया निषेध्यत्वकल्पनेन । श्रहिंसन् सर्व-भूतान्यन्यच तीर्थेभ्य इति छन्दोगोपनिषदि हिंसानिषेधे तीर्थेपर्युदसनेनापि हिंसानिषेधविधानयासत्सर्गापवादन्याय: प्रत्याय्यते । तत्र हि तीर्थेशब्देना-गर्हिता या हिंसा सा पर्युदस्यते । ऋगहिता चानुपिद्रष्ट्रप्रायश्चितविहित-हिंसा। ऋत एव श्येनेनाभिचरन् यजेत आततायिनमायान्तं हन्यादेवा-विचारयन् इति विह्नियोरिष श्रभिच।राततायिवधयोः प्रायश्चितापदेशा-द्गिहितत्वेन न पर्युदामविषयता । एतेन वैधिहंसायां स्वल्पदेषो उस्तीति वदन्तः साङ्घाः साङ्घमतिनिरासाऽसामध्येन वैधपगुसंचपनं हिंसैव न भवति पश्वनुग्रहार्थेत्वण्रवणादिनि वदन्तश्चैकदेशिना निरस्ताः । क्रत्वर्थः पुरुवार्थेद्धपागहितवैथहिंसाम।चे सामान्यनिषेधाप्रवृत्ते: समर्थितत्वाद्धिंसारा-ब्द्रप्रवृतिनिमित्तसद्वावेन हिंसात्वाभावात्रययागाञ्च । न च न वा इवेतिन्मि-यसे तरिष्यमीत्यादियवयोन वध्यानुग्रहपर्यवसन्नत्वादांहंसात्वमाशङ्कनीयम् । व्रणगान्त्ययं कृतावयवच्छेदनस्य छेदनीयानुग्रहार्थत्वे ऽपि क्रीधकृतावयव-च्छेदमाधारणच्छेदेन शञ्द्रप्रवृतिनिमित्तसद्भावेन छेदनत्ववद्वैधहिंसाया ऋषि हिंसात्वस्यानिवार्यत्वात् । भाष्ये हिंसादीत्यादिशब्दगृहीतस्य सामािक्कष्टभ-**च**णस्य से।चामएयादिषु सुराग्रहादीनां चाऽनुच्छिष्टभचणत्वाऽसुराग्रहत्वा-दीनां वत्तुमशक्यत्वाच्चेनि यथाभाष्यमुत्सर्गापवादन्यायः समञ्जस एव । हिंसैव वैधमपि संज्ञपनं न हिंस्यादित्यच रागकृतता पुरुषार्यता वा ।

हिंसैव वैधमिष संज्ञपनं न हिंस्यादित्यत्र रागकृतता पुरुषार्थता वा ।
त्रादी न हिंसनविशेषणमस्त्यथापि नैत्सिर्गकः स्पृशित वैधमयं निषेधः ॥
सार्वित्रको न खलु वृत्तिनिमित्ततील्ये ग्रब्दार्थतापलपनं परिहारहेतुः ।
इच्छिष्टमचणसुराग्रहणानुरागग्राप्राखिलस्त्र्यपरिहारमुखेष्वमावात् ॥
रागग्रयुक्तपृष्ठपार्थविशेषये ऽपि हिंसि निषेधनमसर्वगमेव वाच्यम् ।
नो चेददेषलवमाहवहिंसनादि व्यावर्तनं प्रतिलमेत कथं निषेधात् ॥
इति श्रीमद्वरद्वाजकुलजलधिकीस्तुमशीमदद्वेतिवद्याचार्यश्रीविश्वजिद्याजिशीरङ्गराजाध्वरिवरसूनारणयदीवितस्य कृती श्रीवेदान्तकल्पतरुपरिमले तृतीयस्याध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

[&]quot; अत्र वष्टम् बान्याधिष्ठिताधिकरणं पूर्णम्।

श्रथ दतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः।

इह्0। १

संध्ये सुष्टिराह हि॥१॥

कर्मफलस्य यातायातरूपत्वेनेति । प्रथमाधिकरणे तावद्गमनं चिन्तितम् । तच सक्रलसंसारदुःखायतनस्य भूतेन्द्रियसंघातस्वपदेहसंब-न्धस्याऽऽब्रह्मसाचात्कारमिह परच च गताऽऽगतयारनुवृत्तिनिहृपिता । तचेत्र भातां वानात्मविन्वा*दिति सूचे देवभृत्यभावेन तत्प्रयुक्ते क्रेशकर-म्बितस्य स्वर्गभागानुभवस्य तुच्छत्वं सातिशयत्वं चाविष्कृतम् । द्विती-याधिकरणे सूचमदेहस्यापि कारणतया सकलसंसारक्रेशनिदानस्य कर्मबन्यस्य ब्रह्मचानपर्यन्तमनुवृत्तिनिरूपिता । तचैव स्वर्गभागस्य चियष्णुत्वदेषि। ऽपि कृतात्यय†इति सूचभागेन द्रिशतः । ग्रवमनेकदेषदुष्टस्यापि स्वर्गभागस्य जनकं यागादिकं प्रतिजन्म यावज्जीवकर्तेव्यस्नानसंध्यावन्दनादिविहितानु-ष्ठाननिषेधपरिहारहृपबहुविधगरीरक्षेशसाध्यस्मानीचारसापेचत्वादतिदुष्कर -मिति चरणादिति चे‡दित्यादिसूचैः प्रकटितम् । अनिष्टादिकारिणां तु शुभ-मार्गेगा गतिवी ग्रामं गच्छन् वृचमूलान्युपसपैतीति न्यायेन स्वर्गप्राप्रिमाचे वा नास्तीति तृतीयाधिकरणे वर्णितम्। चतुर्थे स्वर्गादवरोहताम् श्राकाशा-दिभावस्वणात् तदभिमानिदेवतानामिवाकाशादिशरीरकत्वप्रयुक्तः कियान् दिव्यमोगे। ऽस्तीति यङ्कावारगायाकाशादिषु संश्लेषमाचमित्युक्तम् । पञ्चमे ंतेषु चिरमचिरं वा ऽवस्थानमिति त्रनियमनिरासच्याजेन ब्रोह्यादिषु सुख-भागरहितम् ऋतिचिरावस्थानमिति दर्शितम् । तच्च तदभिमानिजीवात्मना चेत्रत्ववनपर्यन्तमेव भवेदित्यनतिहेयत्वगङ्कानिराक्षरणातेषु पंश्लेषमाचिति षष्ठाधिकरणे दर्शितम् । स च संश्लेषस्तेषां शोषणकुसूलावस्थापनावहनन-फलीकरणपाकभचणादिदशास्त्रनुवर्तमानः पितृवीर्यात्मना परिगामपर्यन्त इति रेत:चिक्सूचेण§ दर्शितम् । पुरुषभचणविषयत्वमनापन्नेषु ब्रीह्यादिषु संश्लिष्टानामनुश्रियनां तेषु संश्लेषः तत्तद्वीद्यादिपरिगामान्तरपरम्पराक्रमेण

^{*} व्याः सुः श्रन् ३ पान १ सुः छ।

[‡] व्याः धूर श्रः ३ पाः ९ प्रः ६।

[†] व्याः सूः श्रः । पाः ५ सूः दा

[§] व्या• सू॰ थ• ३ पा• व सू॰ ३**४ ।**

यथा क्षयं चित्पुरुषभचणविषयत्वप्राप्यनन्तरं तेषां तद्वीयात्मना परिणाम-पर्यन्त इत्यपि तेनैव सूचेण सूचितम् । पुरुषवीयानुप्रवेशे ऽपि योषितमप्राप्य तेषां न शरीरलाभः । तदादि वीर्यमपरिग्रहाणां वन्ध्यादिषु प्रवृतानां वा स्यानदा तद्वीर्यपरिग्रामान्तरक्रमेग पुनरपि पुरुषभचगविषयत्वं प्राप्य तद्वीर्य-संसक्ततया ऋतुमतीनां योषितां गर्भगोलकप्रवेशानन्तरमेव क चिज्जन्मनि भागात्रयस्य भागमाचसाधनानुष्ठानापयाणिनश्च शरीरस्य लाभ इति याने: शरीर मिति सूचेण दर्शितम् । एवं गतागतिन हृपणेन वैरायं दृढीकृतिमत्यर्थः।

जीवावस्थाभेदे। उनुगतः पादार्था न भवतीत्याशङ्क्ष्याह तत्त्वम्पद्ग- ३६०। ३ र्थविवेकायेति । महावाक्यार्थान्वयिषदार्थविवेकायेत्यर्थः । तद्वस्थमिति । स्ब्रो ऽप्यादित्यादिसद्वावादिति भावः । मनस्तु स्वमे सद्पीति । व्याव-हारिकमपीत्यर्थ:। ननु मना यदि दृश्यत्वाद्वात्मभासनचमं तर्हि स्वाम श्रादित्यादिरपि तत एव तथेति तन्मिथ्यात्वसमर्थेनं व्यथेमित्याशंङ्क्य प्राति-भाषिकत्विषद्धार्थे तदित्याह श्रादित्यादीनामिति । शुक्तिरजतात्म-कमेकमेव वस्त्वित । रजतावयवै: शुक्त्यवयवैश्व शुक्तिरारब्धा यथा व्रीह्मवयवैनीवारावयवैश्च नीवाराः । त्रात एवेष्ट्रिष् व्रीह्मलाभेन समग्रवी-द्धवयवापादानाऽसंभवे सति यथा क्षयं चिद्∮ व्रीहिशास्त्रार्थेलिएसया कति-पयत्रीह्मवयववन्ता नीवारा उपादेया इति पूर्वतन्त्रे प्रतिनिधिपेटिकायां सम-र्थितम् । इयास्तु विशेष: । शुक्ती शुक्यवयवा भूयांस इति प्रायेण शुक्या-कारो गृह्यते तदग्रहणदशायान्तेनाभिभवाद्रजताकारे। न गृह्यते देषवशा-तदग्रहणे गृह्यतइति भावः।

तद् दूषयतीति । नीवारेषु ब्रीह्मवयवानामिव शुक्तिषु रजतावय- ३६२ । ११ घानां सत्त्वे शुक्तिदाहे चारभाववद् द्रवीभावस्याप्युपलब्ध्यप्रसङ्गः । श्राधाने रजतग्रकलाद्यलाभे शुक्तिशकलोपादानप्रसङ्गः । त्रतः शुक्ता रजतावयवाभा-वातत्यत्वेन रजतज्ञानप्रमात्वसमर्थनमयुक्तम् । क्रथं चिद्रजतावयवसत्वकः ल्पने ऽपि सर्वावयवाबच्छेदेन शुक्ता रजतज्ञानस्य चित्रपटे सर्वः पटे। रक्त इति चानस्येव प्रमात्वं निर्वेाढुं न शक्यम् । श्रसावेनिकं चैतदवयवालम्बन-

^{*} व्याः सुः ग्रः ३ पाः ६ सूः ३७। ‡ इष्टिब्रिति नास्ति २ पुः ।

[†] विवेकार्थमिति सुः सूनपाठः।

तया प्रमात्वसमर्थनं तेन नीवारादिषु ब्रीह्मादिज्ञानस्य प्रमात्वाक्ष्लाभात् । न हि रजतावयवेषु रजतत्विमव ब्रीह्मवयवे ब्रीहित्वमस्ति । उत्पत्ने नीलिमा उत्पत्ने उर्हाणमिति ज्ञानये। श्व प्रमात्वं निवेद्धमशक्यं द्रव्येषु द्रव्यान्तराणा-मिव निरवयवेषु गुणेषु गुणान्तराणामवयवानुप्रवेशस्य वक्तुमशक्यत्वात् पृथ-ग्भूतयोश्च नीलिमाहणिमगुणयोरेकच व्याप्यवृत्तितया समावेशाऽसम्भवादिति देशान्मनिस्कृत्य दूषयतीत्यर्थः । ननु ते। यद्वेदिध्यवादिनं प्रति पिपासोपशमह्मपते। यार्थक्रियाव्यावृत्तिसाथनं न यक्तं मित्याशङ्क्ष्य ते। यद्वेविध्यकन्त्यम् त्रावदाह पिपासोपशामकमिति । श्रकत्यने चेति । ते। यद्वेविध्याकल्पने इत्यर्थः । कल्यनइति पाठे पिपासोपशमकमुदकमित्येक-विध्यकल्पनइत्यर्थः ।

३६२ । २८

तन्निषेधस्य पूर्वेण कर्तुमशक्यत्वादिति । ननु के। उच निषेधः यः परेण पूर्वस्य कर्तुं शक्यः सन् पूर्वेण परस्य कर्तुं न शक्य इत्युच्यते। किं ध्वंस उत स्वरूपता विषयता वा तदमावबाधनम् । नादाः । द्विचि-पूर्वज्ञानस्योतरात्मविशेषगुग्रमाचात्कालाच्च ध्वंससत्वेन चणावस्यायिनः तत्साचारणस्य ध्वंसकत्वस्य विरोधिविषयज्ञानाऽसाचारणवाधकत्वस्रुपतानुप-पते: । न द्वितीयतृतीया । रजतविषयतया निष्यद्वत्वेन स्वस्त्रपता नास्तीति तद्रजतविषयं न भवतीति च तस्याभावबाधनासम्भवात् । न च रजतज्ञा-नस्य भ्रमत्वप्रत्यायनं निषेधः । द्र्षेणे चैत्रमुखं नास्तीति पूर्वप्रत्यवेण चैत्र-मुखसिन्चानानन्तरभाविना दर्पणे चैत्रमुखमिति प्रत्यवस्य वृद्योध्वायत्वप्र-त्यवेण तत्समसमयवर्तिजलप्रतिबिम्बितवृचाधाग्रत्वप्रत्यवस्य च भ्रमत्वप्र-त्यायनादिति चेदुच्यते । पूर्वे बाध्यं परम्बाधकमिति प्रायिकािकः । लोके प्रवृत्ति चंवादादिना वेदे तदर्थतत्विनिर्णायकन्यायेन च बलवद्वाधकम् इत-रद्वाध्यमिति व्यवस्था । इयांस्तु विशेषः । परेश पूर्वस्य भ्रमत्वप्रत्यायनमेव बाधः पूर्वेग परस्य तु सापाधिकभ्रमस्थले भ्रमत्वप्रत्यायनं बाधः निरूपा-धिकभ्रम‡स्थले वैदिके चार्त्पातप्रतिबन्धः । त्रत एव शोद्रभाविना ग्रीतिव-नियोगेन लैङ्गिकविनियागस्य बाध इष्यते ।

ज्ञानप्रमात्वेति इ पु॰ पा॰ ।

र्ग क्रियाच्या स्थायत्वच्यावृत्तिसाधनं युक्तिमिति ३ पुः पाः ।

[‡] निरुपाधिसमिति ९ पु॰ पा॰।

भारते वर्षे या रजनीसमय इति । लक्षयाजनविस्तृतवर्तुला- ३६३ । २५ कारलवणार्योवपरिवृतस्य लचये।जनविस्तृतस्य जम्बृद्वीपस्य मध्ये भूकम-लकार्यकाकृतेरिलावृताख्यमध्यवर्षमध्यमध्यासीनस्य मेरोर्दिचियते। हरिकि-म्पुरुषभारताख्यानि चीणि वर्षाणि । उत्तरता रम्यक*हिरणमयातरपुरुसंज्ञानि चीणि । पश्चिमतः केतुमालाख्यमेकम् । पूर्वते। भद्राश्वसंत्त†मेकम् । वयन्ति रमन्ति चैतेषु प्राणिन इति मर्यादा । पर्वतान्तरिताः प्राणिनिवासः स्थानभूता भूप्रदेशा वर्षाय्युच्यन्ते । तेषु मेरं प्रदिचणीकुर्वाणस्यादित्यस्य रश्मया यदा यावत्पर्यन्तं प्राप्नुवन्ति तदा तावत्पर्यन्तं दिवसः अन्यव रजनीति व्यवस्था। एवं च भारते वर्षे सूर्यास्तमयानन्तरं केतुमाले मेर-व्यवधानाभावात्स्र्यप्रकाशे। उस्तीति दिवसे। भवति । त्रता रजन्यां दिवसे। न विरुद्ध इति शङ्कावारणाय भारते वर्षे रज्न्यां सुप्रस्य तचैव स्वाग्नं दिव-सदर्शनमुदाहृतम् । नन्विदं रजन्यां दिवसदर्शनं न विरुध्यते स्वप्ने परमे-श्वरसृष्टुस्वप्रदृगेकानुभाव्यादित्यरिष्मप्रचारेग तं प्रति तदा दिवसे।पपते: । एवं च मुहूर्तमानवर्तिन स्वप्ने वर्षपूगातिवाहनं च युच्यते । देवादिकाला-षाधिभ्यो मनुष्यादिकालोपाधिभ्यो मनुष्यादिकालोपाधीनामिव जायत्काली-पाधिभ्य: स्वाप्नकालोपाधीनां सूदमत्वतारतम्यकल्पनात्कालविपर्यासवद्वेश-विषयासा ऽपि घटते । स्वप्ने कुरुदेशाधिष्ठितशरीरसदृशेन यथास्वप्नानुभवं तद्विषदृशेन वा शरीरान्तरेण पञ्चालदेशगमने।पपते: ये।जनशतप्राध्य-स्यापि देशान्तरस्य चर्यान प्राप्तेः चर्यान ततः प्रत्यागतेश्च स्वाप्रशरीरस्था-श्चर्यस्य जायच्छरीरविलचणत्वादुपपते: । जागरे गजादिमत्सु देशेषु रयाद्युपलम्भस्य च‡ स्त्रप्राश्वानां जागरिताश्वानां च जलालाकपवनन्यायेन म्तत्वे ऽपि मिथःप्रतिघातकत्वाभावकल्पनयापपतेः स्वप्रानुभूतरथादीनां स्वप्रदृष्टदाहरयादिभस्मनां च जागरानन्तरमन्नुभवस्य स्वप्रान्ते परमेश्वर-कृतनिरवशेषस्वाप्रपदार्थोपसंहारकल्पनया स्वाप्रपदार्थानां स्वाप्रचतुरादिमा-षगम्यत्वकल्पनया चे।पपतेरिति चेदुच्यते । यतावल्लोकदृष्टविषद्धं किमव-लम्ब्य कल्यते । बहिष्कुलायश्रुति रथादिसृष्टिश्रुति चेति चेत्र । बहिष्कु-

^{*} रम्याकेति ९ पु॰ पा॰। ्रां मद्राख्यसंज्ञीमति ९ पु॰ पाः।

[‡] देशेषु कुरुदेशशयिताद्युपनमास्येति २ पुः पाः।

लायश्रुते: स्वे शरीरइति श्रुत्यनुसारेण भाक्तत्वात्। शरीरान्तरमणि स्वीयमे-वेति न विरोध इति चेन्न । तस्य पूर्वेशरीरवत्स्वीयत्वमनुक्तसिद्धमिति तस्यावत्रव्यतया तस्याः युतिर्विकृतयरीरान्तरपरिग्रहदर्शने ऽपि बहिः सञ्चारदर्शनेवि शेते पूर्वशरीरएव परिवर्तते नापि बहिः सञ्चरतीति तस्य सर्वस्यापि मिथ्यात्वदर्शनेनैव सामल्यस्योपपादनीयत्वाद् न तत्र रथा इत्या-द्युपन्नमानुसारेण भाक्तत्वात् । तच लडाख्याताभ्यां रयाद्यभावरयादिसृष्ट्योः समानकालत्वप्रतिपादनेन रथादिमिथ्यात्वे तात्पर्यावसायात् । ऋषेत्यव्य-यस्य त्रयापीत्येतदर्थत्वेनाप्युपपत्तेः । क्रिं च सृष्टिशरीरान्तरश्रुत्याः स्वार्थ-परत्वे प्रकरणप्रतिपाद्यप्रधानार्थविरोधः स्यात् तद्धि प्रकरणमात्मनः स्वयं-च्योतिष्टुं सार्घायतुं ॥ प्रवृतम् । तच जाग्रदवस्थायामादित्यादिच्योतिर्व्यातिका रातद् दुर्विवेचिपिति तद्विवेचनाय स्वप्नावस्था ऽवतारिता । तच यदि स्रिष्टिः प्रतिपाद्येत तदा तस्यामपि तदुर्विवेचं स्थात् । त्रादित्यादिन्योति रन्तर-सद्वावात् । त्रतः प्रधानप्रतिपाद्यविरोधात्स्वर्गार्थच्योतिष्टोमप्रकर्णे तदङ्गवि-ध्यर्थवादहृषस्य के। हि तद्वेद यदम्बिम् लोके ऽस्ति वा न वेति वाक्य-स्मेव स्वप्रसृष्टिशरीरान्तरपरिग्रहवचनस्य न स्वार्थे तात्पर्थमित्येव वर्तुं युक्तम् । क्रिं च स्वप्ने महासेनायां गजतुरगवृषभाष्ट्रभटादिरूपाः पारेपराद्धे चेतना दृश्यन्ते । एवमेकैकस्य स्वप्नं निर्वेष्टुं कियन्तश्चेतनाः कुतः समा-नीय परमेश्वरेणापि मेलनीयाः। न हि स्वप्ननिवाहार्थमेव तेन क्व चित्के च-न चेतनाः पृथग् निवेशिताः सन्ति । चेतनांशे चेत् स्वप्रानामयथायैता अवेतनांशे ऽपि तथा उस्तु किमर्धनरतीयेन । अवश्यं तच्छरीरान्तरपरि-महे ऽपि प्राचीनं तदेवेदं मच्छरीरमित्यभिमानांशे ऽपि स्वाप्रसृष्ट्यङ्गीकारे sिष चिरातीतेषु पिचादिषु दृश्यमानेषु तग्रवैते मे पिचादय इत्यभिमानांशे sिष अमत्वमवश्यं वाच्यम् । त्राम्विमिव शैलायमाविद्यमिव काननिमत्यादिलेका-नुभविषद्धं च स्वास्य भ्रमत्वम् उतेव स्त्रीमि: सह मादमान इत्यादियुत्या ऽपि तदनूदितम् । तस्माद्युत्तं देशकालादिविपर्ययेग स्वप्रस्य मिथ्यात्ववर्णः नस्‡ ॥

^{*} प्रसाधियत्विमिति च पुः पाः। , † स्नादित्यज्योतिरिति ९ पुः पाः।

[🗜] अत्र प्रथमे संध्याधिकरणं पूर्णम्।

तदभावा नाडीषु तच्छुतेरात्मनि च॥०॥

' ३६५ । १९

म्लाऽविद्यायाः स्थितत्वादित्यर्थं इति । सूच्यतइति शेषः ।

गवं हि तावच्छब्दस्यान्वया भवति । बृहत्पृष्ठं भवतीति च्योतिष्ट्रोमे

मार्ध्यान्दनपवमानानन्तरभाविमाहेन्द्रस्तोचं पृष्ठाख्यं बृहत्पृष्ठं भवतीत्यादिवाक्यद्वयेन बृहद्रयन्तरे तत्साधनत्वेन विधीयेते ।

हैगाह्रदगीतिक्रियाह्रप
समिविशेषवाचिने।बृहद्रयन्तरशब्दयेाः प्रगीतमन्त्रसाध्यगुणिनिष्ठगुणाभिधान
हपस्तोचिवशेषवाचिनः पृष्ठशब्दस्य च साध्यसाधनभावविवचां विना सामानाधिकरण्यायोगात्तयोश्चैकस्तोचसाधनत्वाद्वीहियवन्यायेन विकल्प इत्यर्थः ।

刑

इह्७।४

त्रीह्यनुष्ठानपत्ते इति । प्रथमं त्रीह्यनुष्ठानइत्यर्थः । एवं यवा-नुष्टानपत्त्इति । द्वितीयप्रयोगे यदा यवानुष्टानं तदा व्रीहिशास्त्रस्य प्रतीत-प्रामाण्यपरित्यागा ऽप्रतीताऽप्रामाण्यस्वीकारश्च द्वौ देखि। पुनस्तृतीयप्रयोगे व्रीहिषूपादीयमानेषु व्रीहिशास्त्रस्य स्वीकृताऽप्रामाग्यपरित्यागः परित्यक्त-प्रामाण्यस्वीकारश्वेति* द्वौ देखि। एवं प्रयोगचयेण यवशस्त्रे चत्वारी दोषाः । त्रीहिशास्त्रे चत्वार इति । एवमष्टदेषदुष्टो विकल्प इत्यर्थः । नाडीपुरीतद्भुस्यां विकल्पे तु द्वादश देाषाः प्रसच्चेरन् । तथा हि एकस्यां सुमी नाड्यां शयने पुरीतद्वाक्ये ब्रह्मवाक्ये च प्रत्येकं प्राथमिकी द्वी द्वी दे। बै। सुप्र्यन्तरे पुरीतित शयने नाडीवाक्ये प्राथमिकी द्वी देगि। पुरीतद्वाक्ये तूपरितनमपि देाषद्वयमिति चत्वारे। देाषाः । पुनः सुप्यन्तरे ब्रह्मणि शयने ब्रह्मवाक्ये ऽप्युपरितनदेशषद्वयम् । ततः सुप्यन्तरे नाड्यां शयने नाडीवाक्ये ऽप्युपरितनं दे।षद्वयमिति स्वापचतुष्ट्रयेन द्वादश दे।षाः प्रादुःष्युः । ननुः प्रामाख्यपरित्यांगा नाम प्रामाख्याभावस्वीकार एव अन्याऽनिर्वचनात् । अप्रामा-ग्यस्वीकारा ऽपि स एव निर्देशि वेदविपर्यासह पाप्रमितिजनकत्वस्यासंभवे-नाप्रामार्यस्वीकार इत्यचाऽप्रामार्ययशब्दस्य प्रामार्य्याभावपरत्वात् तथा चाद्य-यादें।षयोनं भेद इति चेत् । उच्यते । उमयनापि प्रामाग्याभावस्वीकार गव पर्यविषिता देशः। तस्य च देशक्त्वबीचं द्विविधम् प्रामाएये प्रमाणस्य निर्दे।-षत्वादेः सद्वावहृषं प्रामाग्याभावे प्रमागस्य प्रामाग्याऽनुपलम्भस्याभावहृषं चेति । एवं च भावप्रमाग्रसद्वावीपाधिकतया त्राद्या देशः । त्रभावप्रमाग्रा-

^{*} इतिशब्दो नास्ति ३ पुः।

भावे।पाधिकतया स एव द्वितीया दे।ष इत्युपाधिभेदेन दे।षद्वैविध्यं विविध-तम् । तदुत्तं वार्तिके

> प्रमाणं त्वप्रतीतं यदुञ्चलं तदपहृतम् । एकस्तावदयं देाषः स्थात्प्रमाणविपर्ययात् ॥ तथा तदप्रमाणत्वं यदभावप्रमाणकम् । भावे सत्यप्यभावेन विनैव परिकल्पते ॥ इति ।

श्रवाद्यश्लोके प्रमाणविषयंयादित्यनेन प्रामाण्यभद्वावविषयकप्रमाणाऽविरोधादित्ययंकेन भावप्रमाणासद्वावमूलकं प्रामाण्याभावस्वीकारस्य देशक्त्यं द्रियतम् । द्वितीयेन तु श्लोकेनाभावप्रमाणसद्वावमूलकं प्रामाण्याभावस्वीकारस्य देशक्त्वं दर्शितम् । द्वितीयश्लोकस्यायमर्थः । यथा प्रामाण्यपरित्यागाः देशक्त्यां तदप्रमाणत्वमपि देशः । यत् यस्माद्धेताः श्रभावप्रमाणकं प्रामाग्यानुपलिब्धकृपाभावप्रमाणयाद्यं प्रामाण्याभावकृपमप्रमाणत्वं भावे सत्यपि प्रामाण्योपलम्भकृपे भावे विद्यमाने ऽपि तस्याभावेन विनेव कल्यते तताः हेति।द्वितीयदेश इत्यर्थः ।

89 1 QBE

पृष्ठस्तोत्रमावर्ततं हित । ननु पृष्ठस्तोत्रमं न भवति येनाङ्गानुरोधात्प्रधानाभ्यासे इदमुदाहरणं भवेत् किं तु बृहत्पृष्ठं भवित रथन्तरं पृष्ठं
भवतीति पृथगुत्पत्तिवाक्याभ्यां बृहत्सामकं रन्यन्तरसामकं चान्यदन्यत्पृष्ठस्तोत्रमुत्पन्नम् । एवं च यद्यपि स्तुत्तशस्त्राधिकरणं न्यायेन स्तोत्राणामदृष्ट्राप्रेत्वातस्तोत्रद्वयस्यापि समुद्ययः प्राप्नेति तथापि बृहद्वा रथन्तरं वा पृष्ठं
भवतीति वचनवलाद्विकल्प इत्युक्तं नवमाध्याये वार्तिककारैः । सतदवलम्बनेनैव च तैर्बृहद्वयन्तरधर्माणां बृहति प्रस्तूयमाने समुद्रं मनसा ध्यायेद्वयन्तरे प्रस्तूयमाने संमीलयेदित्येवमादीनां यथानिर्देशं व्यवस्था समर्थिता ।
बृहद्वयन्तरयोरेकार्थत्वे तु त्रीहिधर्माणां यवेष्विव तेषां संकरः स्यादित्यप्युक्तम् । त्रतः प्रकृती। प्राप्तस्य समुद्ययस्य विकल्पवचनेनापोदितस्य
गोसवादिष्यनुज्ञाकरणस्वेदमुदाहरणं न त्वङ्गानुरोधात्प्रधानाभ्यासइति चेत् ।
सत्यम् । माहेन्द्राख्यं पृष्ठस्ताचमेकमित्यप्यस्ति मतान्तरम् । तदित्यम्। पृष्ठैः

^{*} ग्रावर्त्यतक्ति = पु· पा·।

[†] जै सूर मार्या १ सूर १३-३१।

स्तुवतइति माहेन्द्रादीनां चतुर्यां स्तोचाणामुत्यितवाक्यं वाक्यशेषे तेषां सङ्कीर्तनात् तच बृहत्यृष्ठं भवति रयन्तरं पृष्ठं भवतीति माहेन्द्रे पृष्ठस्तोचे बृहद्ययन्तरयोः साधनतया विधानमित्येकार्यत्वादेव तयाविकल्यः । न तु तद्विधायकवाक्ययोवीकारो ऽस्ति । पृष्ठस्तोचे भेदपचे ऽपि* नास्ति बृहद्वयन्तरवाक्ययोवीकारापेचा लिङ्गदर्यनात्त्याविकल्पसिद्धः । समुच्चये हि द्वादयाग्निष्ठोमस्य स्तोचाणीति स्तोचसंख्या तस्य नवित्यतं स्तोचीया हित स्तोचीयाच्यक्षसंख्या च पौद्धेत चयादय स्तोचाणि स्रोत्तरे द्वे यते स्तोचीयाच्यक् संख्या च पौद्धेत चयादय स्तोचाणि स्रोत्तरे द्वे यते स्तोचीयाच्य स्यः । ऋतः सप्रदय्योः क्योध्यत्त्रस्तोचयोवैकल्पिकत्वे वक्तव्ये गोसवे उभे कुर्यदिति विकृतिविधेषेषु बृहद्वयन्तरस्तोचसमुच्चयविधानलिङ्गात्प्रकृती तयोरेव विकल्पो ऽवसीयतद्वति । धर्मासङ्करस्तु ग्रूरत्विच्यत्वादियुति तयोरेव विकल्पो ऽवसीयतद्वति । धर्मासङ्करस्तु ग्रूरत्विच्यत्वादियुति तयोरेव विकल्पो ऽवसीयतद्वति । धर्मासङ्करस्तु ग्रूरत्विच्यत्वादियुत्रस्तु ग्रूरत्विच्यत्वादियुत्रस्तु ग्रूरत्विच्यत्वाद्वारम्यत्वाद्वाद्वारम्यत्वाद्वाद्वारम्यत्वाद्वारम्यत्वाद्वारम्यत्वाद्वारम्यत्वाद्वारम्यत्वाद्वारम्यत्वाद्वारम्यत्वान्त्वाद्वारम्यत्वान्वाद्वारम्यान्त्वाद्वारम्यत्वान्तिक्रयाह्वता ।

नन्वत्रापि कथिमिति । बहुयागसमुद्ययग्वेदमुदाहरणं न त्वेकस्य यागस्याङ्गानुरोधादभ्यासे इति ग्रङ्कार्थः । इमां ग्रङ्कां ग्रुप्ते।माधिकरणे स् से।मादाहरणविषयसिद्धान्तं दर्शयन् गरिहरित इदमन्नाक्ततिमत्यादिना । २६७ । १६ इतराणि त्विन्द्रियवाय्वादिविशिष्टेति । यागोत्पत्तिवाक्यावगतं से।मलत्याया हिंधष्टुं रसद्वारेत्यभिषवादिसंस्कारवाक्यपर्याले।चनया पर्यवस्यतीतिं न विरोध इति भावः । यदीमानि देवताविधानानीति । ग्रेन्द्र- बाय्वादिवाक्यानां देवताविधानार्थत्वे तत्यापितदेवतानां याच्यानुवाक्यानां मन्त्रवर्णकिल्पतिविध्यापिते।पांशुयाचदेवतानामिवैककार्यत्वाद्विकल्पः स्याद् न त्वेवं तेषामिन्द्रवाय्वादिदेवताद्वेश्यकग्रहणविध्यानार्थत्वस्य वद्यमाणत्वादि- त्यर्थः । द्रव्यं चेति । यदि ग्रहणसंस्कृतं सर्वे द्रव्यं ग्रुगपत्यतुं शक्यं तदापि देवताविकल्पः स्यात् । विकल्पेनैकैकामेव देवतामृद्धिश्य त्यागसंभवात् । द्रव्यमपि सकृत् त्यनुं न शक्यते ग्रहचमसेषु तत्तद्वेवते।द्वेशेन पृथग् गृही-

^{*} स्तोत्रपचे त्योति २ पु॰ पा॰। † जै॰ सू॰ ग्र॰ २ पा॰ २ सू॰ ९७-२०।

तानां तथैव पृथक् त्यक्तव्यताया वद्यमाणत्वादित्यथै: । प्रथमं युगणत् त्यतुं द्दंद । ९ न शक्यमित्येतत्सम्भावितसकलणङ्कानिराकरणेनीपपादयति न तावदिति । ननु दशम्ष्रिपरिमितापि लता सकृदेव त्यञ्यतां तवाह न च दशापीति । चिमण्यक्तमंणि सेमलतां निधाय यावभि: कुट्टनं प्रावनं वस्त्रेण सेमरसगालनं प्रावयतीत्यादिनेत्यन्वय: । गालयतीति तदर्थकथनं तु दशमृष्टिपरिमितस्यापि सेमस्य रस एकस्मिन् पाचे ग्रहीतुं शक्या बहुपाचाऽपर्याप्रश्व । चत्र एकस्मिन् पाचे ग्रहीतुं शक्या बहुपाचाऽपर्याप्रश्व । चत्र प्रकस्मिन् पाचे गृहीतस्य सकृदेव त्यागाद्वेवताविकल्पः सिध्येदित्या- शङ्का रसबाहुल्यप्रत्यायनाय नियतपरिमाणेषूदककलशेषु संस्कृतस्य सेमरस्य स्थिति शावरभाष्योक्तविशेणाथै दर्शयित तस्य च नियतेति । एवं भूयसे। ऽपि रसस्य युगणत्यागर्गङ्का तत्तद्वेवते।देशेन पृथग् ग्रहणं प्रदर्श्य निरस्यतीत्याह न च सर्वे। ऽपीति । ग्रहणविकल्पेन देवताविकल्पशङ्कां निरस्य तीत्याह न च सर्वे। ऽपीति । ग्रहणविकल्पेन देवताविकल्पशङ्कां निरस्य तीत्याह न च प्रतीनद्रवायवादिकमिति । न चैकस्मिन् पाचे इति । न च यावान् संमाति तावानेव गृष्ट्यतामिति शङ्कनीयम् । कृत्त्वस्य रसस्य देवतार्थत्वाभावे तावद्रससंपादनस्यादृष्टार्थत्वप्रसङ्गस्य टीकायां वद्यमाण-त्वादिति भावः।

ननु यदि देवताविशिष्ट्रग्रहणविधिन यागे देवताविधिस्तदा कथमामां देवतानां यागान्वयिविद्विरित्याशङ्काह ग्रहण्मान्ने त्वपर्यवसानादर्थोद्देवतानां यागान्वय इति । त्रयं भावः । येन्द्रवायविमत्यादयस्ताबट्टेवतातिद्वितान्ताः न तु मंबन्धमामन्यादिविषयतिद्वितान्ताः । मस्त्वतीयं
गृह्वातीत्यव छप्रत्ययस्य द्यावाष्ट्रियवीसुनासीरमस्त्वदग्नीपामवास्ताष्प्रतिगृहमेथाच्छ चेति सूचेण देवतायामेव विहितत्वेन तत्प्रायपाठादैन्द्रवायवादिध्विप देवतातिद्वितिष्ट्वयात् । न च ग्रहणान्वयमाचेण देवतात्विन्वीहः ।
भूत्तहविषोरेव देवतातिद्वितिनयमात् । त्रतस्ततत्याचगृहीतसामरसङ्ग्रेहिवःपंबन्धेनैव तेषां देवतात्वमर्थात्यर्थवस्यतीति ।

नन्वभ्यासे प्रमाणाभावमुक्षा ब्रीहियवसमुच्चये प्रमाणविरोध उच्चते क्षयमनयारेकविषयत्वम् पुराडाशस्य चेति चकारेण प्रत्याय्यतदत्याशङ्कष्य ३६९ । १ प्रमाणाभावाक्तिमपि समुच्चयविषयतया याजयति ब्रीहियववाक्ये इति । वस्तु-तस्तु बहुपाषगृहीतसे।मरसद्रव्यक्यागाभ्यासक्षत्यनद्दव ब्रीहियवप्रकृतिकपुरा- हाशद्वयद्वयक्षयागाभ्यासकल्पनायां तथा बलवत्प्रमाणं नास्त पुरे। हाशप्रकृति-द्वयाकाङ्कायां स्वस्वशास्त्रसमपितयोत्रीहियवयोः प्रत्येकं पुरे। हाशनिवर्तनसा-मध्ये पर्यालोचयता प्रयोगवचनेन तथाः पाचिकत्या ग्रहणे। पपतः । त्रत इह नाभ्यास इत्येतावन्माचपर इह त्वित्यादिग्रन्थः । पुरे। हाशस्य चेत्यादिग्रन्थः स्वेकस्य। मेव सुषुप्रौ नाडोपुरीतद्ब्रह्मणां समुच्चयं वकुमेकस्मिन् पुरे। हाशे यथा ब्रीहियवयोर्न समुच्चयस्तथेह किं न स्यादित्याशङ्कायां तद्वेषम्यप्रदर्शनार्थमुत्तरग्रन्थेष इति यक्तं पुरे। हाशस्येत्यादिवाक्यानन्तरं न तु नाडोपुरीतद्ब्रह्मणामिन्त्यादिवाक्यान्तरं । इह त्वित्यादिग्रन्थे। प्रि व्रोहियवन्त्यादिवाक्यायां तथैवावगमात्। इह त्वित्यादिग्रन्थे। प्रि व्रोहियवन्त्यादिवाक्यप्रवृत्तिच्छाययां तथैवावगमात्। इह त्वित्यादिग्रन्थे। प्रि व्रोहियवस्मुच्यस्य प्रमाणाभावेन निराकरणम् इह त्वेकपुरे। हाशार्थेतया तत्समुच्चयस्य प्रमाणाभावेन निराकरणमिति विषयभेदस्थापरिहायत्वाच्च।

मित्रपुरे। डायपचे प्रमाणिवरे। घमुपपादयित पुरे। डाराचे। द्वरे । १ विति । त्रीहिश्रुतिबाधः स्यादिति । नन् समुच्चये सित नाप्राप्रांशपरिपूर्यायं त्रीहिश्रुतिबाधः सर्वेष्वपि पुरे। डायेषु त्रीहिप्राप्तिसन्तेन क्व चिदिष तदप्राप्त्रम्य भावात् प्रत्युत विकल्प एव । यवपचे त्रीह्मप्राप्त्रा तद्वाधः । एवं यवप्रतेरिष यवाप्राप्तांशपरिपूरणार्थे। या समुच्चये बाधः किं तु विकल्पएवेति चेदुच्यते । व्यव्याप्रपार्थायप्त्र कृत्सस्य पुरे। डायस्य प्रकृतिद्रव्याकाङ्घायां त्रीहिशास्त्राम्प्रते यवनीवारादीनामिव कृत्सपुरे। डायिनिर्वतेनसमर्थेकद्रव्यालाभे त्रीहिष्यवह्रपद्रव्यद्वयस्यापि पचे प्राप्तिभवित तथा चाकाङ्कानुसारिणा त्रीहिष्यास्त्रेण कृत्सपुरे। डायप्रकृतितया त्रीहिनियमे क्रियमाणे पचप्राप्तानां नीवारादीनामिवं त्रीहियवद्वव्यद्वयस्यापि निवृत्तिभवत्येव । कृत्सपुरे। डायप्रकृतितया पचप्राप्तानां यवानां परं निवृत्तिने भवित यवशास्त्रविरोधात् । मित्रद्वव्यद्वयनिवृत्तौ तु नानुपपितः तिद्वधायक्रयास्त्राभावात् । एवं च मित्रपुरे। डाये क्रियमाणे त्रीहिप्रतिबाधः । एवं यवश्रुतिबाधोपीति युक्तमुक्तम् ।

न्यायसुधायां* तु

त्रीहया निरपेचा हि चायन्ते यागसाधनाः । यवाश्चैवमतस्तेषां मिश्रत्वं नावकल्पते ॥

^{*} इयं न्यायसुधा तन्त्रवातिकव्याख्या राशकितत्यप्रस्या नामान्तरं यूयते।

वेदान्तकल्पतरुपरिमले [अः ३ पाः २ ऋधिः २-३

नैव ब्रीहिभिरिष्टं स्थादावैने च यथायुते: । मित्रीरिज्येत चेतच भवेदुभयसाधनम् ॥

इति वार्तिक्षश्लोकव्याख्यानावसरे समर्थः पदविधिरिति पदमास् विधेः सामर्थ्यापेचत्वाद्वीद्यादिप्रातिपदिकस्य यवादिसापेचत्वे तद्याघाताप-त्रिविभत्यन्वयाऽयोगान्निरपेचाणामेत्र व्रीहियवानां तृतीयया करणत्वप्रतीते-र्मिश्रत्वं न युक्तमिति मिश्रपचे ब्रीहिभियवैरिति तृतीयाश्रुतिबाध उक्तः।

वहर । १४

प्रकृते गत्यन्तरसद्भावादिति । नाडीनां पुरितत्परिवेष्टितहृदय-पुगडरीकमध्यगतब्रह्मप्राप्तौ मार्गत्वेन ये। हि गङ्गया मागरं गच्छतीति भाष्योक्तरीत्या समुच्चया घटते पुरीततीपि प्राकारन्यायेन स घटते । स्रुताविष बर्डिषि हवींघ्यासादयतीति वेद्यास्तीर्थे बर्डिष्यासादनीयानां हिवषां वेद्यां हवींघ्यासादयतीति वेद्यामप्यधिकरगत्वमान्नायते । एवं द्वारभेदात्समुच्चयोपपतेने विकल्प इत्यर्थः ।

स्यादेतत् । अयं यदा सुषुग्री भवति यदा न कं चन वेद हितां नाम नाड्या द्वासग्रतिसहस्राणि हृदयात्पुरीततमिमप्रतिष्ठन्ते ताभिः प्रत्यवस्य पुरीति शेते इति जीवस्य हृदयात्राडीभित्तिष्कम्य पुरीति शयनं भूयते । हृदयात्पुरीततं गच्छते। नाडीनां मार्गत्वोषपादनाय हि हृदयात्पुरीततमिमप्रितिष्ठन्ते इत्युक्तम् । अतः प्राकारन्यायो उच न प्रवर्तते । न हि प्रासादान्निर्गत्य प्राकारे शेते नृपतिरिति वाक्यं प्राकारविष्ठितप्रासादमध्य-गपर्येङ्कशयनेनोषपादयितुं शक्यम् । नैष देषः । ताभिः प्रत्यवस्य्यिति हृंदयात्रत्यागमनं नाच्यते किं तु हृदयं परितः स्थिताम्यः स्वप्रवहन्नाडीभ्यः । स यचतत्स्वप्रयाचरतीत्युपक्रम्य उत्तेव महाराजा भवत्युतेव महात्राह्यस्य इत्यादिना स्वप्रदर्शनप्रकारमनृद्य स्व शरीरे यथाकामं परिवर्तन्तरत्यन्तेन स्वप्रावस्थानिरूपणानन्तरम् अय यदा सुषुग्रो भवतीत्युपक्रमात् । हृदयात्पुरीततमिमप्रतिष्ठन्तइति तु स्वरूपकथनाथे द्वासप्रतिसहस्राम्याति संख्यावचनवद् । नाडीषु पुरीततीति निरपेच्युतिविरोधं परिहरितः । नाडीषु पुरीततीति निरपेच्युतिविरोधं परिहरितः । । नाडीपुरीततीनीनीडीब्रह्मयोश्च

[्]रॅ संभवादिति २ पु· पा·।

समुद्र्यं स्वीकृत्य चयाणां विकल्पस्यापि स्वीकाराद्वरं सर्वेषां द्वारमेदेन समुद्र्यस्येव स्वीकार इति भावः । विकल्पफलके ऽभ्युचयइति । तथा वा युक्त्या प्रकृतार्थानर्णयो ऽनया वा युक्त्यिति विकल्पफलके युक्त्यन्तरसमुद्र्ये अथमपि चेति शब्दो न भवतीत्यर्थः । इदानीमतुल्यार्थत्वाचः न विकल्प इत्याहेति । यद्यपि प्रागपि द्वारभेदेनातुल्यार्थत्वमुक्तं तथापि जीवस्य ब्रह्मयेव नाडीपुरितद्भ्यां तादात्स्यसंपतिह्रपविविज्ञताधाराध्यभावयोग्यता नास्तीत्येवं विधान्तरेणातुल्यार्थत्विभदानीमुच्यतद्वति भावः । समप्रधानत्वे हीति । सिद्धान्त्यभिमतः समुद्र्यः समप्रधान्ये न भवति किं तु गुणप्रधानतयेति न च वर्यमिह तुल्यं नाड्यादिसमुद्र्यं प्रतिपादयाम इत्यादिभाष्येण वर्य्यते तस्य पूर्वपित्रकृतविकल्पनिरासार्थत्वेनापयेग इत्यर्थः । पूर्ववाक्ये उक्त इति । एता आदित्यस्य रश्मय उभी लोकी गच्छन्तीमं चामुं चा मुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाडीषु स्वप्ना इति वाक्ये इत्यर्थः ।

स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिम्यः॥ ६॥

श्चात्यन्तिकत्वेनेति । ब्रह्मप्राप्तितिति तावदुत्सृष्टा मुका ३७० । १२ वीत्यिकिक्वेनावधारितेति सुषुप्राविष सत्संपतिः पूर्वाधिकरणे विर्णिता । तस्या श्राप्यात्यन्तिकत्वप्राप्ताविद्याचेषत्वसमधेनेनापवादा ऽस्मिन्नधिकरणे वर्ण्यतद्वत्यधेः । एतेन मिथ्याच्चानितिरक्तामिवद्यामपहत्य मिथ्याच्चानवद-विद्याया श्रिष निवृत्तिं चापाद्य पूर्वपचः प्रवर्ततहति दर्षितम् श्रन्यथा पूर्वपचानुत्यानात् ।

सुषुप्तस्य नाडीपुरीततारवस्थानसंभवादित्याचिप्यतइति । ननु यदि नाडीपुरीततारवस्थानं संभाव्य सत्संपत्तिराविप्यते कथं तिहे तेनान्योत्थानं समर्थ्यते संपन्नस्योत्थानं न संभवतीति युक्त्या खलु तत्स-मर्थनीयम् । उच्यते । यदि सिद्धान्तिना सुषुप्रस्य सत्संपत्तिरिष्यते तदा तेनान्यस्यैवोत्थानमभ्युपेतव्यम् । यदि कर्मानुस्मृत्यादानुरोधातस्यैवो-

^{*} श्रर्थादिति १ पु∙ पा∙ ।

[†] भ्रमुं चेति नास्ति २ पुः।

[‡] तत्र हितीयं तदभावाधिकरणं पूर्णम्।

त्यानं वाच्यं तदा तस्य स*त्सम्पतिर्हात्योति नाडीपुरीततारवस्थानमुपपद्यते । ऋता न पूर्वाधिकरणिसद्धान्तिसिद्धिरित्याचेपे तात्पर्यम् । एवं
च स एवेतिष्ठत्यन्यो वेत्यनियमपूर्वपची ऽपि सत्संपत्यभ्युपगमतत्परित्यागपचद्वयानुसारेण व्यवस्थितः पर्यवस्थित । तथा सत्येव चात्यिन्तकीं सत्संपतिं प्राप्रस्य कथं पाचिकतया ऽपि पुनकत्थानं पूर्वपचीक्रियतहित शङ्काः
ऽप्यनवकाशा भवति । येषामीरवर एवेति । ईश्वरादन्यः संसारी नास्तीति वादिनामीश्वर एव वा संसारी स्यात् स्वप्रदृष्टमनुष्यादिवत्किल्पताः
वा । ऋते तस्य न सुष्पिनं प्रबोधः । द्वितीये प्रातिभासिकस्य नेत्थानादिव्यवहार इति दूषणार्थः । द्वे ऋहनी द्याह इति । द्वे ऋहनी समाहृते
इत्यर्थे तद्वितार्थेतरपदसमाहारे चेति समासः । राजाहःसिखभ्यष्टिजिति
समासान्तप्रत्ययः । राचाह्नाहाः पुंसीति पुँद्धिङ्गता ।

३१२ । ६

मुग्धे ऽर्धसंपत्तिः परिशेषात् ॥ १०॥

ऐक्यप्रत्यिभिज्ञानादिति । यदाप्यच व्यत्येक्यप्रत्यभिज्ञानं न संभवित सुखमहमस्वाप्यमिति परामश्रान्नोतसीष्प्रिकानुभवयाग्याविद्यापरिणामविशेषः सुष्पिरित्यभ्यपगमे व्यक्तिभेदस्य स्फुटत्वाद्विशेषविज्ञानसंसग्रीभावकूटः सेत्यभ्यपगमे ऽपि तत्तत्कालं मिलितकूटानुप्रविष्ठविज्ञानप्रागभावप्रध्वंसव्यक्तीनां विपयासेन कूटभेदस्यावर्जनीयत्वात् । तथापि क्व चिन्निमीलितनयनत्विनश्चेष्ठत्वादिविशिष्ठे पुरुषे सुष्पिमेव गतवता मूर्च्छितमपि तथामूतं
पश्यता भवति जात्येक्यविषया प्रत्यभिज्ञा सैवेयमस्य सुष्पिरिति स स्वायं
शङ्खध्विनिरितिवत्सेवाच पूर्वपचसाधनसम्या पूर्वपावणा विविचता । एवं च
पूर्वाधिकरणे व्यक्त्यविषया प्रत्यभिज्ञा इह जात्येक्यविषयित भेदसद्वावे
ऽपि प्रत्यभिज्ञासमान्यं संगत्यथ्यै विविचितमिति नासंगितः । स्थिरकारणस्वीकारादिति । व्यक्तिकवादण्य समर्थस्य वेषायोगात्समर्थे बीजवणे सत्यकुरजननमवश्यंभावीति नियमः । स्थिरवादिभिस्तु समर्थस्यापि सहकारिविरहसमये कार्याऽजनकत्वमभ्यपगतिमिति भावः । श्रद्धयेति । तत्यदार्थोभेन

^{*} संदिति नास्ति च पुः।

[†] अत्र वृतीयं क्रमानुस्पृतिशब्दविध्यधिकरणं पूर्णम्।

[‡] गत्यर्थमिति व पुन्याः।

दिसिद्धार्थे त्वंपदार्थेशे।धनाय पूर्वपत्ते जागरादावस्थाचतुष्ट्रयेनासँबन्धे। जीवस्य परिभावनीय:|सिद्धान्ते तु मूर्च्छेया ऽपीत्येवं फलभेद इत्यर्थ:* ॥

न स्थानता ऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि॥ ११॥

३७३ । २१

पृथिव्याद्यपाचिप्रयुक्तैः सर्वगन्थत्ववामनीत्वादिगुणैः शाण्डिल्योपका-चलविद्याद्यपास्यस्य ब्रह्मणः स्वरूपेण भेदा न निषिध्यते किं तु चेयत्वेन; तदर्थमे वेदमधिकरणिमिति ये मन्यन्ते तन्मतं स्वयं दूषयति परतु कश्चिदिति । सिद्धान्तादिति । देषोपाधिप्रयुक्तं चतुरादीनां भ्रमकरणत्व-मित्र पृष्टिक्याद्युपाधिप्रयुक्तं ब्रह्मणः सविशेषत्वं सत्यमित्येवंह्रपपूर्वपद्यस्य िं दुान्ताद्विशेषमःहेत्यर्थै: । अयमेव स इत्यद्वैतप्रतिपाद्कत्वादिति । श्रद्वेत्वविवादके च ब्रह्मणः सविशेषत्वं विविचितमिति वर्तुं न शक्यं विह-द्विशेषवता ब्रह्मणा चीवस्यामेदायागादिति भाव: । वचनव्यक्तीराह कि सञ्जज्जमिति । पूर्ववचाभिमत्रायमववनव्यक्तिप्रतीकापादानं व्यक्तीरिति बहुवचनं पूर्वपचिसिद्धान्ताभिमतवचनव्यित्तचयाभिप्रायम् । ननु वचनव्यित्ति-चयोपन्यासाद् द्वे। पूर्वपचे। एक: सिद्धान्त इति प्रतिभाति । अग्रे च सत्न-चर्ण प्रकाशलवर्ण च ब्रह्मेत्येकस्येव पूर्वपवस्य निराकरणं दृश्यते क्रथमेत-द्य चतहत्याशङ्क्य द्विमीयतृतीये द्वे ऋषि वचनव्यक्ती सिद्धान्तिन एवेति व्या-ख्यातुं द्वितीयव वनव्यक्तिमुगादने किं सञ्जच्यामेवेति । नन्वियं व वनव्यक्तिः कथं धिद्धान्त्यभिमता एवकारेण प्रकाशनवगत्वव्यावर्तनात् धिद्धान्ते च प्रकाशलचणत्वाङ्गीकारादित्याशङ्क्ष्य प्रकाशलचणाद् भेदव्यवच्छेद गवकाराची न तु प्रकाशनदायत्वव्यवच्छेदार्थे इति व्याच्छे एवकार इति । नन्वेवकारद्वयं -प्रकाशलच्यात्वमञ्जन्वय्यवच्छेदायै न भवति चेत् सिद्धान्ते ऽप्युभयलच्चणं ब्रह्मेति पूर्वपचातस्य के। विशेष इत्याशङ्काह ततश्चेति । सत्यकाशमेदेना-भयहुपं ब्रह्मेनि पूर्वपद्यः । तयारभेदेनैकहुपं तदिति सिद्धान्त इति विशेष इत्यथे: । सच्चेति साध्ये अवैग्रच्यादिति हेतुं विवृगोति सच्छुतेरिति ।

नन्वेकदेश्यभिमतिषद्धान्तिनिराकरणप्रस्तावेनाप्यभयलचणमेव ब्रह्मेति शक्यं वतुम् । पूर्वभ्यपगमविरोधप्रत्यया†दिति भाष्यं षिद्धान्त्यभिमतस्येव

^{*} अत्र अतुर्थे मुख्याधिकरस्यं पूर्णम् । 📑 प्रस्कृतिति १ पुः पाः।

पद्मान्तरस्य निराकरगार्थे प्रवृत्तमिति प्रतिमाति । तस्य तादर्थ्यमयुक्तम् । डभयलचगात्वं पूर्वपचीकृत्य तिव्राकरगार्थतयैव द्वितीयाधिकरगप्रवृत्तेरेकः देशिभिरुतः वादित्याशङ्का तदपि भाष्यं पूर्वपत्तस्यैव निराकरगार्थमित्यः ह ३९४ । ९ पूर्वपत्तानुत्थानएवेति । ननु पूर्वपविनराकरणार्थेत्वे प्राग् यदि तावदः नेकनिङ्गत्विमत्यादिभाष्योकहेतुना पै।नरुत्यमिति चेन्न । प्राक् पूर्वाधिक-रगे विद्वस्यार्थस्य पुनः बाधनवैयर्घ्यमिति विद्धान्तदूवगतयोकम् । इदानी पूर्वाधिकरणि द्वान्ते स्थिते तदनुषमृद्य पूर्वपचीत्यानं न संभवतीति पूर्व-पचटूषगतयोच्यतइति मुखभेदेनापै।नहत्त्यात् । यद्यपि तत्र सिद्धान्तदूषग्र-पूर्वपचानुत्यानमुपजीञ्चात्तम् अन्यया सिद्धान्तवैयर्थ्यात्त्ययागत् तथापि पूर्वपचानुत्यानं द्वारीकृत्य सिद्धान्तदूषणपर्यन्तं पूर्वभाष्यम् इदं तु भाष्यं पूर्वपचानुत्यानमाचपर्यवसायीति भेदः । ऋतं ग्रवाचार्येरिह पूर्वपवानु-त्थानग्वेत्येत्रकारः कृतः । वस्तुतस्तु केवलमञ्जवणत्वे केवलबाधलवणत्वे चात्तदेषं पश्यन् सिद्धान्ती यद्यगत्या स्वनिराकृतमेव पूर्वपद्यं परिगृह्धीयात् तदा तस्य न केवलं पूर्वण्विण इह पूर्वाधिकरणसिद्धान्तालयुक्तिविरोधमाचम् श्रपि तु स्वाभ्युपगमविरोधो ऽपीत्ययमेवार्थो भाष्यस्य स्वारसिकः ।

न-वेकदेशिसिद्धान्ते किं दूषगं दृष्ट्वा परमार्थतस्त्वमेद एव प्रकृष्टप्रका-श्वदित्यखण्डिमद्भा स्विमद्भान्ताभिमतत्रयोपमंहारः कृत इत्याशङ्क्य टीका-भिप्रेतं परिचद्धान्तदूषण्ं दर्शयित यश्च सत्ताप्रकाशयोगिति । सर्वा-त्मना सताप्रकाशयारभेदाभ्युगगमे सद्बोधशब्दयाः पर्य्यायत्वप्रसङ्गः । श्रान-र्वे।च्यप्रवृत्तिनिमित्तभेदेन पर्यायत्वसमाधाने त्वस्मित्सिद्धान्त ग्रव । ्न च तथा निर्णयार्थमेवाधिकरणान्तरमिहास्त्विति शङ्कनीयम् । स्वस्रुपतटस्य-**लच**यो।पपादनार्थे प्रवृत्ते जन्माधिकरग्ग*ग्व स्वरूपलचर्यानाखग्डसिद्धिरिति पूर्वपचस्य निराकृतत्वेन पुनिरह गङ्काऽनुत्यानादित्यर्थः । जर्तिलाः चारस्यतिलाः । गवेधुकाः। चारस्यगेष्ट्रमाः । शारीरस्तेने।मये। ऽमृत-मय: पुरुष इत्येतदनन्तरमियं पृथिवीति वाक्यादनुषक्तपदानि याजयन्ना-३७६ । ११ काङ्कां पूरयति सर्वेषां भूतानां मध्विति । मधुग्रब्दस्य सञ्चात्वसाम्या-

ह्मचणीयमधैमाह उपकारकाविति । वाक्यद्वयादन्षङ्गलब्धानि पदानि

^{*} व्याः सूः धः १ गाः १ सूः २। t गवीधुका इति **१ पुः पाः** ।

योजियत्वा वाक्यान्तरं दर्शवित तयाश्च सर्वाणि भृतानि मध्विति। शतावदनुषङ्गश्चकारसामध्यान्मध्वित्यूपक्रमाच्चेत्याह चशब्दादिति । नाने-वेतीवश्रद्धार्थमाह श्राभासिमिति । वस्तुता ऽपारमार्थिकमित्यर्थै: । स्वर्यं च न कारणिमिति । वस्तुतः कारणं न भवति सत्यस्य कार्यस्या-भावादिति भावः । पत्तीति लिङ्गशरीरमुच्यतइति । मनःप्राणविज्ञा-मानां लिङ्गशरीरान्तर्गतानां पचपुच्छादिनिरूपणादिति भावः* ॥

प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति तता ब्रवीति च भूयः॥ २२॥ ३७०। ३

नन् यदित्यस्य गच्छदित्यर्थश्चेद्वायारेव संग्रहा नाकाशस्येत्याश-ङ्क्याह ततरचेति । यदित्यनेन गच्छदुर्म एकवैवावस्थानाभावा लच्छते स व्याप्रि: त्राकाशस्यापि तुल्य इति भावः । यद्यपि पञ्चभूतेति । समष्टिलि-ङ्गगरीरस्य पञ्चभूतकार्यत्वः तदिभमानिने। हिरण्यगर्भस्य तयात्वमुक्तम्। चत्त-रिन्द्रियस्य तैजवन्वाञ्चनुत्रीरमन्ववचनं गालकामिप्रायमित्याह चत्त्रिति । रूपा गुपल व्धिभिः कियाभिरिति । ह्रवा गुपल व्थिभिगेमनादानिक-याभिक्वे चर्यः । आध्यात्मिकेति । आध्यात्मिकलिङ्गशरीरान्तर्गतस्य समष्टिह्रपलिङ्गगरीरान्तर्गतादित्यादिव्यष्टिन्वात्समष्ट्रामिमानिना हिरएयगर्भस्य व्यष्ट्रभिमानिदेवतात्वमयस्तीति हिरएयगर्भत्वेक्तिरित्यर्थः । यत्रं च लिङ्गणरीरस्य सकलस्य्रलगरीरवर्तित्वे ऽपि तदिममानिदेवतायाश्च-चुव्यवस्थानं स्तिबलादङ्गीकार्यमिति तात्पर्यम् । अथ वेति । स्रादित्यश्च-कुर्भूत्वेति श्रुते। चनुरनुग्राहकत्वेनादित्यत्य तस्मिन्नवस्थानं प्रसिद्धं स श्रादित्यः प्राणात्मना ऽऽदित्यमग्डलमधितिष्ठन् हिरग्यगर्भ गव हिरग्यग-भैस्य† तथात्वेन पुरागेषु प्रसिद्धेः । तस्य श्रुतिपुरागबिद्धाया जगदग्डा-दुत्पत्तेः छन्दे।गे।पनिषदि त्रादित्ये समाम्नानाचेति भावः । कार्यं शरीरं कर्णमिन्द्रियमिति । ऋधिदैविकाध्यात्मिकमेदे द्विविधे सत् त्यदित्युभे द्विविधमदृशभूते त्रादित्यमण्डलचनुर्गालके चेत्येतत्सवे समष्टिव्यविस्थान-शरीररूपं कार्यशब्देनातम् । द्विविधरसभूतं समष्टिलिङ्गशरीरद्वयं करग्रशब्दे-नात्तमिति विभागः । यदापि द्विविधमपि निङ्गशरीरं द्विविधमकलस्यूलशरीर-

^{*} श्रज पञ्चमम् उभयनिङ्गाधिकरण् पूर्णम् । १ विराधगर्भस्थेति मास्ति ३ पुः ।-

वर्ति तथापि तटभिमानिना मग्डलगालकयाः सन्निधानातस्यापि तयावै-तेनमभिमान्यभेदे।पचारादुक्तम् । तदभेदे।पचारादेव तस्य द्वेतस्य पुरुष-स्येति श्रमन्तरवाक्ये पुरुषशब्देनामिमानिवाचिना करणद्वयस्य परामर्थः । कार्यकारणभावेनेति पाठे तु मूर्तामूर्ते रूपे कारणे तद्रसतयोक्तानि कार्याणि । ३७८ । २० स्पष्टे। विभागः । मूर्त्तामूर्त्तेति । मूर्तामूर्त्तविषयेण जागरानुभवेन जनितया वासनया जन्यं विज्ञानं स्वप्नविभ्रमस्तद्विषय् इत्यर्थः । विज्ञानमयमिति पाठे ऽपि विज्ञानविषय इत्येवार्थः। दृष्टान्तैरुप्मा दर्शयतीति । महारजनादिह-यसमानं रूपमादर्थयतीत्यर्थः । महारजनं हरिद्रेति । नैवयदुकास्तु महार-जनं कुसुम्भमाहुः। वासनाजन्येति । वासनाजन्यपूर्वपूर्वस्वप्रविद्यान्तिवशाः दुतरातरे स्वप्रेषु प्रतीयमाने प्रपञ्चे महारजनादिसमानरूपाध्यासानुकूल: कोप्याकारे। लिङ्गप्ररीरे तादात्म्येनारे।प्यते । तिज्ञष्ठा रूपमेदाः स्वाप्रपदार्थेषु भाषन्ते तत्परिणामत्वातस्वाप्रपदार्थानामिति भावः । ननु सत्सामान्यस्य बोधरूपविशेषसत्त्वाताच मूर्तामूर्तविशेषव्यावृत्तावपि सतासामान्यं व्यावतै-तेत्याशङ्क्याह तचेति । तत्यन्वस्य सामान्यात्मकत्वं सवासनमूनीमूर्तन साधारएये।त्या स्पष्टीकृतमित्यर्थः । श्रयमाशयः । यथा शे।गकर्कादया . ऽरवविशेषाः शेगो। ऽरवः कर्के। ऽरव इत्यदिव्यावृतानुवृत्तव्यवहाराद् एवं मूर्तामूर्तेव्रह्मह्रपत्वेने।ताः पृथिव्यादयः सद्विशेषाः । सती पृथिवी यञ्जलमित्यादिव्यवहारात् । ततश्च यथा शोगककीदियावद्विशेषव्यावृताः षश्वत्वसामान्यं व्यावतंतरावं पृषिव्याद्यात्मक्यावदूपविशेषव्यावृत्तौ सामान्यं . व्यावतैत । न च बाथरूपविशेषान्तरसद्वावातदव्यावृत्तिः शङ्कनीया द्वे वावे-त्यवधारणे ब्रह्मणि मूर्त्तामूर्तस्वणद्वयव्यतिरेकेण स्वपन्तरं नास्तीत्यवगमात्। एवं च बे।धात्मकत्वं सहैव ब्रह्मणा धर्मिणा श्रुतमप्यसदेव स्यादिति। यथाहुरित्युदाहृतस्यार्थस्य निर्विशेषं सामान्यं शशविषाणवन्न भवेदिति योज-नान्तरभ्रान्ति वारयति निर्विशेषं यत्तत्सामान्यं न भवेदिति योजने-ति । ननु विशेषणत्वादेव याग्यत्वमसिद्धमित्याशङ्क्याह अप्रमितत्वमेवेति । प्रमितत्वमेव प्रतिषेथायाग्यत्वं न तु विशेषगत्विमिति । ब्रह्मगस्तु प्रमित-३७६ । २१ त्वमसिद्धं रूपद्वयवित्रषेधायानुवादे।पपतेरिति भावः । कर्क ईषद्धोहित इति । श्रमर्रामंहस्त्वश्वप्रकारेणे पृष्ठः स्यूरी चितः कर्के इति स्वेत्मध्वं

कर्कमाह । निषेधेन निषेध्या सत्तेति । निर्विशेषं सामान्यं न भवेदिति निषेधेन सता किमर्थस्वभाक्ष्मता निषेध्या उत प्रमाणसंबन्धात्मिकेतिः सम्भावितविकल्पद्वयप्रतिषेधार्थमभावोप्रमितिर्वेत्युक्तमित्यर्थः । द्वे वावेत्यव-धारणं तु रूपद्वयातिरिक्तां ब्रह्मणे। बोधरूपतां न व्यवच्छिनितः किं तु रूपद्वयस्यासमुद्वयमित्याचार्यः प्रागेव व्याख्यातम् । तन्त्र यथा विधि- ३८० । १६ प्राप्तस्येति । यचितषु येयचामहङ्करोतीत्येतदनन्तरं नानुयाचेष्वित्यनेना-नुयाचेषु येयचामहक्ररणं निषिध्यतद्दित पूर्वपचे निषेधस्य निषध्यप्राप्तिपूर्व-कत्वाद्वः हिंस्यादित्यच हिंस्नस्येव यचितषु येयचामहक्ररणस्य लोकतः प्राप्यभावाद्वः तस्य यचितषु येयचामहं करोतीत्यनेनैव प्राप्तिवैक्तव्या । तथा च सर्वातमना प्रतिषेधप्रापक्षशास्त्रस्याप्रामाण्यप्रसङ्गाद्वः विधिप्रतिषेध-ष्यास्त्रद्वयप्रामाण्यप्रसङ्गाद्वः विधिप्रतिषेध-ष्यास्त्रद्वयप्रामाण्यप्रसङ्गाद्वः विधिप्रतिषेध-ष्यास्त्रद्वयप्रामाण्यप्रसङ्गाद्वः विधिप्रतिषेध-ष्यास्त्रद्वयप्रामाण्यप्रसङ्गाद्वः विधिप्रतिषेध-ष्यास्त्रद्वयप्रामाण्यप्रसङ्गाद्वः विधिप्रतिषेध-ष्यास्त्रद्वयप्रामाण्यप्रसङ्गाद्वः विधिप्रतिषेध-ष्रास्त्रद्वयप्रामाण्यप्रसङ्गाद्वः विधिप्रतिषेध-ष्रास्त्रद्वयप्रामाण्यप्रसङ्गाद्वः विध्यप्राप्तिष्यः ।

हित म्रीमद्गरद्वाजमुलजलधिकीस्तुभम्रीमदद्वेतविद्याचार्यश्रीविश्वजि-द्याजिम्रीरङ्गराजाध्वरिवरसूनारप्यवदीज्ञितस्य कृती वेदान्त-मल्पतस्परिमले तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥



[ै] अन्त पर्छ प्रक्रतैतावस्त्वाधिकरणं पूर्णम् । एतदुत्तरम् एतदिधिकरणाविशिष्टभागस्य सप्तमाद्यमाधिकरणयोगन्व समुपलब्धेषु केषु चिद्रपि परिमलपुस्तकेषु व्याख्यानपन्या नेपलस्यते । विश्वदत्वाद् व्याख्यानानपेत्वां मत्या ग्रन्थनेत्रीः तावान् भागे। न व्याख्यात इति प्रतीयते ।

त्रय दतीयाध्यायस्य दतीयः पादः।

इंटर्१। २

पूर्वेषादेन सङ्गतिं प्रदर्शयन् पादार्थमाह द्वितीयपाद्इति । तन्त-म्पदार्थशोधनेन निर्विशेषब्रह्मणि निर्द्धारिते मे।चसाधनं तज्ज्ञाने।*पयागि-सगुणनिगुँ णवाक्यार्थनिर्थारणं क्रियतइति पादसंगति: । हिरणमयादिवाक्यं सगुणविषयं प्रतर्देनादिवाक्यं निर्गुणविषयमित्येवंद्धपसगुणनिर्गुणवाक्यार्थनि-धीरणस्य प्रथमाध्यायेन कृतत्वे ऽपि नानाशाखाम्बातगुणे।पमंहारेण तिवन धारणं न कृतमिति तद्था ऽयं पादः । तथा च गुणापसंहारः पादाथै इति भाव: । ननु सगुणवाक्यार्थेनिद्धारणं विचायेत्वेन प्रतिज्ञातस्य निर्विशेषस्य ज्ञाने ने।पयोगीत्यत त्राह सगुणेति । चित्रशुद्धिद्वारेग्रेत्युपल-चगम् । चित्तेकाय्यद्रिमसंपादनद्वारेत्यिप द्रष्टव्यम् । ननु गुगोपसंहारः केषु विदेवाधिकरगोषु चिन्त्यते केषु चिद्विद्यानामभेदः केषु चिद्वेदः ऋता नैकः पादार्थ इत्यत बाह पदार्थीपसंहारेणेति । गुणापसंहार एव पादार्थः । श्रभेदविन्ता तदुपये।गिभेदचिन्ता तद्यवादत्वेनेत्यर्थः । श्रभेदविन्ता गुणापसंहारोपयागिनी चेन्निर्गुणविद्यायां किमिति सा न कृतेत्याशङ्क्याह श्रिषिकरणैरिति । यदाव्यानन्दाधिकरणे† त्रानन्दादिभावरूपगुणे।पर्षहार-विन्ता त्रवर्राधयामित्यधिकरग्रे‡ स्यूलत्वाद्यभावहृषगुग्रे।पथंहारविन्तेत्यधि-• करणद्वयमेव निर्गुणविद्याया त्रवगतपरस्परगुणोपसंहारविषयं तथाव्यात्मगृ-हीति§रित्यधिकरणे प्रथमवर्णके पूर्वपचे जातमा वा इदमेक ग्वाग्रजासीदि-त्यैतरेयवाक्यं हिरएयगर्भविषयम् । द्वितीयवर्णकपूर्वेवचे सदेव से।म्येदमयः श्रामीदित्यादिच्छान्दोग्यवाक्यं मनासामान्यविषयमित्युभयचापि पूर्वपद्ययोरा-नन्दादिगुवानुपर्यहारः सिद्धान्ते तदुपर्यहार इति निर्गुविद्यागतगुवापसं-हारफलत्वात् कामार्याधकरणे निर्गुणविद्यायां सगुणविद्यागतसत्यकामादि-गुगोपसंहारस्य सावानिरूपितत्वाचु तदभिप्रायमधिकरगैरिति बहुवचनम्।

^{*} साधनतज्ज्ञानेति २ पुः पाः।

[‡] व्याः प्रुः ग्रन् ३ पा ३ मूर ३३।

[∭] इयां. सूं: मा. ३ पा. ३ सूं: ३६।

[†] व्याः सूः श्रः ३ पाः ३ सूः १९।

[§] व्याः सुः ग्रः ३ घाः ३ सुः १६।

सर्वविदान्तप्रत्ययं चादनायविशेषात् ॥ १ ॥

३६१ । १

नामरूपेति । काठककालाणदिनीमभेदः । क्व चिच्छाखायां दर्शपर्था-मासये।रम्नीषे।मीय एकादशकपाल: श्रयते शाखान्तरे द्वादशकपाल इति रूप-भेदः । कारीर्यादिषु शिरोभूमिभाजनादिर्द्धर्मविशेषः पुनरुक्तिः । श्रग्निहोत्रादि-विधेः शाखाभेदेनाऽत्रिशेषपुनः श्रवणहृषा ऽभ्यासः । निन्दा डदितानुदितहा-मयोः । त्रशक्तिः सर्वशिखादितसक्ताङ्गग्रहार्थतावच्छाखाऽध्ययनाशक्तिः । मैत्रायगीयानामन्वारोह्रपंज्ञकेषु स्थलारोह्रगमन्त्रेव्यग्निचयनस्य समाप्तिः अन्य-षान्येषामिति समाप्रिभेदः । केषां चिच्छाखायामुदितह्यामव्यतिक्रमे प्रायश्चि-त्रम् श्रन्येषामनुदितहे।मञ्चतिक्रमे इति प्रायश्चित्तभेदः । यदि पुरा दिदी-चाया: स्युर्वृहत्सामानमतिराचमुपेयुरुपेतं ह्येषां रथन्तरं यदादिदीचाया: रथ-न्तरचामानमितराचमुपेयुरित्यनिष्ठप्रथमयज्ञानां द्वादशाहृदर्शनं शाखामेदेन द्वादशाहमेदे उन्यार्थदर्शनहृपं लिङ्गम् । दिदीचागाः प्राग्दीचितवन्तः । लिटः कानचि द्विवेचनम् । कथं प्राग्दोचितानां द्वादशाहदर्शनं द्वादशाहमेदे लि-ङ्गमुच्यते शाविडल्यशाखायामेव वाव प्रथमा यज्ञो यज्ञानां यज् ज्योतिष्ट्रोमा य एतेनानिष्टा ऽयान्येन यजते गर्तपत्यमेव तत्सुहतइति सर्वक्रतूनां जातिष्टो-मपाश्चात्यत्वमङ्गं विहितम् । यदोकः एव द्वादशाहे। नानाशाखासु विधीयते तदा तस्य ज्योतिष्ठोमपूर्वेकत्वनियमादनिष्ठप्रथमयचस्य द्वादशाहदर्शनं ने।पप-द्यते । यदि प्रतिशाखं द्वादशाहभेदः स्यानदा शाग्डिल्यशाखायाम् त्रयान्येन यजतइत्यन्यशब्दस्य शागिडल्यशाखागतद्वादशाहादिविषयत्वे।पपते: शाखा-न्तरगतद्वादशाहानां च्यातिष्ठामपाश्चात्यत्वस्याविधानात् । यस्यां शाखाया-मनिष्ठप्रथमयचस्य द्वादशाहदर्शनं तच्छाखागतद्वादशाहविषयत्वेन तदु-प्रपद्यते । एवं नामभेदादिहेतुभिः प्रतिशाखमिनहे। व।दिकमे भिद्यतद्रति स्वार्थः ।

विरुद्धकालद्वयाऽसंभवादिति । यद्यपि कालद्वयं विकल्पेन संभ ३६२ । १ वित तथापि निन्दयोदिताऽनुदितहोमपनद्वये ऽपि वेगुण्यापादकमुदितानु-दितकालद्वयमपि कर्मेक्ये न संभवतीति भावः । न केवलं निन्दया वेगुण्य-मवणस्यते किं तूदिताऽनुदितकालव्यतिक्रमे प्रायश्वितोपदेशेनाप्येतद्वर्शयति

पायश्चित्तमिति । निन्दा प्रायश्चित्तइति । श्रन्धं तमः प्रविशन्तीत्याः दिषु केवलयार्विद्याक्रमेगोर्निन्दासद्वावे ऽपि भिन्नशाखागतयोरगिनहोत्रयोरिष ३६२ । ७ विद्ययोभेंदापादिका निन्दा नास्तीति भाव: । स्रस्त्यथैष ज्योतिरित्या-दिनेति । प्राग् च्योतिष्ठोमे प्रकृते ऋषैष च्योतिरित्याद्यपक्रमः । ज्योतिरि-ति हि प्रातिपदिकमात्रं न त्वस्य नामत्वमभिव्यक्तमिति । मान-गब्देन याजिसामानाधिकरएयं व्यावन्यंते । ऋषैष ज्योतिरित्यत्र यजिसामा-नाधिकरण्याभावाद् न क्रतुनामत्वमभिव्यक्तमित्यर्थः । प्रतीकमानमिति क्व वित्याठः । तत्र ज्योतिष्ट्रोमनामावयवमात्रमिति नास्य प्रकृतज्योतिष्ट्रो-मनामत्वमभिव्यक्तमित्यर्थे: । यदापि तदभिव्यक्तिमन्त्रे तदिष्टमेव प्रकृते च्योतिष्ट्रोमे सहस्रदिवणालवणगुणविधिरिति वदतः पूर्वपविणस्तयाय-प्रयाजकमिह नामभेदाभेदयोरित्यविमयन्ये नाम यथा पूर्वपद्यभिमते ग्र-भेदे न प्रयोजकम् एवं सिद्धान्त्यभिमते भेदे ऽपि न प्रयोजकमिति वद्यमा-गत्वात् । तच कथमभेदेन प्रयोजकं ज्योतिरिति प्रकृतज्योतिष्टोमनाम्ना तदभेदप्रतीतेरित्याशङ्कानिवारणार्थत्वेनेदं वाक्यमिति नेतव्यम् । प्रायेणा-रुयातसंबन्धीति । त्राख्यातसंबन्धस्यापि प्रागेव क्ष चिल्लब्थप्रवृतिनिमि-त्तर्के नाम नाख्यातपरतन्त्रं यथा ऽऽग्नेयादीनां प्रयाजादीनां च यागानां चित्रिधी सूर्यमाणे दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामा यजेतेत्यधिकारवाक्ये यजेते-त्यस्य संनिहितसर्वयागानुवादस्वारस्ये ऽपि न तत्पारतन्त्र्येण दर्शपूर्णमासनाः म्बस्तावद्यागवृत्तित्वं किं त्वमावास्यापै।र्योमासीकालयुतेम्बाग्नेयादिषु क्रुप्रप्रवृ-तिनिमित्तकत्वातावनमाचवृतित्वमभिप्रेत्य प्रायेगेत्युत्तम् । तथा चाक्रुप्रप्र-वृतिनिमितकं नामाख्यातपरतन्त्रं तथाभूतं च ज्योतिरिति नाम श्रतस्त-स्याख्यातपारतन्त्र्यादाख्यातस्य च प्रकृतच्योतिष्ट्रोमानुवादस्वारस्यातत्परतन्त्रं नामापि तु तचेव वर्तितुमहतीति भावः। ज्योतिरिति कर्मसामानाधि-करण्येन कर्मनामव्यवस्थापनादित्यादिहेतूनामिति । अव टीकाया-मसत्तिष च्योतिरित्ययमंशः कस्य कर्मनामत्वं व्यवस्थितमित्याकाङ्कितांशपू-🥠 । २३ रणार्थे स्वयमध्याहृत: । द्वाद्शरातं द्विणेति । श्रुते। द्वादर्शामिति शब्दस्तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताडु इति सूर्वविहितडप्रत्ययान्तः । ततस्व ' द्वादशाधिकं शतमित्यर्थः । द्वादशशतं गाव इत्युदाहृतसृतिवाक्ये गाशब्दा-

भावे ऽपि तच निर्दिष्टा द्वादशशतसंख्या गेश्चाश्वश्चाश्वतरश्च गर्दभश्चे-त्यादिपूर्वसंदर्भप्रकृतगे।विषयेति दिचणाधिकरणे* निर्णातत्वाद्गाव इत्युक्तम् । श्रन्यायश्चानेकशब्दत्व†मिति न्यायः प्रकृते उदाहर्तव्यः । श्रते। न्यायान्त-रोदाहरणं दृष्टान्तार्थमिति व्याच्छे यथानेकार्थत्वमिति ।

ज्यातिज्यातिष्टामशब्दयारेकार्थत्वादिति । यदावि वसन्तवाक्ये ३६३ । १ ज्योति:शब्द एकदेश्येकदेशसंबन्धेन च्योतिश्रोमशब्दं स्मार्यात स्थृतच्योति-श्रोमशब्दाभिहिता यागा वाक्याचान्वयी न त्वन ज्योति:शब्दो ज्योतिश्रोमस्य धाचक: । च्योतिष्ट्रोमच्योति:शब्दौ नैकस्य कर्मणा वाचकी इत्यनुपदमेशामि-हितत्वात् । वयन्तादिवाक्ये च्योति:शब्द ग्रबदेशान्तरलच्यार्थं इत्यनुपदमेव षद्यमाग्रत्वाचु । तथापि यथा कथं चिज् ज्योतिष्ट्रोमयागप्रतीत्यूपये।गित्वेन यते। च्योति:शब्द: प्रयुक्त इत्येतावता तयारैकार्थ्यमुक्तम् । नामतयैकार्थप्रतीत्युपया-य्यनेकशब्दप्रसिद्धावन्यव सुलभतरायामपि क्रिष्टोदाहरग्रम् । ऋषेष ज्योतिरि-त्यच यस्य ज्योति:पदस्य ज्योतिष्ठोम इति नामान्तरवति वृतिरन्याय्येति विचि-कित्सते तस्यैवान्यन तस्मिन् वृतिदृष्टेति दर्शयितुं यत्तु वसन्तादिवाक्य-इति । वधन्तादिवाक्ये इव ऋषेष च्योतिरित्यबाप्युत्सर्गबाधा ऽस्त्वित मा-षः । एकदेशान्तरत्तच्णार्थे इति । अव लचगार्थइत्यनेन गकदेश्येकदे-ग्रमंबन्धमूलकच्योतिष्ट्रोमगब्दस्मृत्यर्थत्वं विविचतं न त्वेक्रदेशान्तरे एकदे-शिनि वा लाचिणिकत्वं शक्यसंबन्धाभावात् । न हि नामैकदेशस्य कि चि-च्छक्यम् एकदेशस्य एकदेशिनश्च शक्यमंबन्धो वा ऽस्ति । न चैकचेतीति प्रतीकग्रहणानन्तरं वसन्तवाक्ये ज्योतिषा यजेतेति त्राख्याततन्त्रा संज्ञा त्रा-ख्यातं च कालविधिमंक्रान्तमिति पूर्वकर्मानुवदेदेषा तु प्रथमान्तत्वादतन्त्रेति प्रकृतकर्मबुद्धिं व्यवच्छिनतीत्यथै इति शुद्धः पाठः । वसन्तवाक्ये हि काल-लच्चण निमित्तमंक्रान्तत्व।द्विधेः क्रमेसिद्धभुपपतिः नान्यवेत्यर्थे इति क्व चि-त्याठा दृष्टः से। ऽप्यवैवार्थे कथं विद्योज्यः । तस्मिन् पाठे नान्यवेत्यस्य न त्वनेत्यर्थः । तथा च वसन्तवाक्ये कर्मविध्यनुपपतेराख्यातेन पूर्वकर्मानुवद-नीयमिति तत्समानाधिकरगाच्योति:गब्दस्यापि कथं चित्रत्यत्यायकत्वमा-श्वितं न त्वन तदार्श्वयणीयम् प्रथमान्ते तथानुपपतिस्फूर्त्यभावादिति । तस्यै-

^{*,} चो सूर्या २० पा इसूर ३१ - ३१ । † , जो सूर्य २० पा इसूर ३६ ।

व नाम्नः कर्मान्तरवाचकत्वादित्याहेति । प्रथमान्तच्योतिः शब्दस्य विध्यस्यमानकर्मनामतायास्तदानीमनिभव्यक्तावि पूर्वासंबन्धिपदेन तेन प्रकर्णविच्छेदादिति भावः । स्रव हि द्रव्यदेवतिति यन्तमानद्रव्यदेवतासंबन्धो यागेनैव कर्तव्य हित द्रव्यदेवतासंबन्धस्य यागाविनाभावातेन यागातृपितिः । दोकायां गुणाधिकरणसंदेहोषन्यासपूर्वपचकादै। द्रव्यमानस्य विधिक्तो न देवतायाः तत्र किमथे देवताया स्रिष विधिनोक्तः श्रविधाने च देवन्यतायाः तत्र किमथे देवताया स्रिष विधिनोक्तः श्रविधाने च देवन्यतायाः तत्र किमथे देवताया स्रिष विधिनोक्तः श्रविधाने च देवन्यत्याः कृतो लाभ इत्याशङ्काह यद्यपीत्यादिना । ननूभयारिष वाक्ययाः समसमयवृत्तेरिति टोकोक्तमयुक्तम् । स्रामचावाक्ये स्वाधमिष्याय पर्यविति वान्तिनवाक्यप्रवृत्तेरितः टोकोक्तमयुक्तम् । स्रामचावाक्ये स्वाधमिष्याय पर्यविति वान्तिनवाक्यप्रवृत्तेः । न स्नुतरवाक्यप्रवृत्तेष्ट्रवित्वक्यद्वयमिषे किंचिदं सम्वप्याद्वति स्रयमिमप्राय इति । यत्र पूर्वपरवाक्यद्वयमिषि किंचिदं सकल्पनया पूरणीयं भवेतत्र नानेकं कल्पनीयं गौरवादिति भावः । तिद्वित्तान्तपदस्रुतिमात्रादिति । विश्वदेवा देवता सस्या इति विग्रहवाक्ये सस्या इत्येतदर्येत्वेनामिचायाः प्रवेधानत्समानार्था तिद्वतश्वतिर्या द्रव्यदेवतामानसमिध्यते न स्वन्यार्थे । वान्तिभ्य इति चतुर्य्यन्तर्यदेवतामानसमिध्यते न

तस्या द्रव्यमंबन्धमिष म तु तच वाक्यगम्य एवेति भावः । तथा सतीति । विग्रहवाक्यस्यस्यास्या इति एदस्यामिचायां पर्यवसानार्थम् श्रामिचापदसम-भिव्याहारापेचा उस्तीतीहापि वाक्यबाध्य एव संबन्धि दित भावः । श्रीत एवामिचासंबन्ध इति । पर्यवसिताभिधानस्य यत्प्रत्यायनाय पदान्त-रसमिव्याहारापेचा तचैव वाक्यं प्रमाणं यच त्वपर्यवसिताभिधानाय

वाक्यस्य दै।बेल्याभावमुषषाद्यातुमुषक्रम्य तद्विहाय यद्यपीत्यादिना विचा-रान्तरं प्रवर्तितं तदनन्वितमित्याशङ्क्य उपलच्चयतीत्यन्तस्योषित्तनयन्थे-३६४ । २४ नान्वयं दर्शयति उपलच्चितेषु चेति । विश्वान् देवानुषलच्चयतीत्युक्ते कथं वाजिशब्दे।ता विश्वेदेवाः स्यः शब्दभेदेन देवताभेदादित्याशङ्कायां प्रम-क्तायां तदिराकरणेन विश्वान् देवानुषलच्चयतीत्यथें स्थरीकृते सति

पदान्तरापेचा तच पदान्तरसिधानेन पर्यवसिता श्रुतिरेव प्रमागमिति

भाव:। टीकायां तथापीत्यारभ्यापलचयतीत्यन्तेन ग्रन्थेन प्रकृते श्रुतिती।

^{🌟 🍍} बाक्ये प्रवृत्तेरिति २ पुन्यान।

[ं] नं सकः संबन्ध इति ३ पुः पाः।

त्रत्फलमिह वाक्यदै।बेल्याभावलचग्रमये वस्यतइति नानन्वय इति भावः । तामेत्र प्रसत्तामायङ्कां दर्शयति नन्विति । हविःप्रदानसमयइति । ३६५ । ३ दर्शपूर्णमासये।देवतापदापेचा निगमाः सन्ति ऋग्नये जुष्टं निर्वपामि ऋग्नये जुष्टं प्रे।चामि अग्ने: प्रिया धामानि अग्निरिदं हविरजुषतेत्यादास्तेष्वाह-ह्यान्निपदत्रवणात् तेष्वियं चिन्ता किं तूट्टेगत्याग एवेति भाव: । यदि शब्द एव देवता स्यादर्शहरूपा देवता न स्यातदा पर्यायाणां न प्रसित्तरत श्राह अर्थरूपत्वादेवतात्वस्येति । अस्ति तावदग्यादिदेवताशब्देभ्या ऽग्नये जुष्टमित्यादिनिगमेषु नानाविभनयुत्पतिः । ताः तेषां प्रातिपदिकत्व-मन्तरें नात्पदान्ते तत्प्रातिपदिकत्वं च नार्थवत्वमन्तरें भवतीति सन्त्य-भ्न्यादिशब्दानामंथास्त्रखं देवता: । सास्य देवतेत्यर्थे उम्चादिप्रातिपदि-क्रेभ्यस्तद्वितात्पनिदर्शनादिति भावः । तत्तु न स्वर्गवासित्वादीति । नाकसत्त्वादिकं देवतात्वं चेन्नाकसदामग्न्याद्यभिमानिनां लाकवेदप्रसिद्धपर्या-यसद्वावात्पर्यायाः प्रमञ्येरन् न तु तदिह देवतात्वं विविचतं मासादि-देवताननुगतत्वादित्यर्थे: । यदापि मासाद्यभिमानिदेवता: सन्ति त्रत ग्रवाचिरादिपर्वभूतानां मासादीनामातिवाहिकत्वं वच्यते तथापि तद्वानुगतं दद्भ्यः स्वाहा हनूभ्यां स्वाहेत्यादिहे।मेष्वश्वस्य दन्तहनुगकृन्मू वादीनामपि द्वेवतात्वदर्शनादिति भावः । ग्रस्तु इविः प्रति प्राधान्येन िर्द्वेश्यत्वं देवतात्वं तिवर्देश एव पर्धायान्तरेण किं न स्यादित्याशङ्क्य सूचं योजयन् विधिशब्देनैव निर्देश्यत्वे हेतुमाह तम्राग्नेय इतीति।

शब्दान्तरेण निर्देशे देवतात्वं न स्यादिति । अयमाशयः ।,, । ११ आग्नेय इति तद्वितनाग्निस्त्णा देवता यागाङ्गत्वेन विधीयतद्दि वक्तः व्यम् । अनुष्ठेयमुणकारकं चाङ्गं भवति न चाग्नेन्द्रादिस्त्णा देवता यागमध्ये स्वस्त्रणेणानुष्ठातुं शंख्याः । न च च्हत्त्वजामिव देवतानां हस्ता-दिनोणकारकत्वमस्ति तस्मानद्वाचकशब्दोन्चारणमेव पुरूषस्यानुष्ठेयं स्ववा-चक्कशब्दद्वारेव तासामुणकारकत्वं चेत्यास्थ्यम् । तथा चावश्यकत्वाद-ग्न्यादिशब्द्यानां प्रथमोणस्थितत्वाद्यान्यादिशब्द्यम्केन यागेनेष्ठं भावयेदित्ये-वाग्नेयादिशदयुक्तविधिवाक्यार्थः । हविस्त्यागकाले यद्वाचकशब्देनाद्वेशः क्रियते तस्य देवतात्वमर्थमिद्धमिति तदेवार्थेसिद्धं देवतात्वं तद्विते-

रनूराते यथा ऽऽग्नेयमष्टाक्रवालं निर्वेषतीति विकृतीष्ट्रिवाक्ये ऽस्ति। ऽणि द्रव्यदेवतासंबन्धा विधीयते स्रृता ऽणि निर्वाणे न विधीयते क्रिं तु प्रकृतितः प्राप्नुवन्नन्दाते । यतत्सर्वमिभिप्रेत्येक्तमाचार्य्यवस्वामिना शब्द यव हविषा संबध्यते तत्संबन्धादयाँ देवता भविष्यतीति । तस्माच्छव्यान्तरेण निर्देशे विधेयाग्न्यादिशब्द्यनिर्देशार्थप्राप्यमग्न्यादीनां देवतात्वं न पिध्येदिति स्रादित्यः प्रायगीयश्चरुत्तिति विकृतिविशेषे क्र चिदादित्यदेवतान्त्रमागविधायक्रमिदं वाक्यमाचार्यदृष्टुं भविष्यति । च्योतिष्ट्रोमे तु प्रायगीयश्चरू पहितिदेवत्यः । क्र चित्कोशे यः पापयहमगृहीतः स्यानस्मा एतमान्दित्यं चर्च निर्वेषदित्यदित्यवस्वाक्योदाहरणं दृष्टम् । तदिष शाखान्तरम्यमाचार्यदृष्टमित्येवापपादनीयम् । प्रसिद्धतिनिरीयशाखास्थे तु वाक्ये वहवचनान्तादित्यशब्दस्तिद्धतान्तः । स्रादित्यानेव स्वेन भागधेयेने।पः धावतीति वाक्यशेषात् ।

इस्पू । १८

सर्वसंमतानुष्ठानविरेश्वादिति। नन्वनुष्ठानविरेश्वः पूर्वेणचियो न दूवणम् । मीमांसानुसार्यनुष्ठानविरेश्वेनेव हि सर्वेच पूर्वेण्चः ।
यान्यया ऽऽग्नेययागएव सर्वसंमतानुष्ठानविरेश्वादिति चनुं शान्ये कि

बजवन्यविधिप्रयासेन । यद्यात्मिन्नधिक्तरणे पर्यायान्तरेण देवतां निर्देश्याणि

हविः प्रदानमस्त्रित विप्रतिपद्यमानः पूर्वेण्चौ सैश्वेचरैं। निर्वाणमन्त्रेः

सूर्यायेत्येवानुष्ठानं न कदाप्यादित्यायेत्यनुष्ठानमित्यस्मिन्नशे विप्रतिपत्तिरहितः

स्यान्यः सर्वसंमतानुष्ठानविरेश्वादित्येवं तवाणि संमतमनुष्ठानं विरुद्धोतेत्येः

तदर्यतया योजियतुं शक्ये न त्वेतदस्ति । विधिश्रव्यस्य मन्वत्व इत्येतद्र
धिकरणानन्तरं प्रवृते तथानरस्यां तत्रीः तत्यकृतित्वा‡दित्यधिकरणे अस्तुः

प्रकृताविव सैश्वे चरं विवेणदिति विधिविहितायां विकृतावणि हविः प्रदान

सूर्यशब्दिनयमः निर्वाणदिनिगमेषु सूर्यग्वेत्यादिवदादित्यायेत्यादिरिण कदाः

चिन्नदेशे। ऽस्तु सैश्वे चरं निर्वणदित्युत्पत्विवाक्येन हविः प्रदानमाचे सूर्यशब्द
योगस्य विहितत्वात्प्रकृतावग्वये जुष्टुमित्यादिणाठवत्सीर्यचरे। सूर्याय जुष्टुमित्यादिणाठाभावान्नते ए पूर्वण्व इत्युत्यानदर्थनात् । तस्मादनुष्टानिवरे।
स्यादिणाठाभावान्नत्येव पुनः पूर्वण्व इत्युत्यानदर्थनात् । तस्मादनुष्टानिवरे।-

^{*} अर्तुमिति ३ पुः पाः । † जैः दुः ग्रनः ९० पाः ४ सूः ३३ ।

[‡] के पूर पर १० वार ४ पूर ३५ । तत एतलकतित्वादिति ३-५ पुर वार ।

धोिताने सङ्गच्छतद्वति चेदुच्यते । ऋनुष्ठानविरोधादित्यवानुष्ठानगब्दः करणः व्युत्पत्याऽनुष्ठापक्रविधिपरः । तथा चायमर्थः । सै।ये चरं निर्वपेटिति बाक्येन सूर्यगब्दप्रयोगश्चसमाचे न विधीयते किं तु प्रयोगान्तर्गताश्च निर्वापादि-निगमा इति तेष्वपि सूर्यपदिषिद्धिः । न चैवं सति प्रकृते। निवेषादिनिग-मेष्वग्निपदपाठे। व्यर्थ: स्यात्प्रयोगाङ्गाग्निपदविधानत एव तन्सिद्धेरिति बाच्यम् । प्रयोगाङ्गाग्निपदनिर्देशस्य प्रयोगान्तर्गतेषु सर्वेषु पदार्थेषु प्रतिपदार्थे ग्रामे। निर्वापादिषू ज्वित्यन्तेषु केषु चिदेवेति तत्यरिषंख्यानार्थत्वात् । ग्रवं च यदा सै। येचरे। सूर्यपदयोगविधानं निर्वाधं निर्वापप्रभृत्यङ्गपर्यन्तमाक्रामित तदा किमु वक्तव्यमुत्पत्तिपदवाक्ये ऽग्निपदये।गविधानं प्रधानं हिनःप्रदानं न त्यजतीत्येवमुतराधिकरणमिद्धान्तस्मारणेने।पन्यस्ताधिकरणमिद्धान्तदृढी-करणार्थेयमनुष्ठानविरोधोक्तिरिति न का चिदनुपर्यातः । विश्वेदेवपद्स- ३६५ । २० त्रिहितानामिति । यदाव्यन्यच तद्भितादिविग्रहवाक्यस्थ पर्वनामपरामर्थ-नीयं येनार्थगतेन रूपेण सन्निहितं तेनापि पराम्रष्टुं शक्यमिति न सन्निथा-पक्रशब्दहृषितत्वेन परामर्शनियमः तथापि प्रकृते विश्वेषां देवानां शब्देकः गम्यानामनुषस्थितहृषान्तरायां मन्निधापकशब्दहृषिततयैवोषस्थितिनियमे। उस्तीति तात्पर्यम्। स च न्याया वचनेन बाधिष्यतइति । यथा ह्युदि-तेष्टाबाग्नेयेन्द्रश्रुतिबलीयस्त्वन्यायः पूर्वदेवतापनयदेवतान्तरसंयाजनवचनेन बाध्यते एवमचाषीत्यर्थः । इति तदिद्शमुत्थितमिति । एमृच्चितद्रव्यद्वण्यु-तमेकं कमे विधीयतहित टीकावाक्याले।चनया समुत्यितमित्यर्थः । द्रव्यद्वयः युक्तैककर्मविधिरिति । पूर्वपचे श्रामिचावाक्यप्राप्तकर्मानुवादेन वाजिनवाक्ये गुणविधिति कथं संदेहटीकायामुक्तमित्याकाङ्घायामाह एवं चेति ।

तद्गपातप्रतिभानमाद्गयेति । त्रापातप्रतिभानमित्येतदापातद- इद्दे । १ शिनो विनेयान् प्रत्युक्तम् । वस्तुतस्तु संदेहटीके।क्तमिष विमर्शपूर्वक्रमेव । स्या हि द्विविधा ऽस्मिन्नधिकरणे सिद्धान्तन्यायः प्रवर्तते । उत्पत्तिवा- क्यशिष्टामिवावस्दु यागे वाक्यान्तरेण वाजिनं निवेशनं न लभतइत्युत्प- तिशिष्ट्रबलीयस्त्वन्याय एकः । श्रीतामिवावस्दुषु विश्वेषु देवेषु वाक्येन वाजिनं निवेशनं न लभतइति श्रुतिबलीयस्त्वन्यायो द्वितीयः । तत्र द्विती-

[्]रमत स्ट्रिमिति । पु. घाः। .

यस्य टीकायां द्वेघे।पमर्द: कृत: । वैश्वदेवीशब्द: श्रुतिने भवतीति मुतित्वे ऽपि वचनवलादिह मुतिबलीयस्त्वन्याया न प्रवर्ततर्हात च। यवमाद्यस्यापि पिद्धान्तन्यायस्य द्वेथे।पमदै। विविचतः । त्रामिचोत्प-निशिष्टा न भवतीति उत्पत्तिशिष्टत्वे ऽपि वचनबनादिहोत्पतिशिष्टबली-यस्त्वन्याया न प्रवर्तेइति च । ऋच प्रथम: प्रकार: समसमयेति टीकायां कगठत उक्तः । द्वितीयस्तु श्रुतिबलीयस्त्वन्यायस्य वचन-बनाद्वाधात्म्येव न्यायतील्यादूहितुं शक्यतङ्गि कगठता नाक्तः । दृष्टं ह्यभ्युदयेष्ट्री श्रुनिबनीयस्त्वन्यायस्येवात्पतिषिष्टबलीयस्त्वन्यायस्यापि पूर्वदे-वतापनयदेवतान्तरसंघाजनवचनबलाद्वाधनम् । एवमुत्पतिशिष्टबलीयस्त्व-न्यायबाधने पूर्वकर्मानुवादेन वाजिनमाचगुणिबिधिरिति संदेहटीकाेेे तप्रकारी ऽि संगच्छते । वाज्याभ्यां द्रव्यद्वययुक्तमेकं कर्म विधीयतहति पूर्वपचोप-मंहारटीका ऽपि पचद्वयमाधारख्येन याजिवतुं शक्या । प्रथमवाक्येनैकगुगा-विशिष्टतयात्पन्नं कर्मानूदा द्वितीयवाक्येन गुणान्तरविधिरिति पचे ऽपि हि वाक्यद्वयेनेकं कर्म गुणद्वययुक्तं विध्यति न त्वेकवाक्येन वैश्वदेवीत्यस्य युतित्वोपपाद नार्थे प्रवृते: । स्यादेत*देवमित्यादिः सद्धान्तटीकाग्रन्थोपसं-हारे तद्भितयुत्यवगतामिचालचणगुणावरे।धात्यूर्वक्रमीसंयोशिवाजिनद्रव्यं स्वसंबन्धिकर्म पूर्वसाद्विनतीति वाक्यमपि प्रयमशक्यविहितं कर्मानूद्य द्वितीयवाक्येन गुणमाचिधानमिति पूर्वेपचानुमिति सूचयति । ऋन्यया हि श्रौतामिचावसृद्धानां विश्वेषां देवानां वाकंग्रमाणकवाजिनसंबन्धासंभवाद् युगपद् द्रव्यद्वययुक्तविश्वेदेवदेवतानैकयागविधिनं संभवतीति वक्तव्यं स्यात्। तस्मात्संदेहटीकायां पूर्वपवशरीरापन्यासा ऽपि विमर्शपूर्वक एव ।

श्रुतिवलीयस्त्वन्यायमादाय सिद्धान्तयतीति । श्रुतिवलीय-स्त्वमङ्गीकृत्य विश्वे देवामिचासंबन्धे वैश्वदेवीशब्दस्य श्रुतित्वं नास्तीति जि-वादेन पूर्वपचे तस्य तत्र श्रुतित्वोपपादनम् । तस्य श्रुतित्वमङ्गीकृत्य श्रुतिब-लीयस्त्वन्यायः प्रकृते न प्रवर्ततङ्ति विवादेन पूर्वपचे तत्प्रत्युपपादनं चेत्यु-भयमप्यत्र विविवितम् । श्रामिचाविशिष्टानित्यामिचासंबन्धमिति च वस्तुवृ-

तकयनं न त्वामिचाया ऋप्यभिधेयके। उनिवेशाभिप्रायम् । सवं च सति कुते।

^{🎉 *} स्तिदिति नास्ति २ पुन्।

ऽस्यामिचावाचकत्वमित्याचायंग्रन्थो न तु विश्वेषु देवेषु न तत्संबन्धेनीपि तत्संबन्धिमावद्दित टीकाग्रन्थश्व न संगच्छते। कृत श्रामिचापदानपेचग्रत्ययग्रम् सङ्गः कृतो वा तचाऽनपेचेति वाक्ययोः पै। महत्त्यग्रङ्कां परिहरित द्वयं हि सन्वेत्रापाद्यमिति। यदिति द्वितीयान्तः शब्द् इति। स च पदामिधेयन्वस्तुपर इत्यये स्फुटीभिब्धित । श्रनपेचावगतसाधनभावाया इति। वैश्वदेवीति तद्धितेनामिचा द्रव्यान्तरानपेचा हविरवगम्यतेन्तत्सापेचाया हविन्ष्रे सामर्थ्याभावेन तद्धिताऽनृत्पत्तिग्रमङ्गादिति भावः। एवं च यदा श्रुतिबलीय-स्वन्यायस्य द्रव्यद्वयसमुद्वयप्रापकेण वचनेन बाधः पूर्वपिवणोक्तः तदा न केवलया श्रुत्या वाक्यस्य बाधाभावमाचं किं तु निरवकाणदेवतातद्वित्तश्रुतिबाधे। ऽपि स्यादित्यते। वाक्यस्येव स्वते। दुर्वलस्य सावकाणस्य द्रव्यदेवताविश्विष्ठकमीन्तरविधायकत्वकल्पनं युक्तमिति । एवं समुद्वयपचे देषं दृष्ट्वा वचनवलेन प्राप्यमाणं वाजिनं निरपेचसाधनभावसमर्थक द्वित-श्रुतिबाधपरिहाराय विकल्पे । न्वयं लभतामिति पूर्वपची ब्रूयदित्यभिग्रा-येण शङ्किते। विकल्पपचो ऽपि निराकृतः।

सद्त्या वित्रयोग इति । कुणितत्वेनावगते ऽपि राज्ञि त्विय ३६७ । १० कुणित इव वर्ततहत्युक्तिरिव नित्यत्वेनावगते नित्यविद्वस्युक्तिमृद्वितिरित भावः । स्यादेतद्वाक्यं यागान्तरिवधानेनैव तिद्वतश्रुत्तिसंबन्धसामान्यमचन्तम् अभीषोभीयपुरे। डायस्येवाग्निना । यवं च विशिष्ट्रविधिकभीन्तरापूर्वान्त-रक्त्यनागारवपरिहाराय तिद्वतश्रुतरेव संबन्धसामान्यस्थावकाशान्तरकल्पनं यक्तम् । न चैवं स्ति देवताया अलाभप्रसङ्गः । देवतायेचायां क्रुप्रहविरेकदेशसंबन्धानां बुद्धिस्थानां विश्वेषां देवानां देवतात्वकल्पने। पपत्तिरत्याश-द्वेषान्यनां बुद्धिस्थानां विश्वेषां देवानां देवतात्वकल्पने। पपत्तिरत्याश-द्वेषान्यनां बुद्धिस्थानां किविषान्यम्यमवतारयित यत्तृक्तं वचनेनैवेति । क्रुप्रो योगः कल्प्यमानां सृद्धिमञ्जूद्धिस्थस्त्रद्वं बुद्धिस्ययोगः। बाधतहति शङ्कापरिहाराये टीकायां प्रधानं यत्तत्प्रकृतं तदेव सर्वनाम परामृश्वित ने। सर्वनिमिति ने। पर्वनिनिमित्ते ने। पर्वनिनिमित्ते ने। पर्वनिनिमित्ते ने। वर्षिते ने। द्विष्ठिपचनिति ने। वर्षिते ने। वर्षिति ने। वर्षिते ने। वर्षिति ने। वर्षिते ने। वर्षिति ने। वर्षिति ने। वर्षिति ने। वर्षिति ने। वर्षिति ने। वर्षिपचन्ति पदान्याकर्यन्थेषु दृश्यन्ते तान्यच न। वित्रानि हित्वन्तः रमाहिति प्रागवतारिते एवं च सतीति टीकायन्ये चकारः किं चेत्येष्टं हित्व-तः रमाहिति प्रागवतारिते एवं च सतीति टीकायन्ये चकारः किं चेत्येष्टं हित्व-तः

न्तरमाहेत्युक्या विषृतः । यवं सतीत्यंशे विवरणीये स्थिते तिद्ववरणांशीनि तवेत्र प्रतीकोपादानानन्तरं लेखनीयानि व्यत्यस्तकाकुप्दजनितभ्रान्तिमिलं-खकेरिह प्रमादाल्लिखितानि । यद्वा तत्र व्याख्यातव्य यव सन्नेवं सतीत्यंश इहाकृष्य व्याख्यातः । न चाश्वत्वहत्यादौ नेपलचिय्यतीत्यन्ते द्विती-यवाक्ये उप्यनुवृत्तिषूचनाय तवेत्र व्याख्याने एवं सित विकल्पसमुच्चयो न प्राप्यते हित प्रथमवाक्यएवान्वयः प्रतीयेत एवं सित नेपलचिय्यत्यतिति द्वितीयवाक्ये अपि विविद्यतस्तदन्वयो न प्रतीयते । ननु नेपसर्चनन्ययो न सर्वनाम्ना परामश्रे प्रवर्तते अथ शब्दानुशासनं केषां शब्दानामिति महा-भाष्यदर्थनात् । सर्वनाम्ना उनुसन्धिवृत्तिच्छन्नस्यिति वामनसूचाच्चेत्यपिप्रत्याग्यक्ते नन्त्रपसर्जनभूता अपीति । सर्वनामश्वयो तेनोपसर्जनस्यापि परामश्री भवित न चेह वाजिपदे सर्वनामगदयवणमस्ति कि तु तद्वितान्तिविग्रहवाक्ययोरिकार्थ्यान्यमात् तत्र विग्रहवाक्यस्थसर्वनामानुप्रवेशमात्रम् । न चाच तद्वितान्तत्वमिप निश्चित्यमस्ति बुद्धिस्थविष्यादपि क्रिष्ट्रयोगाद-क्रिष्ट्रढेरेव न्याय्यत्वात् ।

ep 1 **e3**5

प्रामाणिके चेतीति । तद्धितस्य हिवदेवताभावद्धपसंबन्धविशेषविषयत्व परित्यच्य किंचिद्विशेषपर्यवसानसापेचसंबन्धसामान्यविषयत्वकल्पनेनापि तत्प्रतिपत्तिगैरिवमप्रामाणिकं विशेषपर्यवसानसम्भक्षाभावात् । न च
यागस्य देवतापेद्यया मृतहविरेकदेशसंबन्धानां विश्वेषां देवानां देवतात्वकल्पनया संबन्धविशेषपर्यवसानं स्यादिति वाच्यम् । देवतापेचस्य यागस्य
भवणाभावात् । तद्धितस्य संबन्धसामान्यविषयत्वे च यागकल्पकस्य द्वव्यदेवतासंबन्धस्य प्रागनुपस्थिते विशिष्टविध्यादिकल्पनागीरवं तु प्रामाणिकम् । पर्यानिकृतं पात्नीवतमृतस्वति म्राच्येन शेषं संस्थापयतीत्यादिषु दर्शनादिति भावः । एकां भावनां विशिष्टनतिति । भ्रपूर्वद्वपफलेक्योपाधिकं भावनेक्यं न तत्स्वहृष्ययं प्रयत्नव्यक्तीनां बहुत्वादुग्रमूतधात्वर्थानां समुद्यय इति क्रय इवाहिश्वमादीनामिति भावः ।

एकस्मादेव धाताविधानादिति । यदाप्यदाहृतेषु यज्ञत्यदिषु बहुभ्यो धातुभ्य एक: प्रत्यय इति शङ्का न प्रवर्तते वहुधात्वस्रवणातः

^{ं&}lt;sub>क</sub> * प्रतीयेतित २ पु॰ पा॰ ।

^{° †} म वर्तते कृति ३ वुः माः।

यापि बदरामलक्रबिल्वा इति बहुभ्यो नामभ्यः सुप इव बहुभ्यो धातुभ्य-स्तिङ उत्पत्तिरन्यचापि नास्तीति दर्शयितुमिदमुत्तम् । एकधात्वयानुरत्ता भावना न धात्वर्धान्तरेग संबध्यतइति सामान्यतः खल्वग्रे साध्यं निर्दि-श्यते । ननु परस्परापेचागामेकवाक्यत्वे हि स प्रयोजकः स्यादिति टीका-यन्यो वैदिक्रणञ्दानां बाधकतायां पाठक्रमस्याऽप्रयाजकत्वे कयमुपक्रमापसं-हारये।रुपक्रमप्राबल्यव्यवस्था सिध्येदित्याशङ्कानिरान्नरवार्थत्वेन व्याख्यातु-मुचितः। तथा व्याख्याने हि यचैकवाक्यता तच पाठक्रमः प्रथमचरमभावे नियामक इत्युपक्रमापसंहारव्यवस्थासिद्धिः । यच नैकवाक्यत्वं तच बाध-कतायां पाठक्रमा न नियामक इति वैषम्यक्यनेन परिहारिसद्धेः पाठक्र-मस्य प्रयाजानामनुष्ठानक्रमे इव प्रयाजवाक्यानां बाधनक्रमे ऽपि नियामकत्वं स्यादिति शङ्कानिराकरणार्थत्वेन व्याख्यानं तु न युक्तम् । तदा हि प्रयाज-वैषम्यं प्रयाजवाक्येषु दर्शनीयम् । प्रयाजाः भवे ऽप्यखरडोपकारहृपं स्वप्रया-जनं परस्परापेचया संभूय कुर्वन्तीति तेषां मेलनार्थे युगपदनुष्ठानप्रसक्ते। एकेन कर्वा बहूनां युगपदनुष्ठातुमशक्यतया क्रमापेचायां पाठक्रमस्तिवामक इष्यते । न च प्रयाजवाक्यानाम् ऋषेबाधनहृपं स्वप्रयाजनं जनियतुं पर-स्परापेचा संभूयकारित्वपरतया नीयतइत्यपरः क्रेयः। तस्मादिदं व्याख्यानं न युक्तमिति चेत् । उच्यते । इह पाठक्रमाऽनादरे उपक्रमापषंहारवैषम्यं प्रयाजादियागवैषम्यं चेत्युभयमपि परस्परापेचाणामिति टीकायन्थेनैव तन्त्रेण प्रदर्श्यतइत्यभिप्रेत्य । तचादावैषम्यप्रदर्शनपरतया याजनं स्फटमित्यपहा-याऽस्फटं द्वितीयवैषम्यपरतया याजनमाचाँयः प्रदर्शितमिति न देाषः ।

नन्वध्ययनमाववत * इति मूचे भाष्यादिष्वध्ययनविधेरधाववाधफल-कत्वमङ्गीकृतम् । श्रधाववाधः स्ताभाचरादिष्वच्याप्र इति तत्फलजपपारायणा-द्यनुगमेनाधीतेन | स्वाध्यायेन यद्गावित्तं शक्यं तत्फलका ऽध्ययनविधिरिति तदुपपादनीयम् । स्वाध्यायशब्दाधेश्व क्रमविशेषविशिष्टवर्थराशिरित्यध्ययन-गृहीतेन विशेष्यांशेन वर्थराशिनेव विशेषणांशेन क्रमेण यद्गावित्तं शक्यं तद्याध्ययनफलत्वेन संगृहीतं भवति । तथा च यथा विधिपाठक्रमस्य

^{*} व्याः सूः ग्रः ३ पाः ४ सूः ९२। † श्रनुगमावाधोतेनेति २ पुः पाः ।

प्रयाजादानुष्ठानक्रमः फलं मन्त्रपाठक्रमस्याऽऽग्नेयाग्नीषामीययागक्रमः फलम् उपक्रमीपसंहारपाठक्रमस्योग्क्रमप्राबल्येन वाक्ष्येष्ट्रश्वदाचोः शेषशेषिभावः फलं काम्येष्ट्रीनां काम्येष्ट्रियाज्यानुवाक्यानां च पाठक्रमस्येष्ट्रिविशेषायां मन्त्र-विशेषायां च शेषशेषिभावः फलम् एवं समिदादिवाक्यानां पाठक्रमस्य तेषां विध्यनुवादभावः फलं भवन्न निवायेतामित्याशङ्कापरिहाराधेमिह पाठक्रमा-दरे ऽपि विध्यनुवादविशेषां न सिध्यतीति प्रदर्शनाय प्रवृतं कथं विदित्यादिदीकायन्यमवतारयति ननु भारवैक्यादिति।

365 1 20

प्रत्यभिज्ञानसुक्तिमित । प्रत्यभिज्ञया यागैक्ये सत्येकस्मिन् यागे विधिद्वयाऽनपेचणादेको विधिरन्यो ऽनुवाद इति विशेषनिर्णयः पाठक्रमेण पिध्यतीति भावः । स्नाख्यातस्य हीति । वैदिकस्य लिङाद्याख्यातस्याप्र- वृत्तप्रवर्तकत्वमुत्स्योः शासनादेव हि तच्छास्त्रं भवेदिति भावः । किं तह्रज्ञ- वद्पवादकमिति । सन्निधिकृतमैक्यप्रत्यभिज्ञानमाचं विधियुतिस्वभावस्या- पवादकं भवितुं नार्हतीति भावः । तद्पेच्वायामिति । तथा च विधियुत्य- पेचितानुवादकत्विद्धाये धात्वथेस्य पूर्ववाक्यतः प्राप्तिं समर्पयन् सन्निधिवि- धियुतरानुवादकत्विद्धाये धात्वथेस्य पूर्ववाक्यतः प्राप्तिं समर्पयन् सन्निधिवि- धियुतरानुवादक्वे नोपमदेकः । इह तु गुणयवणभावादनुवादत्वं नापेचितिमिति विधियुतिः सन्निधं वाधतदित भावः ।

यदि नामधेयानीति । ननु धिमदादीनां पञ्चानां नामधेयत्वमभ्याधात्कर्मभेदे थिद्धे धिध्यत्यभेद इति पूर्वपच्चे एकस्य नामधेयपञ्चकाऽयोगाद्यागिवधी श्रूयमाणं धिमदित्येकमेत्र नाम अनुवादेषु श्रूयमाणं तनूनपातमित्यादिकं विकल्पितदेवतं देवताविधायकिष्णुक्षपंशुयष्ट्रव्यइत्यादिमन्त्रवर्णप्राप्रदेवतानुवादेन स्तुतिपरं वा वक्तव्यम् । अत्र एव च नाम्न
एव च मेदे। नाभ्याधादित्ययुक्ता शङ्केति चेत्सत्यम् । अभ्युपेत्य परिहारानतरं दर्शियतुमियं शङ्का अभिनगतपञ्चसंख्यायास्तु उत्पत्तिशिष्ठत्वादिति । नन्वसा वाव लोका गीतमाभिनित्यादीनां पञ्चानामभीनां कीर्तनानन्तरं यदादित्यं विदुरित्यादी। स एतान् ब्रह्म गमयतीत्यन्ते वाक्ये वेद-

^{*} चेति नास्ति २ पुः।

[†] चेति नास्ति २ पुः।

नविधानमस्ति तदितलङ्घ्य य एतानेवं पञ्चाग्नीन्वेदेत्यादौ शृचिः पूतः पुण्यन्तिको भवतीत्यन्ते उपमंहारवाक्ये वेदनविधानं किमित्यभ्युपगम्यते यतः पञ्चमंख्योत्पत्तिशिष्ठा स्यादिति चेत्। उच्यते। उभयवाप्यार्थवादिकफलयः वणं राविधवन्यायेन फलपरं विपरिणमय्य* लाघवादेकमेवाधिकारवाक्यमवान्तरवाक्यद्वयोपात्तयावद्विशेषणमिहतं कल्पनीयम्। तवैव च वेदनस्ये।त्पति-रिप पृथगुत्पत्तिवाक्याभावात्तस्मन् पञ्चमंख्याप्यनुप्रविष्ठेत्युत्पतिशिष्ठत्वं पञ्चनंख्याया उक्तम्।

षडप्यग्नयः शास्त्राह्रये ऽप्युपास्या इति । लोकान्तरगमना- ३६८ । १६ गमनयोः पुरुषाहुत्याधारम्नतः खनु दालोकादयो ऽग्नयः कीत्यन्ते प्रत्यद्धागिनरिष पुरुषाहुत्याधारत्वेन कथ्यतद्दित दालोकादिसाम्यात्से।प्यग्निः सर्वथे।पास्य दित भावः । ननु टीकायां छन्दोगानामिति वक्तव्ये कथं छान्दोगगनामित्युक्तिस्तवाह छन्दोगोन दृष्टां शास्त्रामधीयतद्दित । छान्दोग्या
दृति।छन्दोगोक्यिकयाधिकबह्नृवनटाञ् ञ्य दृति छन्दोगशब्दाद्धमीम्हाययोरेव
व्यव्यव्ययो विहितः । छन्दोगेन दृष्टां शाखामधीयतद्दत्यथे व्यव्यव्ययः छान्दोग्यस्पापादकः किच्दिन्यो वा प्रत्ययः पाणिनीये विहितो न दृश्यते ।
त्राता ऽच व्याकरणान्तरमन्वेषणीयम् । पाणिनीयानुसारेण तु छान्दोग्यशब्दो
वाचः । अधिकस्तु पष्टो ऽगिनविकल्प्यतद्दिति । यद्यपि षष्टो ऽगिनश्कान्दोग्ये ऽप्युपसंद्दाये दृति वक्तुमुचितं विरोधाभावे ऽपि भाष्येपि तथैवोक्तं तथापि विरोधमभ्युपगम्य बे।डिश्यस्थन्यायेन विकल्पो भविष्यतीति
भाष्ये यः पद्य उक्तः स इह दिर्शतः । उपसंहारस्विष्यमाधिकरणन्यायेन
सेतस्यतीति स्पष्टत्वाद्वोतः ।

नतु किं कठमोक्तत्वादिनिमित्तानुसरणेनेति। ननु काठक- ३६६। ९ शब्दः कठ प्रोक्तत्विनिमित्ता न भवति किं तु कठाम्बायत्विनिमित्तः तस्येद-मित्यधिकारे गावचरणादुविति विहितस्य वुकश्चरणादुर्माम्बाययोरिष्टेः कठेन प्रोक्तिमित्यर्थे वुज्पत्ययस्य विधानाभावादिति चेत्यत्यम्। स्नाम्बायार्थेवुज्-

^{*} विपरिगाम्येति २ पुः गाः।

[†] कठेति नास्ति २ पुः।

प्रत्ययप्रकृतिभूतकठशब्दे प्राक्तार्थप्रत्यया * र्थस्याप्यन्तभावा ऽस्ति । तच कठ-शब्दस्य कठग्रात्तशाखाध्येतृवचनत्वात् । ऋन्यया कठशब्दस्य चरणवाचि-त्वाभावेन ततत्रचरणलचणवुजनुत्पितप्रसङ्गात् । शाखासंबन्धनिमितकः खलु चरगाशब्दः । क्षयं कठशब्दः कठग्रोत्तशाखाध्येतृषु वततइति चेत्। इत्यम्। कठशब्दात्कठेन ग्राक्तमित्यर्थे कनापिवैशम्यायनान्तेवासिभ्यश्चेति सूचे॥ वैश-म्यायनान्तेवाधिलचेशे शिनिप्रत्यये तस्य कठचरकाल्लगिति लुकि पुनर्गि कठे-त्येवहृपे स्थिते ततः कठप्रेक्तां शाखामधीयतइत्यर्थे प्राग्दीव्यतीये ऋण्प्र-त्यये तस्यापि प्रोक्ताद्भगिति लुकि सति कठशब्द एव लुप्रप्रोक्ताध्येतृप्रत्ययः द्वयः (कठप्रोत्तशाखाध्येतृपुरुषवाची) तच । कठप्रोत्तशाखायां प्रोत्तप्रत्ययले।प-माचेण कठशब्दो न प्रयोक्यः किं तु प्रत्ययद्वयलीपेन तदध्येतृपुरुषेष्वेत्र प्रयो-च्यः छन्दे।ब्राह्मणानि च तद्विषयाणीति सूचेण प्रे।क्तप्रत्ययान्तानि छन्दांसि ब्राझगानि चाध्येतृवेदितृविषयप्रत्ययोत्पादनेनाध्येतृवेदितृविषयाग्येव प्रयो-च्यानीति नियमितत्वात् । चतः काठकशब्दार्थे कठग्रात्तस्यान्तर्भावात् केव-लग्रात्तप्रत्ययान्तस्य च कठशञ्दस्य शाखाविद्ययाः प्रयागानहंत्वात्कठशाखाः ध्येतृपुरुषाम्बायवाचिन: काठकशब्दस्य भवानीपतिशब्दस्य भवदव कठप्री-त्तराखायां वस्तुतः पर्यवसानाच्च काठकशब्दः कठग्रात्तत्वनिमितकत्वेन व्य-वहूत इति न दे। ष:।

३६६ । १२ ग्रन्थसंबन्धा विद्यायां च वृत्तिसंभव इति । न च विनिगम-नात्रिरहः । एकस्यां शाखायां मुख्यवृतस्य बहुोषु विद्यासु लवणाभ्युपगमे शक्तिकल्पनालाघवस्य विनिगमकत्वात् । उत्तं हि ।

> शाखया ह्येक्रया यागाद्वहुकमावबाधनम् । युज्यते कर्मनानात्वं नैक्रशाखायलचग्रम् ॥ इति ।

नन् विद्यासु काठकणब्दः कठधमेत्वनिमित्ता ऽस्तु चरणादुर्माम्बाय-योरित्यनुशासनादता मुख्यवृतिसंभवे लचणा न कल्पनीयेति काठकवाजस-नेयकतैतिरीयकादिशब्दैर्विद्यानां कठवाजसनियतैतिरीयादिपुरुषधर्मस्य प्रती-तेस्तासां भेदः स्यादित्याशङ्काह अङ्गीकृत्यापीति । अपिशब्देनाक्तयुक्ति-

[&]quot; प्रोक्तप्रत्ययेति **२ पुः पाः**।

^{† ()} एतदन्तर्गता ग्रन्था नास्ति २ पुः।

रसार्विचकी । केवलप्रोत्तप्रत्ययान्तया याच्चवल्क्यादिसमाख्यया विद्यामेदसिद्धेः । इन्टोब्रह्मणानीति सूचे इन्टोयहणे सिद्धे पुनर्ब्राह्मणयहणस्य चिरन्तानच्चिषप्रोत्तब्राह्मणप्रत्यायनार्थत्वेनाचिरज्ञातयाच्चवल्क्यादिप्रोत्तब्राह्मणविषयाणां प्रोत्तप्रत्ययान्तानामध्येतृवेदितृविषयत्विनयमाभावादिति सूचयित ।
शास्तान्तराधिकरणेनेति। प्राट्या प्रभ्यपगते ऐक्षणास्त्र्यपच्चे पानकृत्वयण्ड्वा ।
सैद्धान्तिके शास्त्रभेदपचे प्रयेवं योजना । स्वणाखापयुक्तमिष शास्त्रान्तरे
चिन्तितं यत्स्वाभिमतं तदिह न चिन्त्यते । यया न्यायशास्त्रे चिन्तितं
कर्मानुमानादि यथा च पूर्वतन्त्रे चिन्तितम् अग्निहोच्चाक्याथादि । अतः
शाखान्तराधिकरणन्याया प्रषि स्वाभिमत एव तच चिन्तितः । अतस्तचिन्तने पानकृत्यमिति*॥

उपसंहारा ऽर्थाभेदादिधिशेषवत्समाने च॥ ५॥

800 1 8

अन्ये ऽपि पत्ता इति । प्रथमे काग्रेड अष्ट्री पत्ता विचारिताः । तम प्रथमपञ्चमपप्रमाष्ट्रमपत्ता इह निक्तिः । वैप्रध्यदेषच्याभ्यां प्रथमपञ्चमपञ्च मपत्ती दूषयित्वा पप्रमपत्तं दूषयित अतिदेशस्य चेति । अखग्रङकरग्रीप-कारः प्रमस्तप्रकृताङ्गजन्यदृष्टाऽदृष्ट्रोपकारद्वारा प्रधानस्य फलजननप्तामर्थ्यान्द्वाधनम् । तस्य प्रकृती क्रुप्तस्य विकृत्यपेत्तितस्य विकृतावितदेशो भवन् तत्तदुपकारहृपजनकाङ्गहृपपदार्थान् विनेषिकारापंभवात्पाकृतपकलपदार्थे विनिष्कारापंभवात्पाकृतपकलपदार्थे विनिष्कारापंभवात्पाकृतपकलपदार्थे विनिष्कारापंभवात्पाकृतपकलपदार्थे विनिष्कारापंभवात्पाकृतपकलपदार्थे विनिष्कारापंभवात्पाकृतपकलपदार्थे विन्यानिष्यये विशेषशास्त्रेणोपपंहारः किं न स्यात् । लुप्रद्वारप्रत्याम्बातप्रति-षिद्वव्यतिरिक्तपदार्थे।पपंहारवत् । उच्यते । प्रमान्यते। ऽतिदेशशास्त्रं कल्पियत्वा तस्य विशेषशास्त्रेणोपपंहारणस्य यदाच्यभागमाचानुष्ठानफलिप्यते तत् क्रुप्राद्विशेषशास्त्रत एव भवतीति किं चेदककल्पनया । अथाच्येत अवैयर्थ्याय प्राकृतपक्रनाङ्गविषयमेवातिदेशशास्त्रं कल्प्यतहति । तचेदं दूष-ग्रमुक्तमितिदेशस्य चेति ।

उपकारावच्छेद एवेति । त्रखग्डोपकारस्याच्यभागातिरिक्ताङ्गेभ्ये। ऽवच्छिद्याच्यभागये।रेवावस्थापनम् उपकारावच्छेदः । क्रथमयमाच्यभागविधा-

^{*} अत्र प्रथमं सर्वेवेदान्तप्रत्ययाधिकरणं पूर्णम् ।

नते। लभ्यतहित चेत्। इत्यम् । गृहमेधीयस्येतिकर्तव्यताकाङ्घस्य प्रत्यचयुतकृप्रोपकाराज्यभागसंयोजनाया निराकाङ्घतापादनेन तदाकाङ्घामूलकचोदककल्पनाप्रतिवन्थस्य द्वारा गृहमेधीयस्य प्रकृतिराहित्यस्पाऽपूर्वतासिद्ध्यर्थामदमाज्यभागविधानामिति चादकसंभवत्प्राणिकयोः पुनविधानसामर्थ्यात्कल्यते ।
तत्तरच ताभ्यामेवाखग्रेडापाधिसिद्धिरित्यिकल्यते । न चैवं सांग्रह्ययादीनामप्यामनहोमादिनैवाखग्रेडापाधिसिद्धिरित्यिकल्यते । न चैवं सांग्रह्ययादीनामप्यामनहोमादिनैवाखग्रेडापाधिसिद्धिरित्यिकल्यते । न चैवं सांग्रह्ययादीनामप्यामनहोमादिनैवाखग्रेडापाधिसिद्धिरित्यिकल्यते । वकृतिषु यित्कंचिद्वेशिवकाङ्गप्रवणे सित प्राकृताङ्गातिदेशो न स्यादिति वाच्यम् । उपकारद्वारा भवन्ती
हि पदार्थेष्वाकाङ्घा प्रथमं कृप्रोपकारेष्वेत्र भवति । यकृतिः कृप्रोपकारपदार्थादर्शनादकृष्रोपकारानिष सिद्धध्यास्तातान् गृहोत्वा तनत्यदार्थसामर्थ्यानुसारिग्या दृष्टादृष्ट्रोपकारकल्यनया निर्वृणोति । विकृतिस्तु कृप्रोपकारप्राकृतपदारेषसां पश्यन्ती सिद्धध्यास्तातामनहोमादीनक्रुग्रेपकारान्विहाय कृप्रोपकाः
रान् प्राकृतपदार्थानेवातिदेशप्राप्यान् प्रथमं गृह्वाति ततो निराकाङ्घापि सांयहर्ग्यादिविकृतिराम्नायवैयर्थ्यपरिहारायामनहोमादीनिष गृह्वातीित भवति
विकृतिव्यतिदेशः । उत्तं हि ।

क्रुग्रोपकारसाकाङ्घाः प्रथमं प्राकृतैः सह । संबध्यन्ते समीपस्यं विकाराः ग्रे।क्रम्य*चेादिनम् ॥ इति ।

गृहमेथीयस्य तु सिन्नधी क्रुप्रोपकारावाच्यभागी श्रुताविति तयाः प्रयमं ग्रहणे सित तत रवापकारणान्तिः कल्यते । श्रन्यया पुनरूपश्रवणवे-प्रयमं ग्रहणे सित तत रवापकारणान्तिः कल्यते । श्रन्यया पुनरूपश्रवणवे-

80९ । १८ अशक्तेः प्रथमाधिकरणे निरस्तत्वादिति । न च परशाखाध्य-यनाभावप्रयुक्ताशक्तेस्तव निरासे ऽप्यनन्तशाखाम्नातगुणेयनापि च्छेदाशिक्तने निरस्तेति वाच्यम् । सर्वज्ञैमेहर्षिभः प्रणीतेषु कल्पसूचेषु कर्मणामङ्गेयनेव ब्राह्मवािषष्ठादिषु विद्याकल्पेषूपासनानां गुणेयनापि निर्धारितेति तेभ्यस्त-स्परिच्छेदसंभवात् ।

> प्राप्तयोः । पुनर्वचनादिति । प्राप्तयोः संभवत्प्राप्तिकयोरित्यर्थः । चे।-दक्षप्रवृत्त्यभावात्पूर्वपचगतपरिसंख्यापचे। ऽपि व्युदस्त इति तस्मिन् पचे चे।-

^{*} प्रोद्धोति ९ पुः **पाः**।

[ा] प्राप्तवारिति नास्ति व पुः।

दक्तप्रवृत्तिरस्तीत्यष्टमण्डो ऽपि परिसंख्याण्ड यव । त्राच्यभागितिरिक्ताङ्गवर्जनहण्य परिसंख्याण्य शिस्य तवाणि सन्वात् । तथाणि पञ्चमण्डो णारसंख्या तवाच्यभागयागिविधेस्तिदत्तरयागणिवर्जने लवणाभ्यूषगमात् । त्रत
यव सा परिसंख्या विदेषित्युक्तम् । त्रष्टमण्डो त्वार्थां परिसंख्येति विशेषः ।
न च विद्यास्वणि णाखान्तरतः संभवत्पाणिकानां गुणानां पुनः प्रवणमस्ति
तद्गुणान्तरपरिवर्जनफलकं स्यादिति वाच्यम् । तस्य गुणोपसंहाराधिविद्येक्यप्रत्यभिज्ञानाधैत्वेनान्यशासिद्धन्वादिति भावः । त्राच्यभागतिदत्तराङ्गसाध्योपकारे त्रितिदेशप्राणे इत्यवोपकारस्तोमे ऽतिदेशप्राणे इति क्व चित्याटः ।
तच मूलगतिपण्डशब्दव्याख्यानार्थः स्तोमशब्दस्तदङ्गचन्यदृष्टापृक्षोपकारसमुदायार्थः । उपकारावच्छेद इत्यव तच्चन्यस्य फलजननसामध्योद्वोधनहृपस्याखग्रहोपकारस्येवाच्यभागमावजन्यत्वेनावच्छेदः न तु दृष्टादृष्टोपकारसमुदायस्याङ्गान्तरजन्यदृष्टोपकाराणामाच्यभागजन्यत्वासंभवात्प्राणोः पुनिवेधानमेव बलवद्वाधकमिति तच नास्तीति† भावः ।।

श्रन्ययात्वं शब्दादिति चेत्राविशेषात् ॥ ६॥

805 13

प्रजापितः कर्मज्ञानाधिकृतः पुरुष इति । वच्यमाणवागादिवृ तिहृणाणां प्रजानामपत्यानां पितरीश्वरस्ततत्कार्येषु नियाजने समर्थः कर्म-ज्ञानेषु लीकिकवैदिकेष्वधिकृतः पुरुषः चेवचः कर्मचानानि हीन्द्रियपा-टवसापेचाणि तदपत्यानीन्द्रियवृत्तय इति । यदापि तदपत्यानीन्द्रिया-णीति व्याख्यातुं युक्तं ते ह वाचमूच्रित्याद्यपरितनसंदर्भे तदपत्यहृषेषु देवेषु वागादीनामेव द्यनुप्रवेश उक्तः न तु तद्वृत्तीनां वृहदारण्यकभाष्ये ऽपि तथेव व्याख्यातं सान्त्रिकषृत्या संपन्ना देवास्तामसर्वृत्तिप्रधाना असुरा इति टीकाया अपि तचेव स्वारस्यम् । तथाप्युद्भवाभिभवहृषस्पद्धातिश्वा-न्दोग्यगतसंग्रामोक्तिश्व परस्परभिन्नासु वृत्तिष्वेव सङ्गच्छतदृत्येवं व्याख्या-तम् । च्छान्दोग्यभाष्ये ऽप्येवमेव व्याख्यातम् । प्रजापितः कर्मचानाधिकृतः पुरुषः तस्य शास्त्रीयाः स्वाभाविक्यश्च करणवृत्तये। विरुद्धास्तदपत्यानीव तदुद्भवत्वादिति । वृत्तिवृत्तिमदभेदविवच्चया न व्याख्यानयोः परस्परिवरोधः ।

^{*} प्राप्ते द्वति २ पु· पा·। † तच्चात्र नास्तीति २ पु· पा·।

[🗜] श्रत्र द्वितीयम् उपसंहाराधिकरणं पूर्णम् । 🖰

अविध्यत्सन्निति । विषयासङ्गस्कपदेषिण पाप्मना वेदुमैक्क*न्नित्यर्थः । व्याच ताडनइति धातोः सन्प्रत्ययान्तस्य लिङ रूपम् न विद्याभेद्-कमिति । उद्गातृशब्दस्योद्गीये लचणायामुभयवापि विद्येक्यं भवतीत्यर्थः । उद्गोथ उद्गानिक्रयेत्यभिप्रेत्य टीकायां लचियाता । यदाद्गीयावयव उँकार इति व्यवहाराद्गीयमानवर्षसमुदायरूपा द्वितीया भक्तिसद्गीयस्तदा सैक्यांति-शयेन कर्मणः कर्तृत्वविवचयोद्गातृशब्द उद्गीयस्य वाचक इर्त्याप समर्थ-यितुं शक्यम्। ॐकारस्येत्यस्य षष्ट्रान्तस्याकाङ्घापूरगायं कृत्वेति शेषाध्याहारे ऽपि तथा होत्यियमग्रन्थेन नान्वय इत्यागङ्क्य कृत्वेत्यन्तं भाष्यप्रतीकापा-दार्नामत्याह एतचेति । यस्य यजमानस्येति । के चितु हविरिति द्वि-तीयान्तम् अभिरभागे इत्यभेर्लवणे कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीयेत्येवमवान्तः रवाक्यभेदं विना व्याचचते पुरस्तादित्येतच्च पूर्वस्यां दिशीति व्याचचते । निस्प्रं हविरभ्युदेति चायते देवतार्थमसंकल्पितस्य यजमानद्रव्यमावस्य ष्टविष्ट्राभावात् । एवं च यदापि सिद्धरूपं यजमानद्रव्यमाचम् त्रनाविष्टव्यापारं चन्द्रोदयीयलचगत्वेन न विशेषगत्वेन निवेशयितुं शक्यं तथा ऽपि हित्र:-पदात् प्रतीतस्य सङ्कल्पमाचस्य विशेषणतापपता न पदान्तरप्रतीतः शक-टानीताद्वीहिराघो: पुराेडाघार्थेकदेशयहगालचगा निवापा ऽपि निवेशनीय:। अनाकाङ्कितोट्टेश्यविशेषणविवचायां वाक्यभेदापतेरिति भावः । दात्रगन्या-दिदेवताभ्या निर्वपेदिति । दाचम्यादिदेवता उद्विश्य यजेतेत्यर्थः। अभितः सन्निधाविति।

यमुपक्रान्तदर्शमभि उदितश्चन्द्रः स यजमाना ऽभ्युदित इत्यपि व्याचिष्ठे ४०३ । २० दर्शलापे त्विति । नन्वकालोपक्रान्तस्य दर्शस्य लोपो उस्तु तावता नैमितिकं क्रमं कृत्वा किमित्युपरन्तव्यम् । सिद्धान्तइव पूर्वपचे उपि मुख्यकाले दर्शकर्ते-व्याताया (अवश्यकत्वाद्वाक्यान्तरेश) वर्शितत्वाद्य । एवं हि तदादि विभिया-दिभ मोदेष्यतीति महाराचे हर्वीषि निर्वपेत् फलीकृतिस्तग्डुलैक्पासीताद्धं दिष्य हिवरातञ्चनार्थे निद्ययादद्धं न यदाभ्युदियातेनातञ्च्य प्रचरेद्यदिनान्येद्यस्तेन ब्राह्मशं भोजयेदिति । अस्यार्थः । यः प्रवृत्तदर्शतन्त्रो यजमानः किमदा चतुर्दश्याममावास्यास्रान्त्या दर्शः प्रारब्यः किं चन्द्रमा अभ्युदेष्यतीति शिङ्क-

^{*} इच्छिचिति २ पुपा∙।

^{† (्}रे सतदन्तर्गता ग्रन्था नास्ति ९ पुः।

या भयं * प्राप्तृगत् स महत्यामेव राचा हिविनिह्यावहत्य फलीकृत्यादीच-माग श्रासीत सायंदे। हसंगादितं च दिच द्विचा विभन्य तदर्थ मुख्यकाले करिष्यमाग्रस्य दर्शस्यार्थे तत्पूर्वदिनमायंदेग्हं संपादा दध्यातञ्चनाय निद-ध्यादर्थान्तरं तद्यं न निदध्यात्विं तु पूर्ववदेव स्थापयेत्। एवं कृते यदा-भ्युदयः स्यातदा मुख्यकाले दर्शप्रारम्भानन्तरमातञ्चनाथै निहितेनाधैन दथा मायं दुग्धे पयस्यातञ्चनं कृत्वा दध्युत्पाद्यान्येद्युर्देषियागं निर्वर्तयेद् यदि नाभ्युदयस्तदानीमातञ्चनाथे निह्नितादधीदन्येनाधेन दर्शनिवृत्तेस्तदथै दध्युत्पादनाऽनपेचणेनातञ्चनाथे निह्नितमधे ब्राह्मणभाजनेन प्रतिपादये-दिति । तदेतदातञ्चनाभ्याषदर्शनं षिद्धान्तनिङ्गत्वेन वर्णितम्। यदि कर्मा-न्तरमभ्युदयेष्टिः स्यातदा पशुकामेष्टाविव दिधिशृतये।रिधकरणत्वेन प्रगीता-कार्ये विधानादुपादेयत्वेन च प्रकृतग्रहगप्रमागाभावाल्लोकिकण्व दक्षि पर्याप च श्रपणं कृत्वा सायंदे।हेनाकालकृतेनापि प्रायश्चितःनिर्हृतकालापराधदे।षेण मुख्यकाले दर्शः कर्तव्यो न दथ्यन्तरमुत्पाद्यम् । यदाकाले प्रक्रान्तमेव दर्श-कर्म देवताविकारयुक्तं सदभ्युदयेष्टिः स्यानदा तदधे कृतेन दभ्रा तस्यैवानुष्टि-तत्वान्मुख्यकालकर्तव्यदशेश्यमवश्यं दथ्यन्तरमुत्याद्यमित्यथेवदातञ्चनम् । तचाऽमुख्यकालकृतमायंदेाहार्थेनैवातञ्चनं कार्यमित्येतावान् विशेषा विथीय-तदित । अच सिद्धान्तिनिङ्गतयोपन्यस्तेनातञ्चनाभ्यासेन मुख्यकाले दर्शकर्त-व्यता ऽपि चाप्यतहति स्पष्टमेव । पूर्वपिचगा ऽप्यकाले।प्रकान्तं दशे त्यक्षा नैमितिकं कृत्वा पुनर्दर्शः समारम्भणीय इति सिद्धान्तिवदेव मन्यमानेन पुनरारच्थदश्रेप्रयोगाद्वहिरकालकृतस्य दश्चो मुख्यकालकर्तव्यदश्रीऽनहृत्वेना-ं तञ्चनाभ्यांचे। ऽभ्यदितेष्टेः समान्तरत्वे ऽप्युपपदातदति तस्य चिद्धान्तितङ्ग-त्वमेवापहूयते न तु मुख्यकालकर्तव्यदर्शकालज्ञापकत्वम् । मिद्धान्तिना त्वकालोपक्रमदोषस्य पूर्वपचे नैमितिकेन कमीन्तरेण निहृतत्वादकालोपक्रा-न्त एव दशें। मुख्यकालापक्रान्त एव दशें। मुख्यकाले समापनीय: न तु मुख्य-काले पुनर्दर्शः समारम्भणीय इत्यापाद्य तस्यातञ्चनाभ्यासलङ्गानुपपत्तिः समर्थ्यते । त्रमावास्यायामेवेत्यादिटीकायन्यो ऽपि पूर्वपचिद्धान्तसाधार-रयेन निमित्ताधिकारस्य कर्मान्तरस्य विकृतदर्शप्रयोगस्य वा समाप्यनन्तरं

^{*} श्रङ्काभवमिति २ पुः पाः।

808 1 E

मुख्यकाले दर्शः कर्तव्य इत्येतत्यर एव स्वरसतः प्रतिभाति न पिद्धान्त-कांटिप्रयाजनप्रदर्शनपरः पूर्वपचकांटिप्रयाजनप्रदर्शनामावानदहरेव वेदाुदुर-णादि कृत्वेत्येनदातञ्चनाभ्यासलिङ्गसमर्थनाथं पूर्वपत्यनुसारेख पूर्वपत्वे ऽपि योजियतुं शक्यम् । ऋष वा ऽमावास्यायामेवेत्यादिटीकायन्यः बिद्धान्तके।-टावनुष्ठानप्रकारमावस्य प्रदर्शनपर: न तु पूर्वपचे मुख्यकालकर्तच्यो दंशी नास्तीति तद्यावृत्तिसद्धान्तके।टिफलप्रदर्शनपर: । पूर्वपचे त्रातञ्चनाभ्यास-निङ्गानुपपति समर्थयमानेन सिद्धान्तिना पूर्वपचे ऽपि मुख्यकाले दर्शयागा-नुष्ठानस्य दर्शितत्वाद् दर्शस्तु लुप्यते कालापराधादिति पूर्वपक्षोपसंहारटी-काग्रन्थे। ऽप्यातञ्जनाभ्यासलिङ्गसमर्थनप्रवृत्तपूर्वपत्त्याशयानुसारेख काले।पक्रा-न्तदर्थप्रयोगमावलोपपरः कालापराधादिति हेतृत्तेः । तस्मादकालोपक्रान्तदः र्श्वप्रयोगं त्यह्मा संसल्पप्रभृति क्रमीन्तरं पूर्वपचे कर्नव्यं सिद्धान्ते त्वकाः ले।पक्रान्तदर्शप्रयोग एव देवतान्तरसंयोजनरूपविकारयुक्तः संपादनीय इत्येव पूर्वपचिसद्धान्तयाः प्रयाजनभेदा वनुमुचित इति चेत् । उच्यते । चकालीपक्रमदेषिया तस्याममावास्यायां सर्वात्मना दशीं लुप्रः । मध्यमादि-वाक्येविहितं कमान्तरं तु लुप्रस्य प्रत्याम्बायहृषम् । ऋता यथा स प्रत्यामने-त्स्थाना *दित्यधिकरण पूर्वपचे यस्योभयं हविरातिमार्च्छति ऐन्द्रं पञ्चशराव-मादनं निर्वपेदिति दिधिशृतद्भणसाद्वाय्यनाशे निमिते विधीयमाने। दशै-ष्ट्रितः क्रमान्तरहृषः पञ्चशरावयागा दशेष्टे हेविनाशेन लेापानत्प्रत्याम्बाय इति तदधिकरणपूर्वपचे दर्शेष्टिले।पः । एवमभ्युदयनिमिते उपीति केश्चिदे-ंबदेशिभि: पूर्ववचे प्रयाजनमुक्तं भविष्यति तदनुवादे। ऽयमिति न देाष: ।

येमध्यमादिवाक्यैदेवतान्तरेष्वित । श्रव पूर्वकर्मणि देव-तान्तरिवधानं न विविच्चतं तस्योत्पितिषिष्ठगुणावरेष्यपिरहाराय देवता-पनयविधिप्रवृत्तिषापेचत्वेन परस्पराश्रयापनेः किं तु येमध्यमादिवाक्ये-येदि पूर्वकर्मणि देवतान्तरिवधिः यदि वा देवतान्तरिविधिष्ठकर्मान्तरिवधिः पचद्वये ऽपि देवतान्तरिवधिरिवप्रतिपन्न इत्येताविद्विचितम् । एतावता तत्स्-जातीयानां देवतानां बुद्धिस्थताता । तत्प्रतियोगिनीनामित्यनेनाप्येक-हविः संबन्धित्वेन तत्प्रतिद्वन्द्वित्वं न विविच्चतं परस्पराश्रयताद्ववस्थ्यापतेः

^{*} जी सूर ऋर ह पार ४ सूर ३०।

किं तु माजात्येन तत्मम्बन्धित्वमानम् । ऋय वा तगडुनद्धिगृतशब्दैः प्रकृतदर्शहविषां प्रत्यभिज्ञानात्तेषामेव देवतान्तरविधानं येमध्यमादिवाक्यैः क्रियतइति तावत्प्रतिभाति तच्च तेषां पूर्वदेवतापनयमन्तरेण ने।पपदातः इति विमर्शे।पस्थितदार्शिकहविषां देवतान्तरिवधानं वेधा वाक्यस्यान्यतः प्राप्तिमत्प्रतीयमानार्थतया ऽथीन्तरपर्यववानापेचस्य दार्शिकहविषां पूर्वदेवता-भ्या विभागा ऽर्थ इति निर्णयहेतुत्वेन विवित्तम् । ऋत एव विभागविषयेषु सामर्थ्यलब्यहविष्टुविशेषगावश्यम्भावाननुल्यत्वस्यापि विवद्यायां बाक्यभेदाः पितर्वेत्त्यते हिवमार्च विभागविषय इत्यादिना । पूर्वेच्याख्याने तु यदापि हिंगिष्टुं न ग्रुतं तथापि तगडुलानां हवीह्रपेगीव देवतासम्बन्धित्वं न स्वह-पेगोति हविष्टुं तावदयुतमपि यस्य हविनिस्प्रमित्यव सिन्नहितमवश्यं विव-चर्णोयम् । त्रतस्तग्रहुनत्वस्यापि विश्वायां वास्यभेदापनिरिति योज्यम् ।

ननु श्रुतत्वे ऽप्युद्वेश्यविशेषणस्य ग्रहेकत्वस्यावित्रचः तृनीये निर्णीता तेनैव न्यायेनाभयत्वस्याविवता सिद्धा क्षयं पूर्वपत्त इत्याशङ्काह हविविदि-ति । त्रातिमार्क्कतीत्युद्देश्याया निमित्तभूताया नाश्याप्रेहेविविशेषण सिद्धान्ते ऽपि विविचित्तमङ्गीक्रियते पदान्तरीपातत्वेन ग्रहेकत्ववैलचायाच्चेदुभयत्वमपि तत एव विविचतमस्त्वित भाव:।

विशिष्टेशे वाक्यमेदं विवृगोति हविरातीविति । ननु विशि- ४०४ । १६ ष्ट्रे। द्वेषो नाम द्वित्विशिष्ट्रहिवरार्तेर्निमत्तत्ये।द्वेशः । तच वाक्यभेदं प्रति-हविरुभयत्वयाविशेषणविशेष्यभावं विना स्वातन्त्र्येणात्य-न्वये वाक्यमेद: प्रदर्श्यते । उच्यते । नामपदानां परस्परमसंबद्धानामेवा-ख्यातान्वया ऽरुगाधिकरग्रन्यायिदुः । त्रत ग्व बार्हस्पत्या नैवारः समदशशरावश्चरूभेवतीतिविहितायां विकृतीष्ट्री प्राकृते चतुर्मुष्टिनिर्वापे चेाद-कतः प्राप्ने चतुर्भिमुंष्ट्रिभिः सप्रदशशरावपूरकस्य चरोः संपादयितुमशक्य-त्वेन तत्र मंख्यामुष्ट्यन्यतरबाधे कर्तव्ये मुष्टिले।पातु मंख्याले।पस्तद्गुणत्वा-दिति * सूचेग्रीमुष्टिगुग्रमूतमंख्याबाधः कार्य इति पूर्वपत्तं कृत्वा न निर्वाप-शेषत्वादिति† सूचेण संख्यामुष्ट्योहभयोर्राप निर्वापशेषत्वेन तयोर्गुणप्रधान-भावविशेषाभावाच् चरमयुतस्य मुष्टेरेव बाधः कार्यः । त्रतश्चतुर्भिर्महा-

^{*} जै॰ सू॰ श्र॰ ९० पा॰ २ सू॰ ६४। † जै. सु. भ्र. ९० पा. २ सू. ६५।

पानै: सप्रदशशरावचरसंपादनापेचितव्रीहिनिवीप: कार्य इति दशमे सिद्धा-न्तितम् । त्रतश्चतुरे। मुष्टीचिर्वपतीत्यव संख्यामुष्ट्र्योरिवाव हविरुभयत्व-याराख्यातेनैवान्वया न तूभयत्वस्य हविरन्वयः तथापि कथं चिनस्य हविरन्वयः कल्येत यदि तदाकाङ्गा स्याद् न त्वसावस्ति हविरानिमाचस्य निमित्तत्वे।पपते: । तस्मात्संख्यामुष्टिन्यायेन हविस्भयत्वये।राख्यातान्वयसिद्धै। संख्यामुष्ट्रम्यविशिष्टनिवीपविधानेनाऽवाक्यमेदे ऽप्यच निमित्तविशेषणये।ह-ट्टेश्यके।टिनिविष्टये।विधेययोरिव क्रियया वशीकार्यत्वाभावेन क्रियायास्ताभ्यां प्रत्येक्संबन्धनिमिता वाक्यभेदे। भवतीत्यहविरातै। निर्वपेदुभयातै। चेति वाक्य-भेदे। दर्शितः । हविराते। निर्वणेदुभयहविराते। चेति क्व चित्पाटः स पाठः यतावन्तमथै मनिष निषाय इति उपरि शङ्कान्तरपरिहारार्थत्वेन योजनीय:। न्त्रवैवं शङ्का । नेह हविस्भयत्वयारप्यात्यंन्वयः किं तु हविरार्तिमार्च्छेदिति हविरातेनिमित्तत्वबाधनानन्तरं हिवस्भयमिति तस्य हविषः संख्यान्वया बाध्यते तनाख्याताश्रवणादुभयत्वं हविषैव संबध्यते नीलमुत्पलीमत्यनाः त्यलेनेव नैल्यं निमित्तपर्यवसानायें हविष: स्वत: संख्याकाङ्वाविरहे ऽपि तत्सं-बन्धबाधनेनेदम्पर्यप्रवृत्तवचनबलातच तद्बोधः स्यादेवेति । एवमपि वाक्य-भेदः स्वयं प्रदर्शितयैव रीत्या समापतन्न निवार्य इति परिहारः स्पष्टः । तम हविसमयमित्येतावति द्वितीयवाक्ये प्रदर्शनीये प्रथमवाक्यप्राप्नांशानुवादः साहित्येनाभग्रहविराता निविषेदिति द्वितीयवाक्यमुपन्यस्तम् ।

808 । १८

वाक्यभेदताद्वस्थ्यादिति। आर्तिमार्च्छेदित्येतावता निमितः पर्यवसानात् सा चार्तिहेविविधिष्ठेति पृथ्यविधनीयम्। तथा चेाभयविशेषणाः भावे उप्यार्तिमार्च्छेद्धविरार्तिमार्च्छेदिति वाक्यभेदस्तवदस्य इत्यर्थः। सर्वेदा सर्वेषामि यजमानानामन्ततिष्चिन्तितनिमिषितादिनाशंसन्वानाशमानं न निमित्तम् अनियतत्वाभावादित्यस्ति हविविशेषणापेचा नैवमुभयत्विविशेषणापेचा उस्तीति परिहारार्थः। तस्मादुभयत्वमिविवित्ति। श्रुतिगतं तूभयपदं न केवलं द्रध एवार्तिनिमित्तं नापि केवलप्यस एवेत्येत्त्रदर्थमनुवादमानिति तात्पर्यम्।

शाब्दिकास्तु द्वित्वस्याविवचां नानुमन्यन्ते । यदुत्तं हरिगा ।

यकत्वं वा बहुत्वं वा केषां चिदविविचितम्। तद्विजात्यभिधानाय द्वित्वं तु स्याद्विविचतम्॥ इति।

गतञ्चाख्यानावपरे हेलाराजेन तथा सित यस्योभयं हिविरित्यवापि दित्वस्य विवदायामन्यतराते। नैमितिकाभावप्रसङ्ग इत्याशङ्क्य समाहितम्। तच दित्वमानं न श्रुतं किं तु द्वावयवः समुदायः संख्याया श्रवयवे तय-विति संख्याविशेषयुक्तावयवघटितसमुदायार्थेतयप्रत्ययादेशाऽयजन्तत्वादुः भयशेव्दस्य। ततश्चाचाभयशब्दार्थस्यावयवद्वयारब्थसमुदायस्येकावयवनाशे ऽपि नौमितिकानुष्ठानमुष्पद्यतद्वति।

द्रव्यमुखेनंतीति । इह हि दा्शिकद्रव्याण्यपनीतपूर्वदेवताकानि ४०४ । ३३ देवतान्तरसंयोजनसाकाङ्घाण्यासते अता मध्यमादिशब्दानां प्रकृतदा्शिक-द्रव्यपरत्वावश्यंभावाननपुखेन दर्शकर्मप्रत्यभिज्ञानं पूर्वेक्तं सिद्धान्तप्रयोजनं न गमयतीत्यवतारितः ततश्वेति टीकाप्रन्थः शङ्कान्तरपरिहारार्थत्वे-नापि योजयितं शक्यः । तवेयं शङ्का । कर्मान्तरमिति पूर्वेषचे भवतु पुन-देशानुष्ठानं प्रक्रान्तस्येव दर्शस्य विकृतप्रयोगा उभ्यदयेष्ठिरिति सिद्धान्ते दर्श-स्यानुष्ठितत्वात्किमिति पुनर्दशानुष्ठानमिति । तवायं परिहारः । अकालोप-क्रान्तदर्शे नैमितिकेन विकृतिप्रयोगेण समापिते उपि मुख्यकाले त्वननुष्ठि-तत्वाच पुनस्तदनुष्ठानमिति । पुराडाशसामश्रादिति । पुराडाशस्यापूप-शिषेपत्वेन तत्सामध्यादेव तग्रहुलादीनां पाकान्तानां प्राप्तिः व्रीहीनवहन्ति तग्रहुलान् पिनष्ठि पिष्ठं संयोति पुराडाशं श्रपर्यात कपालेषु श्रपयतीत्यादिवि-धयस्तु कर्तृकरणाद्यपायनियमाथा इति भावः ।

द्ध्नस्तन्दुलानामिति । ननु देवतैक्याद्वधितग्रंडुलानां पयस्त- ४०५ । १ गड्डुलानां च प्रदाने माहित्यं मिध्यति न तु पाके । स तु पयमः कुम्भ्यां भर्जनकपाले उन्यच वा तग्रंडुलानामिति भेदेनैव प्राप्नोति । न च दर्थं- श्वमं शृते चक्मिति दिधियुक्ततग्रंडुलानां पयोयुक्ततग्रंडुलानां च देवता- मंबन्धवेधियात् तग्रंडुलानां पाककाले तद्युक्तयोदिधिययमार्पि महपाकः प्राप्नोतिति वाच्यम् । दधः पयमश्च मप्तम्योः महपाकाद्यप्राप्नाधिकरण-त्वानुवादकतथा वद्यमाणत्वेन मप्तमीभ्यां दिधिपयः माहित्येन तग्रंडुलानां देवतामंबन्धाभावादिति चेत् । अभ्यदयेष्टिप्रकरणे मह प्रपयतीति वाक्यमस्ति

तेन दिश्वतग्रं एयस्तग्रं ज्ञानं च सहपाकिसिद्धिरत्याहुः । इयि केति । सान्नाय्यदेष्टं प्रकृत्य यूयते वाग्यतस्तिम्ने देश्चियत्वा विस्वृष्टवागन-व्यारम्य तूर्ण्यामुत्तरा देश्चियतीति । तच किष्ठज्ञलन्यायेन तिम्न ग्रवेशित्या गावे न देश्चियाः किं तु यावत्ये। यजमानस्य गावस्ताः सर्व। देश्चियाः नास्यैतां राचि कुमाराच्चन पयसे। लभन्तद्गति वाक्यशेषात् । न चाच कुमाराणामदृष्टार्थः पयोनिषेधः । दृष्टार्थत्वे संभवत्यदृष्टार्थत्वकल्पना- उनुपपतेः । अय्ययेन चनेत्यनेनािष कृत्त्वस्य यजमानपयसे। देवतार्थत्वेन विनिये।ग्रातीतेश्चेनि उत्तरासु न यावत्स्वप्रपूर्वत्वा*दित्येकादशे निर्णा- तम् । तदर्था ऽचानुसंहितः । ननु पुराडाशनिवृत्तािविति । पुराडाशसा- मध्याद् लब्यः तदर्थत्वेन च श्रुतः पाकः पुराडाशनिवृत्ताि निवर्तति । मध्याः ।

804 10

साधनविशेषाश्रितत्वादिति । यथा †ब्रीहीनवहन्तीत्यादिषु श्रुता प्रवहननादया न ब्रीहिप्रयुक्ताः किं त्वपूर्वमाधनहृपमाधनविशेषप्रयुक्ताः। न हि ते ब्रीहय इति कृत्वा ऽवहन्यन्ते किं तर्हि तग्डुनादिव्रगाडिकया पुराडाश-निवेतेनद्वारेग यागाऽपूर्वस्य साधनानीति यवेष्वपि तद्रपसाम्यातेषामव्यवहन-नादया भवन्ति तथा पुराेडाशस्य पाका न पुराेडाशप्रयुक्तः कि त्वपूर्वसाध-नतारूपे। यस्तद्वितिसाधनताविशेषस्तत्ययुक्तः । स च स्यविष्ठादिवास्यद्वयाम्बा-तेषु तराडुलेष्विप समान इति भावः । ननु तराडुलावस्थायां देवतासंयोजना-चुरुत्वस्याभिधानाचु‡ तग्डुला ग्व प्रदेया इति प्रधानपेषगात्रत् पाको ऽपि निवर्तेत प्रदेयद्रव्यिषद्भाषी हि पाक: इह प्रदेयास्तग्डुला विनेव पाकं मिद्धाः त्रत एव विवायागद्रव्येभ्यस्तग्डुलेभ्यः पात्रनिवृत्तिस्ता न्याय-रब्रमालायां तगडुलेभ्यार्थलापेन श्रपगं विनिवर्ततइति दाहनानन्तरमेव श्रिवतस्य शतस्य द्रधश्च कथमपि न पाकप्राप्रिरस्ति । सत्यम् । इह सह श्रपयतीति वाक्यादेव पाकस्यापि सिद्धिः । स्यादेतत् । चरुसप्रम्यथेयारनु-घाद्यत्वेन तद्विधानप्रयुक्तवाक्यमेदाभावे ऽपि दिथि तरांडुनांश्चेाद्विश्य पय-स्तग्डलां श्वाद्विश्य देवतासंबन्धविधानेन प्रत्युद्वेश्यं वाऋपरिसमाया वाऋ-भेदा दुनिवार: । न च वाच्यं सप्रम्यन्तसमिभ्याहारलभ्यं तराबुलानां दिधिः

^{*} जै॰ सू॰ ग्र॰ १९ घा॰ १ सू॰ ४६।

[‡] ऋविधानाच्छेति १ पुः पोः।

[†] यहेति ९ पुः पाः।

युक्तत्वं पये।युक्तत्वं च विधेयमस्तु मा भूत्यप्रम्यर्थस्य।नुवादात्वं तथा च षडितस्यैकस्ये।द्वेशाच बाक्यभेद इति । तथापि षाहित्यं देवतासंब-न्धरचेत्युभयविधाने बान्यभेदाऽनिवारगाटुधिपय:साहित्यस्य विधेयत्वे साद्राय्यरहितानां सामयाजिनामप्यभ्युदयेष्टिरस्तीति निर्णायकेन साद्राय्य-संयोगान्नासन्नयतः स्या*दित्यधिकरणेन विरोधप्रसङ्गान्च । तत्र ह्यसन्न-यते। दिथिपयसे।रभावान्नाभ्युदयेष्टिरिति पूर्वपत्ते द्रधस्तग्डुलानां प्रयस्तग्डु लानां च प्रत्येकमुट्टेश्यत्वेन तत्साहित्यस्याविविचतत्वादसन्नयतामपि केव-लतगडुलद्रव्यकाभ्युदयेष्टिः स्यात् । न च चहत्विसिद्धार्थे दिधपयसेर्मिः प्रणापेचा अनूरामानचर्वस्यानङ्गत्वेन तदभावे वैकल्याभावाद् अप्सु म्यपणसंभवाचेति व्यवस्थापितम् । एतेन देवतापनये प्रयोगविशेषश्चोद्यनः इति टीकानुसाराद् द्रव्यद्वयेन देवतया च विशिष्टस्यैकस्य प्रयागस्य विधानात्र वाक्यभेद इत्यपि शङ्का निरस्ता । दिधपयसेर्विधेयतायामसत्र-यतामभ्युद्याभावप्रसङ्गात् प्रयोगस्य प्राप्तत्या विकारमाचविधानपर्यवसानेन वाक्यभेदपरिहारालाभ।च्चेत्याशङ्कायां भवतु वा उनेकवाक्यकर्ल्पनाप्रकृताधि-कारावगमबलादस्यापि न्याय्यत्वादिति टीका प्रवृता । तच यदि प्रकृता-धिकारावगमः प्रकृतदर्शयागानुवृत्तिप्रत्यभिज्ञानं तदा पञ्चशरावयागा ऽपि विकृतो दर्श एव स्यान्न कमीन्तरम् । तथा सनि पञ्चगरावस्तु द्रव्यायुते: प्रतिनिधि: स्यादित्यधिक्ररगों यदातेंदे।हप्रतिनिधित्वेन दर्शयाग्यव पञ्चश-रावद्रव्यविधिः न तु कमान्नरविधिरिति पूर्वपन्ने पञ्चगरावैदिनस्य द्रव्यत्य इन्द्रस्य देवतायाश्च प्रकृतसः द्वाय्ययागानुवादेन विधै। वाक्यभेदः स्यादता द्रव्यदेवनाविशिष्टनैमितिककर्मान्तरविधिरिति सिद्धान्तितं तद्विरोधः स्यान-थापि प्रकृतप्रत्यिभिज्ञानेन वाक्यभेदस्याऽसे।ढव्यतापितिरित्याशङ्क्य विशेषितं द्रव्यद्वारेगोति । अपनीतपूर्वदेवतान्तरसंयोजनसापेवाणि दार्शिकान्येव तस्ड्-लादीनि गृह्यन्तरत्याकाङ्गानुसारेगावगम्यते । किं च यदि विभियादित्यादि-वाक्ये महाराचे फलीकरणपर्यन्तं कृत्वा पेषणमकृत्वा प्रतीचणत्रवनादपीदं चायते । ऋभ्युदयेष्ट्रामेतएव तराडुना इन्द्राय प्रदाचे विष्णवे शिविविष्टाय चेति । चन्यया पेषणात्प्रागेव प्रयोगमवस्थाप्य प्रतीचणमदृष्ट्राथै स्यात् तथा

^{*} जै. सू. ग्र. ह पा. ४ सू. २९। † जै. सू. ग्र. ह पा. ४ सू. २८।

त्रातञ्चनार्थेस्य दथ्यर्थस्याभ्यदयाभावपत्तद्दव तदन्यस्य दथ्यर्थस्याभ्यदयपत्ते प्रतिपत्यविधानादिदं ज्ञाप्यते * अभ्युदयेष्ट्रां तदेवान्यदर्थं दधीति । अभ्यु-दयाभावपचे दध्यन्तरात्पादनस्यानपेचितत्वादातञ्चनाथै दध्यर्धप्रतिपन्यपे-चावदभ्युदयपचे तदितरार्थस्य लैक्किदधिसाध्यायामभ्युदयेष्ट्र्यां दध्यन्तरा-त्यादननिर्वत्ये मुख्यकालदर्शे चानुपयागात्प्रतिपन्यपेचा ऽस्तीति तत्प्रतिप-ज्ञायते अभ्युदयेष्ट्रां वैदिकप्रसिद्ध्या हृद्या शतशब्दवाचाः प्रातदेशह एव पया न तु लैकिकं पय इति । अन्यया आदित्यः प्रायगीयः पयि चरुरित्यचेव पय:शब्द एव प्रयुच्येतेति। पशुकामेष्ट्रां तु गृहीतशब्दे। लीकिः कपयसा लचणार्थ इति सूचकृतिवाक्तं लचणार्था शतश्रुतिरिति । न चेष्ठ लचगायां कारगमस्ति । एवमिह द्रव्येक्यकृता ऽनन्यथासिद्धा प्रत्यभिचेव प्रकृतत्वमाचकृता वाक्यभेददेषमावात् प्रच्याविवतुं न चमेति विशेषं सूचियतुं द्रव्यद्वारेषेत्युक्तम् । यवं च स्थविष्ठादिवाक्यद्वयद्व सह श्रपय-तीति वाक्ये ऽपि वाक्यभेदः स च तग्डुले। द्वेशेन प्रत्येकं दथा पयसा च सहपाकविधिरित्येवंद्वपे। वा दिध तगडुलानां च पयस्तगडुलानां च सहपाकविधिरित्येवंह्रपे। वा न भवति असन्नयते। ऽभ्युदयेष्ट्राभावप्रसङ्गात् किं तु दथ्युद्वेशेन पयउद्वेशेन च तग्डुलमहपाकविधिः । तेन यच दिधपयमी तचैवेदं वाक्यद्वयं प्रवर्ततहत्यसन्नयता ऽप्यभ्यदयेष्टिलाभः एवं चासन्नयतः प्रभूतद्यिपयः सहपाकप्रयुक्तायाः पुराडाश्रभावनिवृत्तरभावात्पुराडाश्रभावनैव प्रदेयता चर्गब्द: पाचिकानुवाद: । दिखपयसे: सप्रमी च स्थविष्ठानाम-णिष्ठानां च तगडुलानां देवताषम्बन्धवच्चस्भावा विधेय: । स्यविष्ठाणिष्ठवा-क्ययाः प्रत्येकं वाक्यवैविध्यापपत्तः । एवं चरुभावस्याङ्गत्वादेवाधान्तरभाव-साधने दिध पर्याव च प्रयोताधर्मायां प्राप्निनेवमे स्थापिता ऋसद्वायिनामप्स चरोः श्रपणं भाष्यकारैक्तं च सङ्गच्छते । टीकायां परस्माच्च परः पराच्च वरीयानिति व्युत्पतिर्देशीर्शता तच पञ्चम्यन्तस्य परशब्दस्य वरशब्दस्य च ेपूर्ववाक्ये सामगतिपरंपरायां निवेशितस्वरप्रागादिरर्थे इति व्याच्छ्रे परसा-त्स्वरप्राणादेः परावराच तस्मादेव वरीयान् वरतर इति । पराव-

^{*} इदं जायते दृति २ षुः घाः।

रीयानित्येकं पदं परेावरीया हास्य भवति परेावरीयमे ह लोकान् जयतीति वाक्यशेषात्परशब्दे त्रे।त्वनिपातेन विद्धोयं शब्द उपन्यस्तार्थविषयः ॥

व्याप्तेश्च समज्जसम्॥ ६॥

४०५ । २३

स एवार्थे इति । उद्गीयेन विशेषग्रह्मं यमये सिद्धवत्कृत्य विद्याभेदी दर्शितः स एवार्थेश्चिन्त्यतइत्यर्थः । उद्गीथभिक्तसंब-न्धिनः प्रण्वस्यापासनाया अधिकारप्रतिपादनमिति । प्रतिपादनं विधानं तथा चेामित्यवरमुद्गीयमुपासीतेत्यच उद्गीयभन्यवयवाङ्कारकर्मविशि-ष्ट्रोपासनाविधिरयं सामेन यजेतेतिवद्विशिष्ट्रविधिद्ध्य उत्पत्तिविधिः स एव रसानां रसतमः परमः पराध्याष्ट्रमा य उद्गीय इत्यबोङ्कारे रसतमत्वगुण ।-विधि:। श्रापयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानचरमुद्गीयमुपास्त-इत्यवाप्रिगुणविधि: । समर्थयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वान-चरमुपास्तरति तस्मिन् समृद्धिगुगविधिः । श्राप्रिसमृद्धिगुगविध्यथैवादयुतफः लद्वयग्रहणेन कल्प्ये। ऽधिकारविधिः । आप्त्यादिहब्दीर्विधातुर्मिति । दृष्टिविषयानाप्यादिगुगान् विधातुमित्यर्थः । उत्पतिविधिनैव दृष्टिप्राप्रेः । पृथगु-पासनाविध्यभावादिति । बद्यमायाफलविशिष्ठोपासनेत्यितिविषयत्वेन स्वतन्त्रोपामनान्तरविष्यमावादित्यर्थः । न चाच मा भूदयमुत्पत्तिविधिः । ययायुत्रग्रन्थस्वारस्यानुरोधेनोद्गीयावयवत्वविशिष्टप्रणवह्नपात्रयसमर्पेणपरे।य-मस्त्विति वाच्यम् । एकपद्रमुत्योपासनान्वितस्य विधेस्तदतिलङ्घनेन विशेषण-संज्ञान्तिकल्पनाऽनौचित्यात्। श्रन्यया सामेन यजेतेति विधेरप्यधिकारविधि-लभ्ययागानुवादेन सेामगुगमाचविधित्वऋत्यनाप्रवङ्गादिह रसतमत्वादिगुगविः धिषु चिष्वपि विनिगमनाविरहाततद्गुग्यविशिष्टोपासनाविधित्वस्य कल्पनीय-तया बहुविशिष्टविधिबहूपासनाविधिकल्पनागै।रवप्रसङ्गाञ्च । ऋषि च । गै।एया वृत्तेरिति टीकायामध्यासपचे गै।षी वृति: सिद्धवत्कृत्य व्यवहृता विशेषणपचइव तस्मिन्नपि पचे लचणैव कि न स्यादित्याशङ्क्य तस्मिन् पचे दृष्टिविधिलाभाष्यं गै।ग्री वृतिरवश्यात्रयगीयेत्याह ॐकारउद्गीथदृष्टि-विधा हीति । सादृश्यलवणागर्भा खलु गाणी । ततश्चोद्गीयशब्दस्य ४०९ । ६

^{*} अत्र वृतीयम् ग्रान्ययात्वाधिकारणं पूर्णम् ।

[†] रसतमगुणेति २ पुः पाः।

यदो द्वारे गाँगी वृत्तराष्ट्रीयत तदोद्गीयदृष्टिविषयत्वम् । श्रमी पिष्टपिषडाः पिष्टाः क्रियन्तामित्यव सिंहाकारमिव साध्यसादृश्यं गृहीत्वा उँकारमुद्गी- यदृष्टिविषयं कुर्ववुषासीतित्यये पर्यवसानं कतु शक्यमिति दृष्टिविधिक्तम्येत । श्रवयवावयविस्वन्यमूलकलज्ञणाष्ट्रयये तु सा न लभ्यतहति । उद्गीयदृष्टि- विषयत्वादे द्वार उद्गीय इत्यर्थ इति । गौगावृत्याप्रयये श्रोमित्येतदः सरमुद्गीयमित्यस्येव तद्ये। लभ्यतहत्यथे: ।

860 199

गै। एयां लच्लीयार्थहारा ऽर्थान्तरे शब्दस्य वृत्तेव्यवधानमाहिति । लच्लीयार्थे मुख्यार्थसादृश्यम् । ननु भाष्यस्वारस्यान्मुख्यार्थे यत्यवृत्तिनिमिनं तस्यान्यचारोपेण शब्दस्य वृत्तिगाणी वृतिरिभमतेति प्रतीयते ।
टीकायामव्यिधकरणोपक्रमे तथैव गाणी वृत्तिलिक्ता । इह लच्लागीएयोः
सिन्नकषेविप्रकषेप्रदर्शनभाष्यव्याख्यानावसरे मुख्यार्थसादृश्यं लच्चित्वा तद्द्वारेण तद्वत्यर्थान्तरे वृत्तिगाणीति लच्चितलचणाद्ध्या सा टीकाकारैराचार्यश्च
वस्यते किमर्थमिह भाष्यस्वारस्यपरित्यागः । भाष्यात्त त्रारोप एव हि
प्रकृतोपयोगी प्रसिद्धस्य । तथा हि त्रध्यासपचे नाम्नि ब्रह्मत्वादेराङ्कारे उद्गीयत्वादेराराप्योपासना वर्णिता तथापासना च नाम्नि ब्रह्मशब्दस्य ब्रह्मत्वारोपेणाङ्कारे उद्गीयशब्दस्याद्गीयत्वारोपेण च वृत्तावेव घटते तस्मादारापण्डा
पष प्रकृतोपयोगी । प्रसिद्धस्य स एव लोके वेदे च । लोके तावत् ।

किमसुभिर्गिलितेर्जंड मन्यसे मिय निमञ्जत भीमसुतामन: । मम किल श्रुतिमाह तदर्थिकां नलमुखेन्द्रपरां विबुध: स्मर: ॥ इति ।

श्रव नलविरहातुरया दमयन्त्या चन्द्रं प्रत्युपालमः क्रियते । मृतानां मनश्चन्द्रे लगतीति प्रतिपादयन्ती यचास्य पुरुषस्याग्निं वागयिति बातं प्राणश्चन्द्ररादित्यं मनश्चन्द्रमित्यादिश्रुतिं दृष्ट्रा खलु दमयन्ती मृता चेदस्या मनः स्वस्मिन् लग्नं भवेदिति प्रत्याशया मां मार्ययतुमिच्छसि सा जडस्य तब प्रत्याशा निष्मला यतः सा श्रुतिः नलमुखचन्द्रविषयिति विबुधा मन्मया मह्ममुण्दिष्ट्रवानिति । एवं श्रुतेश्चन्द्रान्तरविषयत्ववर्णनं भलमुखे चन्द्रत्यारे।एएव संगच्छते । एवस्

^{*} म्लिपितीरिति नैवधपुस्तकेषु पाठी दृश्यते।

श्रमतुर्वेदने। ब्रह्मा द्विबाहुरपरे। हरि: । श्रमालले।चनः शम्भुर्भगवान् बादरायगः ॥

इत्यचापि बाटरायगे ब्रह्मत्वाद्यारोपे एवं चतुर्वदनत्वादिप्रसिद्ध-ब्रह्मा येकैकगुणवैकल्यवर्णनं स्वारस्यमञ्जते । म्रत्यल्प*मिदमुदाहृतम् । सर्वचारोपप्रमाणा एव कार्यसरणयः । एवंभूतेष्वारोपेषु सादृश्यं व्यङ्ग-विषयतया कविभिविवत्यते न तु गै। खवृतिविषयतया । अत एव रूपके-गो।पमा व्यक्यतहत्यालङ्कारिकसमय: । तथा वेदे उप्यातमानं रिधनं विद्धिर् शरीरं रथमेव चेत्यादिष्वात्मशरीरादिषु रथिरथादिभावारेषः सुप्रसिद्धः। अजामेकामित्यादिमन्त्रे प्रकृतावजात्वकल्पना असै। वा आदित्या देवम-ध्वित्यादावादित्यमगडले मधुत्वकल्पनेत्यादिकमपि सुप्रसिद्धमेव । इत्यं वेदे आरोपमूलां शब्दवृतिं शरीरहृपक्षविन्यस्तगृहीतेरिति कल्पने।पदेशाचु मध्वादिवदविरोध इति च सूचकारो ऽपि स्पष्टमाह । तस्मादिह लिवत-लचगारूपा गागोति व्याख्यातुमयुक्तम्। न च लचगागाय्याः सन्निकर्षविप्रकर्ष-प्रतिपादकव्याख्येयभाष्यर् स्टत्य तथा व्याख्यानं मुख्यार्थमाचात्संबन्धमूला लवगा सित्रकृष्टा मुख्यार्थवृतिगुणसमानगुणाधिकरणत्वह्रपपरम्परासंबन्धमूला गै।गी विप्रकृष्टेत्येवं भाष्यतात्पर्यापपतेरिति चेदुच्यते । यथाभाष्यमारोपमूना गै।गोत्येव टीकाकारागामाचार्यागामव्यभिमतं तदधिकरगोपक्रमटीकातज्ञा-ख्यानाभ्यां स्पष्टम् । सन्निकर्षविप्रकर्षभाष्यं गै।एयारे।पमूला न भवति किं तु बाद्रश्यलवणामूलेति ये पूर्वमीमांसका वर्णयन्ति तन्मतानुसारेणापि याजयितुं शक्यमिति वैभवातया व्याख्यातम्। पूर्वमीमां एकेहिं तत्सिद्धये टीकायां यजमानः प्रस्तर इत्यच प्रस्तरे यजमानगब्दस्य यजमानत्वारे।पेण वृतिने भवति किं तु तत्कायकरणत्वहृण्यजमानसादृश्येनेति महता यत्नेनापपा-दितम् । वस्तुतस्त्वचापि यजमानत्वारोपेण वृत्तिरित्येव युक्तमुत्तरम् । बर्हिषः प्रस्तरं सादयति प्रजा वै बर्हियंजमानः प्रस्तरे। यजमानमेवायजमानादुतरं करोतीति संदर्भे। रोहितेन त्वा अन्तर्देवतां गमयत्वित्याहैते वै देवाश्वा यजमान: प्रस्तरे। यदेतै: प्रस्तरं प्रहरित देवाश्वरेव यजमानं स्वगे लोकं गमगतीति संदर्भश्च संगच्छते । बर्हिष उपरि यत्प्रस्तरस्यासादनं तदेव

^{*} मस्बन्धिमिति २ पु· पा·।

यजमानस्यायजमानादुत्तरीकरणिमिति वचनं हि बहिषि प्रस्तरत्वारीपे प्रस्तरे यजमानत्वारोपे च सत्येव संगच्छते । तथा रोहितेन त्वेत्यादिभिर्मन्त्रेः प्रस्तरस्याहवनीये स्वगा लोक ब्राहवनीय इत्यथेवादान्तरश्रुतेः प्रहरणं प्रस्तरस्याहवनीये स्वगा लेक ब्राहवनीय प्रस्तरे यजमानत्वस्याहवनीये स्वगत्वस्य चारोपण्य संगच्छते । एवं सत्यपि वार्तिकादिषु यदारोपण्रच्छादनं तद्वेदणमाण्यसंरचण्ययसनितया । यदापि सदरोदनादासदर्थमवलम्ब्य विधेयस्तुती तात्पर्यवर्णने प्रामाण्यस्य न चितः तथापि

प्रवरं न लभन्ते हि यावत्क्व चन मर्कटाः। नाभिद्रवन्ति ते तावत् पिशाचा वा स्वगे।चरे॥

र्शतन्यायमवलम्ब्य वेदप्रामाग्य*प्रतिषेधकारग्रं कियते। ऽप्यवकाश-स्यालाभायारापपद्यः प्रौढ्या प्रच्छादितः । त्र्रलं विस्तरेग्र†॥

309 196

सर्वाभेदादन्यत्रेमे॥ १०॥

ननु कैषितिकवाक्यमिति। एवंशब्दः सिन्नहितावलम्बन इत्ये-तावता शाखान्तरेक्तं वसिष्ठादिकं न व्यावर्तयित तस्याप्यनुमानतः सिन्न-हितत्वेनैवंशब्दपरामर्शनीयत्वादिति शङ्कार्थः । सिन्नधापितमेवैवंशब्दः परा-मृशित न प्रमाणान्तरसिन्नधापितमिषि । श्रन्यया गामानयेत्यव गोरिव प्रत्यवोपस्यापितघटस्यापि कर्मतया उन्वयप्रसङ्गादिति परिहारार्थः । फलविधिपरे इति । तथा य एवैवं विद्यादित्यादि तदमृता भवति यदमृता देवा इत्यन्तं तव फलवाक्यम् ।

विद्यैक्यद्वारा प्राप्तशाखान्तरीयफलसंबन्धानुवादादिति।
ननु केषितिकशाखायां तदमृतो भवति यदमृता देवा इति प्राणदेवतासायुक्यं फलमुत्तम्। शाखान्तरे तु छान्द्योग्ये बृहदारग्यके च क्यैष्ट्रात्रेष्ट्रपुर्वे फलं तद्भृहदारग्यके स्वानामिति विशेषणाक् ज्ञातिमध्ये वयसा गुणेन
चाधिक्यक्रुपमैहिकमेव तत्कुतः शाखान्तरीयफलानुवादसंभव इति चेदुच्यते। केषितिकिशाखायामिवास्ति शाखान्तरे ऽप्यनाम्नातविष्ठित्वादिगुणा
प्राणिवद्या। स्रतं एव भाष्ये केषितिकप्रभृतीनामित्युक्तम्। तेषु प्राणदेवता-

^{*} वेदवत्प्रामागरंति **३** पुरा

[†] अत्र चतुर्थे व्याप्यधिकरगां पूर्णम्।

षायुच्यं फलमुक्तमस्तीत्याचार्यागामाशयः। ननु क्वान्दोग्यबृहदारवयके।कच्छेः ष्ट्रायेष्ट्रागुणनाभा ऽपि प्राणदेवतासायुन्यहृप एव तत्सायुन्यस्य तद्गुणान्वय-रूपत्वाद्वहदारएयके ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवतीत्येतदनन्तरमपि च येषां बुभूषित य एवं वेदेति वाक्येनान्येषामि येषां न्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च भवितुमि-च्छति तेषामपि च्येष्ठः येष्ठश्च भवतीति च्येष्ठ्ययेष्ठ्यये।रैहिकाम्प्रिकसाधाः रग्यस्यातत्वात् । गवं फलाभेदापपादनेन* पूर्वपचिद्धान्तयार्विद्यैक्यिस्टुः वत्कारयोगात् । तस्मात्फलानुवादेनान्यव्यावृत्तिपरते। तिर्धृत्तेव । ननु पञ्चाग्नि-विद्यावैश्वानरविद्यादिफलवाक्येष्वपि एवं प्रयते तेषामपि शाखान्तरप्राप्रफ-लानुवादेनान्यव्यावृत्तिपरता स्यादिति चेत् । त्रस्तु । पूर्वपिचयः का हानिः । श्रव मैद्धान्तिकन्यायव्युत्पादनेन तेष्वनुषमंहारशङ्कानिरामे। भविष्यतीति । ननु सत्यमित्यादिटीकायामशैब्दस्यापि शाखान्तरीयगुगाजातस्य शाब्दा-न्वया युक्तः श्रव्यभिचरितक्रतुषंबन्धिजुहूपस्यापितस्य क्रताः पर्यातान्वय-दर्शनात् तथेहाऽव्यभिचरितविषष्ठत्वादिगुगासंबन्ध्यपास्यफले।पस्यापितस्य विषष्ठत्वादेरन्वयसंभवादित्युक्तमिति प्रतिभाति । तन्न युक्तम् । शब्देापस्थापि-तस्यैव शाब्दान्वयनियमात् पर्यातावाक्ये ऽपि न लिङ्गापस्यापितस्य क्रतारन्वयः किं तु जुहूपदलिवतस्य । पर्याताया जुहुाकृतिमाचार्थत्वे वैयय्ये स्यादिति जुहूपदस्य तद्वति क्रता लचणा स्वीकृता। न चेह कस्य चित्यदस्य गाखा-न्तरीयगुणजातलज्ञणायां किं चित्कारणमस्तीत्याशङ्कां वारयति सत्यम-शाब्दं शाब्देनान्वेतीति।

भवति शान्द्मिति । स्व†शाखास्नातवत्परशाखास्नातमपि शान्द 805 । प्र मेव शाब्दत्वे ऽपि कै। बीतिकिशाखागतैवंशब्दार्थावगतिसमये शाखान्तराः म्नातं गुणजातं शब्देन ने।पस्थितं‡ किं तु स्वशाखाम्नातं तत्पूर्वापरानेकः वाक्यविहितं तदाशब्देने।पस्थितं तदानीमशाब्दमपि शब्दमूलप्रतिपन्यास्पद-मेतत्प्रकरणास्नातगुणत्वेन क्रोडीकृतम् एवंशब्दो गाचरयेदिति यवं तर्हि याखान्तरामातमपि गुगाजातमेतद्विद्यासंबन्धिगुगत्वेन क्रोडीकृतं म गाचरयतीत्यस्तु प्रधानभूतविद्याघटितप्रकरणानुप्रवेशापेवया विद्यानुप्रवेशे

^{*} फंजमेदाऽनुपपादनेनेति २ पुः पाः। ‡ नेापस्थितं चेदिति २ पुः पाः। *

[†] स्वशब्दा नास्ति ९ पुः।

80६। ९ लाघवादिति भावः। उपास्यफलप्रत्यभिज्ञानादिति फलप्रत्यभिज्ञा-नमुपपादितम् । स्यादेतत् । वसिष्ठत्वादीनां कीषीतिकशाखाम्बाताः यामुदाहृतप्रागविद्यायामुपमंहारी न युज्यते विरोधात् । तथा हि । बाचा वसिष्ठत्वं वाग्मिनः सञ्चवहारजननेन वसुमतासंवादकत्वं चच्छः प्रतिष्ठात्वं चतुष्मतः समविषमभूतलादिप्रदर्शनेन प्रतिष्ठासंपादकत्वं श्रोवस्य संपत्त्वं वेदशास्त्रतदर्धश्रवगादिसंगादनेन संपत्करत्वं मनस श्रायतनत्वं स्नक्-चन्दनादिविषयत्वज्ञानहृपभागायतनत्वमिति तत्तद्वाक्यशेषादानुसारेण स्थि-तम् । ऋते। यदहं वसिष्ठे। इस्मीत्यादेर्यदहं वसुमनासंपादनसमयो इस्मि त्वं तद्विषिष्ठे। ऽपि मत्यामर्थ्यस्य त्वदधीनत्वातवैतत्यामर्थ्यमत्यादिर्थः । इदं च प्राणस्य वागादिगततत्कायेसंपादनसामध्येनिमितत्वहृपं वसिष्ठत्वा-दिकं क्रान्दोग्यवाज्ञसनेयकगतप्राचित्रायासुपपदाते । तयाः प्राचीच्चिक्रमि-षायां वागादीनामपि क्रमेग प्रसक्तिवर्ग्यनेन तेषां स्वकार्यकरगासामध्येस्य प्रागा-धीनत्वात् । क्रीषीतक्रिणाखायां दशमाध्याये यत्प्राणविद्याम्नानं तचापि वसिः ष्ठत्वादिकमुपपदाते । तब हि यो ह बै ज्येष्ठं च येष्ठं च वेद ज्येष्ठरच ह वै श्रेष्ठश्च स्वानां भवतीत्यारभ्य छान्दोग्यबृहदारएयकरीत्येव प्राग्रस्य चौष्ट्रयः म्रेष्ट्रगुग्रावन्त्रं वागादीनां विषष्ठत्वादिगुणकत्वं मुख्यप्रागस्य वागादीनां च श्रेष्ठ्यविषयपरस्परविवादेन ब्रह्मसभापवर्णनं यस्मिन्नुत्कान्ते शरीरेन्द्रियाऽ= नवस्थितिः स श्रेष्ठ इति ब्रह्मवचनं तत्यिरिचिकीषेया वागादीनामेक्नैकस्य .शरीरादुत्क्रम्य प्रयेटनं तदा शरीरस्येन्द्रियाणां च यथापूर्वमवस्यानं प्राणस्या-ल्क्रमग्रवृत्ते। तेषां विशरगां तता भीतानां वागादीनां माल्क्रमीस्त्वनः श्रेष्ठ इति मुख्यप्रागां प्रति वचनमित्येतत्सवं क्रमेगा वर्णितम् । प्राणे वागादिः गतवसिष्ठत्वादिगुगसमर्पगमाचं नातः कै।बीतिकशाखायां चतुर्थाध्याये ऋषाता नि:श्रेयसादानमित्यारभ्य या प्राणविद्या ऽस्त्राता तस्यामुत्तरूपं वसिष्ठत्वाः दिसं प्राणे ने।पपदाते । तत्र हि प्राणाऽनधीनकार्यत्वं वागादीनामुक्तम् । शरीरमाचस्य प्राणाधीनस्थितिसंचारादिमन्वमुन्तम् । ऋयाते। निःश्रेयसादानं सर्वा वै देवता ऋहंयेयसे विवदमाना अस्माच्छरीरादु चक्रमुस्तट्टा हमूतं शिश्ये अधैतद्वाक् प्रविवेश तद्वाचा वदच्छिश्यएव । अधैनचुत्तुः प्रविवेश् तद्वा-

^{*} विचन्द्रत्वादिनेति पुः पाः ।

चावद मुत्रुवा वश्य च्छिश्य एव । अधैनत् श्रोषं प्रविवेश तद्वाचा वद मुज्राव वश्य च्छ्रावेश शृवक् शिश्ये एव । अधैनन्मनः प्रविवेश तद्वाचा वद मुज्राव वश्य स्थाने श्रोवेश शृवक् मनमा ध्यायत् शिश्ये एव । अधैनत् प्रागः प्रविवेश तत्तत एव समुतस्थाविति । तस्मादुदाहृतके। वोत्रादीनामिषवदनमान् वस्य प्राग्रावधीनत्वोक्ताविति गेष्ठिषु सह्य वहार जिल्लाने वसुमतासंपादकः त्यह्रपं यद्वसिष्ठत्वम् एवमादिकं शरीरस्थितिसं वारापेशं प्राग्राधीनमित्येतदिन हाप्यनुमतमेवित वसिष्ठत्वाद्य वसंहारे न का प्रयनुपर्यतः ।

ज्यावदें। उप्यर्थ इति । तथे। इत्यष तथा उ इति द्वे पदे इति भावः । प्राणात्मत्वप्राप्तया प्राणमायुज्यप्राप्ता श्रथ वा कल्पान्तरे प्राण-देवताभावप्राप्ताः ॥

ञ्चानन्दादयः प्रधानस्य ॥ १९ ॥

संयद्वामत्वाद्य इत्यादेयथाविधि व्यवस्थेत्यन्तस्यायमथेः । श्रविषुक्षेषासनार्थमुणस्यगुणत्वादयो संगद्वामत्वादयो दथ्याद्विद्वियेयाः । श्रतः कालान्तरभाविफलेट्टिश्यकगुणविधिष्ठब्रह्मोपासनाविधिष्रयक्तं फलापूर्वम-भ्युपान्त्रव्यं तत्ययुक्ताश्चेतिकर्तव्यताह्णा धर्माः कर्तव्यत्वेनापदिष्ठस्य कथं कर्तव्यमित्याकाङ्वायामित्यं कर्तव्यमित्युपदिश्यमानस्ततत्प्रकारिवधेषः ख-र्वितिकर्त्तव्यता सात्वपूर्वप्रयुक्तिति पूर्वतन्त्रे सप्रमाद्ये व्युत्पादितम् । तदित्यं यद्यपि यागेनाऽपूर्वे कृत्वा स्वगं भावयेदिति विधिना यागकर्तव्यता ऽप्यवग्नम्यते तथापि तच न प्रकाराकाङ्वा ऽस्ति किं चिदुद्विश्य द्व्यत्यागहृपस्य लेकिकस्य तस्य निर्मातप्रकारत्वात् । न ह्योदनं पचेत्युक्ते कथमिति प्रकारविशेषाकाङ्का जायते जायते तु घृतपूरं पचेत्युक्ते । तथेहाऽपूर्वकर्ते-व्यताया श्रनिर्मातप्रकारत्वात्व कथमाकाङ्कायां तदितिकर्त्रच्यताहृपत्यो-पदिश्यमाना धर्मास्तत्ययुक्ता इति तदपूर्वमियते। धर्मानपेवतद्वित लेकित-स्तत्पित्माणाऽनवगमाद्यच यावतामन्वयस्तावद्विस्तद्ववतीति विध्यनुसारेणा-वगन्तव्यत्वात् । यथाविधि व्यवस्थेति । यवं चानिर्म्वातपरिमाणत्वादि-वगन्तव्यत्वात् । यथाविधि व्यवस्थेति । यवं चानिर्म्वातपरिमाणत्वादि-

^{*} अत्र पञ्चमं सर्वाभेदाधिकरसं पूर्णम्।

त्यस्यानिश्वांतपरिमाण्यमंषाध्यत्वादित्यथेः । श्रपूर्वबहुत्वाभावेन यथाश्रुतानन्वयात् । श्रयं वा ऽवान्तरापूर्वाभिप्रायं सर्वमिदं वाक्यं योजनीयम् ।
बहुगुणविशिष्टब्रह्मोपासने हि पाठक्रमेण गुणचिन्तनेषु बहुषु जायमानेषु
प्रयाजाद्यपूर्ववद्वहून्यवान्तरापूर्वाणि भवन्ति तत्प्रयुक्ताश्च भवन्ति उपास्यफलाः । श्रङ्गापूर्वाणामपि तदङ्गगुणप्रयोजकत्वात्तेषामियत्तारूपं परिमाणमिनश्वातं विध्यधीनं निर्वातिमिति यथाविधि व्यवस्था ।

यावर्दियो भ्रान्तय इति । निर्गुणप्रकरणेषु गुणवैशिष्ट्राम्नानस्य निष्प्रधानभूतिनर्गुणप्रमित्यर्थत्विद्धार्थं गुणवैशिष्ट्र्यांशं त्यतुं चानत्वानन्दत्वा-दोनामन्यतमगुणवैशिष्ट्रप्रवर्षे ऽपि विरोधस्पूर्तये प्रकरणान्तराम्नातगुणे।पर्षः हारे कर्तव्ये विनिगमनाविरहान्नानाप्रकरणाम्नानात् सर्वगुणे।पर्महारः कार्यः । न चैवं सगुणप्रकरणाम्नातसंगद्वामत्वादिगुणानामि निर्गुणप्रकरणां उपंसहार-प्रसित्तः । सन्निदानन्दत्वानामुपर्महारस्यानृतजडदुःखात्मत्वपरिच्छिन्नत्वाऽना-त्मत्वभ्रान्तिनिवारणेनेव संगद्वामत्वादीनामुपर्महारस्य क्रिविद्भ्रान्तिनिवर्तनेन सन्निदानन्दापरिच्छिन्नप्रत्यगात्मभूतन्नसम्बद्धपद्धपप्रमित्युपयोगित्वाभावादिति भावः ॥

80E 1 93

श्राध्यानाय प्रयोजनाभावात्॥ १४॥

व्रस्तिमावभूतेति । सत्तादिसामान्यानि घटत्वादिवद्धामिस्वभा-वभूतानि श्रायादिएरत्वं तु प्रतियोगिसापेत्वम् श्रस्वभावभूतमित्यर्थः । न सर्वेवाक्येरिन्द्रियादिभ्यः सर्वेभ्यः पुरुषस्य परत्वं शब्दवृत्या प्रतिपादाते इन्द्रियादिभ्या प्रधादीनां क्रमेण प्रतिपादनदर्शनात् । न चैकं वृणीते द्वी वृणीते बीन् वृणीते इत्यच चयाणां वरणस्य विधानेनार्थिसिद्धम् एकस्य द्वयाच्च वरणमिव पुरुषस्याव्यक्तात्परत्वप्रतिपादनेनार्थादीनामिन्द्रियादिपर-त्वमर्थसिद्धमनुवदितुं शक्यं तथेहार्थतः सिद्ध्यसंभवात् । तस्मातेन तेन साक्येनार्थीदिपरत्वमि प्रतिपादनीयमित्यतः सर्वेषां वाक्यानां पुरुषपरत्व-प्रतिपादनमाचे तात्पर्ये कल्पयितुं न युक्तमिति भावः । द्रष्टुप्रयोजने संभवतीति । यद् याम्याणां प्रथूनां प्रयसा जुहुयाद् ग्राम्यान् प्रयून् शुचा

[&]quot; अत्र बष्टम् ग्रानन्दाधिकरणं पूर्णम् ।

ऽपेयेत् यदारग्यानामारग्यान् जातंत्रयवाग्वा वा जुहुयाद्गवीधुक्रयवाग्वा वा न ग्राम्यान् पशून् हिनस्ति नारग्यान् । श्रयो खल्वाहुरनाहुतिर्वे जातंलाश्व गवीधुक्राश्चेति पयमा ऽग्निहोनं जुहोतीत्यत्र ग्राम्यारग्याशुहिं पाराहित्येन प्रगस्तयारि जातंलगवीधुक्रयवाग्वायदेपेचया ऽपक्रपेस्तत्पयो ऽत्यन्तं प्रगस्त-मिति पयःप्राणस्त्यप्रतिपादनाथं जातंलगवीधुक्रयवाग्वाविधिमहृपायंवादे। न तु विधिः । ग्रवमिन्द्रयाद्यपेचया उत्तरोत्तरोत्क्रशेवधेरव्यक्तादि परः पुरुष इति पुरुषपरत्वप्रतिपादनगव तात्प्यम् । इन्द्रियेभ्यः परा ह्यथा इत्यादिस्तु नत्तत्प-रत्वप्रतिपादक्रमहृपस्तच्छेषः पुरुषपरत्वप्रमितिहृपे दृष्टुफलायेत्वे संभवति उपा-सनाद्वारकादृष्टुग्रथेत्वायोगात् । भूमपरत्वप्रमितिहृपे दृष्टुफलायेत्वे संभवति उपा-माद्यपासनातत्फलश्रवणस्योवानेन्द्रियाद्यपासनातत्फलश्रवणस्याभावेनावान्तर-तात्प्यकल्पनाऽयोगात् । न च स्मृत्यनुसारेण तत्कल्पनं स्मृतेः सांख्यकल्पितत्व-विषयत्वेन श्रुतेरानुमानिकाधिकरणे। क्रत्यायाच्छरीरेन्द्रियादिविषयत्वेन च स्मृ-तेः श्रत्यनुसारित्वाभावात् । श्राचायैर्व्याख्यातेन प्रकारेण स्मृतेः सांख्यकल्पिताहं-क्षारादिविषयत्वाभावे ऽपि श्रुतिकल्पितरथाश्वप्रयहादिविषयत्वादिति भावः । ॥

ञ्रात्मगृहीतिरितरवदुत्तरात्॥ १६॥

880 1 ₹

महामृतसर्गापसंहारात्पाद्संगतिरित । श्रये वच्यमाये महाभूतसर्गानुपसंहारहृपे पादाये श्रनेकविषयवाक्योदाहरणपूर्वकं विद्यामेदपूर्वपचं कृत्वा विद्याग्यसमयेनेन गुणापसंहारस्यानिहृपणात्पादसंगतिनीस्तीति
यो मन्यते तत्पितीषाये वर्णकान्तरमारभतहत्यये: । यद्यपि निर्गुणविद्यासु
गुणापसंहारमाचं विचाय्ये न तु विद्येक्यमित्युक्तमाचार्ये: पादारम्भे श्रानन्दादयः इत्यथिकरणे च निर्गुणविद्योक्यमनाचित्येव गुणापसंहारमाचं चिन्तितं
तथापि नैतिसमन्निधकरणे सगुणविद्याधिकरणेष्विवानेकविषयवाक्यस्पर्थोऽस्ति । किं प्रथमाध्यायधिकरणेष्विव कस्य विद्विषयवाक्यस्यायविद्योषारगमाचं तत्प्रथमाध्यायएव सङ्गतिमिति यो मन्यते तत्पित्तोषाये वर्णकान्तरारम्भ इति तात्पर्यम् । विद्येक्यगुणोपसंहाराऽनिहृपणादित्यस्य सर्वामेदाधिकरणादिष्विव विद्येक्यस्यानन्दाधिकरणइवानेकविषयवाक्योदाहरणपूर्वे-

^{*} व्याः सूः त्रः ९ पाः ४ सूः ९। 🛨 त्रत्र स्वतमम् त्राध्यानाधिकरणं पूर्णम् ।

[‡] व्याः सूत्रमः ३ पाः ३ सूः ९०। § व्याः सूः ऋः ३ पाः ३ सूः ९०।

8१२। २ कगुणे।पर्धहारस्य चानिहृपणादित्यर्थः । मित्रार्थीपक्रमेणेति । त्रात्मा-नात्मसु सतासामान्ययोगेन प्रयुज्यमानः सच्छदः सतासामान्यस्यैव वाचकः। विशेष्यं नामिधा मच्छेत् चीणबुद्धिविशेषणे इति न्यायात् । सन् घट इत्याः दिप्रयोगे तु घटशब्दादिसामानाधिकरण्यादुर्मिपर्यन्तता । न च सदेव ह्याम्येदमित्यव धर्मिपर्यन्तपद्रसामानाधिकरस्यम्,स्त । ततः सतापक्रमाच्छा-न्दोभ्यवास्यमात्मे।पत्रमाद्वास्याद्विचार्थमिति विद्यामेद इति पूर्वपचयती-त्यर्थः । ननु च्छान्देग्यइति । श्रस्तिधाताः सत्तावाचिनः शतृप्रत्ययान्तः सन्सब्दः सताविशिष्टर्धामेवाची सता त्वात्ममाचवृतिः प्रपञ्चस्यानिवै।च्यत्वा-दित्याकाशशब्दवदेकव्यक्तिवचन इत्युपक्रमस्यासंदिग्धार्थत्वं शस्यमुपपाद-यितुम् । ऋते। यथा वासः परिधनदत्यच वासः शब्दस्य त्वविशेषे प्रयव-सानमिति संदिग्धार्थस्य चौमे पर्यवसानार्थम् एतद्वे सर्वदेवत्यं वासा यत् चौममित्युपपंहारापेचा एवमिह सच्छन्दस्यात्मनि पर्यवसानाय ने।एसंहाराः पेदा ऽस्तीति शङ्कार्थः । अभ्युपेत्यापि सच्छब्दस्य सामान्यवाचि-त्विमिति । श्रात्माऽनात्मसाधाराय्येन सताविशिष्टमाचवाचित्विमिह सामा-न्यवाचित्वं न तु सनासामान्यगाचित्वम् । त्रात्मह्वपविशेषपर्यवसानामिवि-राधापतेः । श्रुतिद्वये ऽपि विद्यैक्यइति । ननु सक्तनशाखास्वपि निर्गुण-विद्येक्यमस्ति तस्मिन् सत्यप्यानन्दवल्लीप्रतदेनाख्यायिकाकठवल्लीमुग्डकादि-षूपक्रमभेदो दृश्यते तथेहाय्युपपदाते कीच विशिष्योपक्रमभेदफलप्रश्नः डचाते । सत्यपि सकलशाखाम्नातनिर्गुणविद्येश्ये विशिष्य च्छान्द्रोग्यवाजः सनेयक्योनिर्गुगविद्येक्यमुच्यमानमत्यन्तसादृश्यविशेषकृतं भवितुमहेति तथा-त्यन्तसदृशयोहपक्रमभेदस्य किं फलमिति प्रश्न: । अनयोरीपसंहारिक-प्रत्यग्ब्रह्मेक्यवेदने* षरस्परेापकारप्रयुक्तमिह विद्येक्यं विविततं परस्परे।प॰ कारश्व सदात्मे।पक्रमभेदेनैव भवति नान्यथेत्युपक्रमभेदफलं न्यायसंग्रहे ४१३। ३ विवरणाचार्यस्तां दर्शयति तद्यथेति । त्रयमर्थः । तन्त्रमसीत्यच तत्त्व-म्पदयोः श्रेति सामानाधिकरतये वाच्यार्थयोः सर्वज्ञत्विकिञ्चिन्ज्वत्वादिवि-रुद्धधर्माक्रान्तये।रभेदायागेनानुपपत्ते पति तत्परिहाथै तत्वंप्रदयोविरुद्धविः शेषणांशत्य।गेन ब्रह्मजीवस्वस्त्रपमाचे लचणा ऽऽस्रीयते तथा लच्यमाणाविष

^{*} ब्रह्मीकाभेदेनेति = पुः पा।

ब्रह्मजीवै। भेदेनैव व्रतीयेयातां लक्त्यकाट्य ननुप्रविष्टस्यापि हि भेदस्य तन्व-मिति नामभेदप्रयुक्ता प्रतीतिरनिवाया । श्रयेष ज्योतिरित्यादी नामभेदस्या-श्रेमेदप्रत्यायकतायाः क्रुप्रत्वात् । ततश्च मेदकप्रतीतावय्यघटमानस्यामेदस्य माचाह्नेद्रप्रतीत्या ऽत्यन्तमघटना स्यात् । त्रता भेदकवि रोषणयोखि भेदः स्यापि त्यागार्थे लच्चणान्तरमाश्रयणीयं तदीषु लचणान्तरं तन्वंपद्यारेवेति युनरिव नामभेदत्यागाय लजणान्तरमाश्रयणीयमित्यनवस्था भवेतत्परिहा-राय लक्षमाणतादशायामेव प्रत्यग्ब्रह्मैश्यब्रह्मप्रतीतिदशायामेव शाब्दस्या-भेदस्य प्रतीतेनीसभेदन्यायलभ्यो भेदो ने।न्मज्जति । ऋतस्तन्वंपदार्थै। जीव-ब्रह्मपर्यन्ते। लचगोया तत्पर्यन्तलचगा च लचगोयार्थप्रसिद्धिमपेचते । तच छ।न्दोग्यवाक्यं तत्त्वमसीत्यतः प्राक्तनं तदये त्वमधेपर्यन्तमानयति सर्ववि-ज्ञानप्रतिज्ञानादिना वाजसनेयिवाक्यं स वा एष महानज स्नात्मेत्यतः प्राक्तनं त्वमयं तद्येपर्यन्तमानयति त्रत कथ्वे विमाचाय ब्रहीति प्रश्नानरतानि-ङ्गेन । त्रतः परस्परोपकारहृषप्रयोजनैक्याद् विद्येश्वमपि । यदापि तत्यदार्थे -विशेषगांशत्यागाय कान्दाग्ये वाचारम्भगादिश्वनिरूपकरोति त्वंपदार्थे विशे-ष्रयांशात्यागाय वाज्यनेयके अनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्यस — ङ्गत्वयुनिस्पकरोतीत्येवमपि परस्परे।पकारे। वतुं श्रत्यः तथापि स्पष्टत्वात्तमंशं विहाय तन्वंपदार्थयोर्जीवब्रह्मपर्यन्तताप्रतिपादनेन परस्परापकारकत्वमुक्तम्। यतेनेयमपि शङ्का निरस्ता रहापि वर्णके विद्येश्यं गुणापमंहारे। वा न निर्द्धार्यते किं त्वेतरेयकवाक्यपूर्ववर्णकड्व छान्दे।ग्यवाक्यस्य प्रतिपाद्यविशेष्यमाचं निर्द्धा-र्यते विद्यैक्यचिन्तापर्यवसानकल्पनाय परं वाजसनेयिवाक्यमपि उदाहृतम्। इदं पूर्ववर्णके उप्युदाहृत्य किमैतरेयकवाक्ययार्विद्याभेद उत विद्येक्यमिति शुक्यं विचार्यितुमिति । क चि इसणा जीवै स्वप्रतिपादनमित्यच जीवस्य ब्रह्मेश्यप्रतिपादन चे।पसंहारार्थम्पकर्तुर्ब्रह्मग्री जीवपर्यन्तताया जीवस्य ब्रह्म-पर्यन्ततायाश्चोपक्रमे प्रतिपादनस्य छान्द्राग्यवाज्ञसनेयक्योरेव सद्वावात्पर्व-पचे सत्तासामान्यविषयतया हान्द्रोाग्यवाजसनेयक्योरिव जीवविशेषजीवसा-मान्यविषयतया येतरेयकवाज्ञमनेयकयार्विद्याभेदस्योपषाद्वियतुमशक्यत्वाच्च जीवविशेषे जीवसामान्यविषयतया ववनानामुपसंहारेण विद्येन्योपपते: ।

^{*} स्व चिविति नास्ति २ पुः। ै । श्रवाष्ट्रमम् ग्रात्मगृहीत्यधिकर्णं पूर्णम्।

कार्याख्यानादपूर्वम् ॥ १६ ॥

ज्यातिष्टोमाङ्गत्वेनार्थवानिति । मीमां सक्तेर्दर्शपूर्णमास्याना नृतं वदेदिति श्रयते स निषेधः क्रत्वर्थः तेन ये। दर्शपूर्णमासावनुतिष्ठन् तदुपयोगिद्रव्यसंपादनार्थितया पुरुषाय निषेधमुल्लङ्काऽनृतं बदेतस्य क्षेत्रलं पुरुषार्थनिषेथातिलङ्कनेन प्रत्यवायमाचं किं त् ऋत्वर्थनिषेथातिक्रमेण क्रतोर्वेग्यमपीति निर्यातं कर्षधिकरग्रे । इह नादाहरग्रमादरग्रीयमिति न्यायमनुखत्य दर्शपूर्णमामपदस्याने च्यातिष्ट्रामपदं निवेशितम् । च्योति-ष्ट्रोमप्रकरणे ऽपि वा नानृतं बदेदिति वाक्यान्तरं दृष्ट्रा न्यायसाम्येन तिन्न-वेशितम् । श्राचमनपर्यालोचनयेति । श्रनग्नतावादः सादादाचमनस्य न स्तुतिभविति किं त्वाचमनीयानामगां वासस्वकीर्तनात्तद्द्वारेगाचमनस्तुते। पर्यवसानं वाच्यं तदपि न संभवत्याचमनस्याविधेयत्वादित्यर्थः । स्रनग्नः तासंकल्पपर्या लोचनयेति । जनानतासंकल्या विधेयः । सर्वाङ्गदृष्टिविः धिसाहचर्यात् । लम्भुको ह वासे। भवत्यनग्ना भवतीति छान्दाग्ये फलार्थ-वादश्रवणात् । छान्देाग्यकाणवशाखयावीसस्त्रकीर्तनवदाचमनविधेरश्रवणेन त्रच वासस्त्रकोर्तनएव विधिपर्यवसानस्य वक्तव्यत्वाच्च । त्रता विधे-येनाविधेयस्य स्तुतिकल्पनमत्यन्तमन्याय्यमित्यर्थः । प्राण्विचाङ्गत्वेन यदाचमनं विधीयतइति । प्राणद्वारा सर्वकर्मसाधारणाङ्गात् स्मातीचम-नादन्यत्प्राणविद्यायाम् त्रमाधारगाङ्गमाचमनान्तरं विधेयमभ्यूपगम्यते स्माती-. त्सर्वसाधारणात्प्राणाग्निहोबादन्यदेव वैश्वानरिवद्याङ्गं प्राणाग्निहोचं तदा नैमितिकेन नित्यस्य प्रमङ्गिसद्भकार्यतया ऽऽवृत्यनपेचणादेकमेवाचमनम्-भयकार्यार्थमङ्गीकरणीयमिति कल्पनागै।रवं भवेन्न सिद्धान्तइत्यर्थः †॥

898 1 38

समान एवं चामेदात्॥ १९॥

ऋग्वेदे यजुर्वेदे चेति । सामवेदे यजुर्वेदे च ज्यातिष्टामः मूय-तहित पूर्वमीमांसकैर्लिखतम् । इह तूदाहरणानास्यया ऋग्वेदे इत्युक्तम् । भ्रष्य वा सामवेदएव ये।निग्रन्थोत्तराग्रन्थरूपसामाधारऋक्संहितावन्वादुग्वे-द्रथब्देनातः । सिद्धान्तितं भेद्लच्चण्ड्ति । घेषलच्यो इति लेखनीय

[•] व्याः सूर्यः २ षार् ३ सूर् ३३ । ां भन्न नवमम् कार्यास्यानाधिकर्यां पूर्णम् ।

प्रमादाल्लेखकैमेंदलचणे इति लिखितम्। तृतीयाध्याये हि वाक्यपादे भूय-स्त्वेनामययुती*त्यधिकरगं प्रयोगविधिस्तच निर्गीत इति उद्वेक्टेचा क्रियते उपांगु यजुषा उद्वै: साम्बेति वाक्यै: ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदैरनुष्ठाप्यानां कर्मगां क्रमादुचैष्ट्रोपांशुत्वाचैष्टुरूपाः स्वरा विहिताः । यस्मिन्वेदे यस्य कर्मणः प्रयोगविधिस्तत्कर्म तेन वेदेनानुष्ठाप्यते प्रयोगविधिमूलत्वादनुष्ठा-नस्य । ऋतो च्यातिष्टोमस्य सामवेदे यजुर्वेदे च साधिकारविधिश्रवणे सति तस्मिन् कतरस्य वेदस्य स्वरा भवतीत्याकाङ्घायां यजुवैदस्य स्वर इति निर्णेतुमङ्गभूयस्त्वेन यजुर्वेदप्रयागविधिस्तिसिन्नधिक्ररणे निर्णोत इत्यर्थ: । प्रकृते विद्येक्याऽधिद्धिदूषणं प्रत्याच्छे यतात्रापीति । ऋङ्गभूयस्त्वं प्रयोगः विधेरेव निर्णायकमुत्पतिविधिनिर्णयानुपयागीति दूषणमनूदा निराकरोति न चाङ्गभूयस्त्वमिति । अङ्गमाकल्यधीमापेचं प्रयोगविधिकल्पनं यवाङ्ग-बाहुल्यं तचाङ्गधाकल्यधीभेवति न तु यचाङ्गानामल्पीयस्त्वं तचापि । न हि महति तरुषगडे कित्रियतरुहानेपि वनवुद्धिवत् पञ्चषट्तरुवृन्दे वनवुद्धि-भेवति । त्रता ऽङ्गभूयस्त्वं प्रयागविधेरेव नियामकं नेात्पतिविधेरिति प्रकृता-नुषयोगवाद्यभिष्रायः । प्रयोगाऽविनाभूतत्वेनेति । प्रयोगविधिव्याप्यस्य प्रयोगविधिसमव्याप्रम् उत्पतिविधिं प्रत्यपि व्याप्यत्वमस्तीति भावः ‡॥

संबन्धादेवमन्यत्रापि॥ २०॥

४१६ । ११

विषयणुद्धार्ये विद्योपक्रमयुतिमुदाहृत्य विष्येगिति आप इति ।
श्राणे ऽव पञ्चाग्निवद्यायामापः पुरुषवचसे भवन्तीत्यवेहामुव च संचरतां जीवानामिव प्रथमजीवस्य हिरण्यगर्भस्य शरीरारम्भार्था भूतान्तरसिहता श्राण उच्यन्ते सूच्नावस्थास्ता एव इदं सर्वे व्याकृतं समस्तं जगद्धिरण्य-गर्भशरीरहृपम् अये नामहृपव्याकरणात्यागासुः नान्यद्विकारजातमासी-दित्यर्थः । तावेतावादित्याचिपुरुषावन्योत्यस्मिन्नादित्यपुरुषे ऽिचपुरुषश्चा-दित्यपुरुषे परस्परीपकारं कुर्वन्ते। प्रतिष्ठिते। एव श्रादित्यपुरुषः श्रास्मन्न-चिपुरुषे परस्परीपकारं कुर्वन्ते। प्रतिष्ठिते। एव श्रादित्यपुरुषः श्रास्मन्न-चिपुरुषे रिक्सिः प्रकाशदानेनानुग्रहं कुर्वन्यतिष्ठितः । श्राचिपुरुषः श्रमुष्मि-न्नादित्यपुरुषे प्राग्रेरनुग्रहं कुर्वन् प्रतिष्ठितः । प्राग्रेरादित्यपुरुषः श्रमुष्मि-न्नादित्यपुरुषे प्राग्रेरनुग्रहं कुर्वन् प्रतिष्ठितः । प्राग्रेरादित्यपुरुषस्यानुग्रहस्तस्य

^{*} किं सूर श्र[ु] ३ पार ३ सूर १०।

[†] यन्दे दित २ पुः पाः खगडे दित् १ पुः पाः ।

[!] अत्र दगमं समानाधिकरणं पूर्णम्।

प्राणसून्मक्रपत्वात्रयात्वं च तस्य पुरुषविद्याधिकरणे श्रवितमधीत्यादिमन्त्र-चयव्याख्यानेन स्पष्टीकरिष्यते * ॥

39 1 68

संभृतिद्युव्याययि चातः॥ २३॥

नन्वाचिदैविकविभूतिब्रह्मप्रत्यभिद्यानमाचमन्यवाम्नातगुणानामुपर्ध-हारे न हेतुः वैश्वानरषेडिशकलादिविद्याम्नातगुणानामपि परस्परे।पर्धहारप्रस-ङ्गादित्याशङ्क्य तदुभग्रपत्यभिद्यानमाचमिह ने।पर्धहारहेतुन्वेन विवितितं कि तु विध्ययवणेन खिलग्रन्थपदितत्वेन चे।पष्टब्धं तदित्याह यद्यपीत्यादिना।।

४१६ । १२ पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्बानात् ॥ २४॥

षुस्वे। वाव यज्ञं इत्यादिखण्डद्वये विषयविवेकार्थमपेचितानि तच तच स्थित।नि वाक्यानि संसलस्य दर्शयित पुरुषा वावेति । ता अस्य दीवेति मुतिपाठः सा ऽस्य दोचेति देखागब्दमामानाधिकरगयेनाथानुसारादेकवचनेन पठितम् । यद्धसित जचिति यनमैथुनं चरित स्तुतशस्त्रेरेव तदेतीति श्रुतिर-र्थते। उनूदिता । शब्दवत्त्वसामान्यादिति धंपतिहेतुभूतं साम्यं श्रुतिवि-विचितं स्वयं विवृतम् । तं चेदेति मन् वयि कि चिदुपतपेदिति श्रुतिपाठः । किं चिदित्येतद्याख्यानायं व्याध्यादीत्युक्तम् । ऋचितमसीत्यादितनमन्त्रचये पुरुषयचे मवनदेवतात्वेन प्रस्तुनानां प्राणानां सूरमहृपमाधिदैविकमादित्यान त्मक्रमचित्रमित्यादिशब्दैह्चते । ऋचितमचीणमचतं वा ऋचुतं स्वस्वहः पादप्रच्युतं प्राग्यसंशितं प्राग्यरूपं च सूरमतत्वात्सम्यक् तंनूकृतं च प्राग्यसूचम-हृपं साविचं तन्वमित्येतत्त्वेते ऋचै। भवतः श्रादित्यवस्य‡रेतस उद्वयं तम-सस्परीत्यादिना सावित्रमन्त्रद्वयस्य यजुस्त्रयप्रतिपादिनार्थप्रतिपादकत्वेनावत-तरणात्स्पष्टम् । ननु कान्दाग्यवृहदारग्यकगताद्गीयविद्यये। बंहुतरप्रत्यभिचाने सत्यप्यल्पवेहृप्यमाचेण भेदो ऽन्ययात्वं शब्दादित्यधिकरणे∮ व्युत्पादित: कथ-मिह छान्दाग्यतैतिरीयकाम्बातपुरुषविद्ययार्बेहुतरवैहृप्ये जायति मरगावभृय-त्वसाम्यमाचेणामेदः शङ्काते । उचाते । उद्गीयविद्ययार्बहुतरप्रत्यभिचाने सत्यप्युपक्रमभेदात्प्रधाने।पास्यभेदाच्च भेद उत्तः । इह तु छान्दे।ग्ये यत्पस्पस्य

^{*} अत्र सकादर्थ संबन्धाधिकरणं पूर्णम्। † अत्र द्वादर्थ संभृत्यधिकरणं पूर्णम्। ‡ अर्गादतप्रक्तस्येति ९ पुः याः। ई कैः असूः ३ पाः ३ सूः ६।

यच्चत्वं प्रधानमुपास्यमुपक्रान्तं तदेव तैतिरीयके ऽपि विदुषा यच्चस्यैति सामानाधिकरण्याद्विद्वत्संबन्धिनः कस्य चिद्यचस्य तचाऽसंपादितत्वाच्च यच्चावयवा

गव हि तच संपादिताः । जतः प्रधानसाद्ध्य्यादवयवासाद्ध्य्यमृष्ठाकपालत्वद्वादश्कपालत्वादिवद्विकल्पयिष्यते । एकमिप प्रधानमेव ह्यनुरोध्यं न बहवी

ऽपि गुणाः । जत गव यूपप्रकृतिमुंख्यः खादिरो यदा तनुत्वेन* तच्चणादिसंस्कारायोग्ये। लब्धः कदरस्तु स्यूलस्तद्योग्ये। लब्धः तदा बहूनां संस्कारणास्त्राणामनुग्रहाय कदरो ग्राह्य इति पूर्वपचे एकस्थापि मुख्यस्थानुग्रहाय

खादिर गव ग्राह्यः ज्यसंभवतां संस्काराणामस्तु लोप इति सिद्धान्तितं

बष्ठे इत्यधिकाशङ्क्षया ऽच पूर्वपचे इत्यमधिकाशङ्का इह त्वसाधारणगुणप्रत्यभिच्चानाद्विद्येश्यमिति पूर्वपचयतीत्यवतारिकया पुरुषयचत्वस्मुभयचाय्यद्विगिपृतिति दीकाग्रन्थेन च दर्शिता भाष्याद्यक्रप्रकारेण विदुषा यचस्येत्यच वैग्रधिकरण्यकल्पनाद् वत्त्यमाणामात्मादिषु यचमानादिकल्पनामाले।च्य तदर्थसमूहस्य यचत्वेन प्रकरणलब्धेन विद्वत्संबन्धित्वेन चानुवादसंभवाच्च जवास्पूपक्रान्तप्रधानमेद ग्रवास्तीति सिद्धान्तः । ॥

वेधाद्यर्थभेदात्॥ २५॥

४२१ । १

सन्निधित्तत्त्व्यमिति । यद्यपीतिकर्तव्यताकाङ्कालक्षयं चतुर्थे एतिः धिस्तु स्थानप्रमाणावान्तरभेदरूपं पञ्चमं प्रमाणं तथापि मीमांसकै: स्थानप्रमाणाविशेषरूपो ऽपि सिन्निधिस्तव तव प्रकरणण्यत्येनापि व्यविष्ट्यते । गोदीहनस्य प्रकरणात्र्ययनरूपात्र्ययलाभ इत्यादिस्थलेषु तद्यवहारमनुरुध्याव संनिधाविष प्रकरणत्वेक्तिरितिकर्तव्यताकाङ्का पारिभाषिकं प्रकरणं सिन्निधिलें।किकप्रकरणमिति विशेषः । काम्येष्टिनाम् इत्याः विशेषसंवन्धा दृष्ट इत्यन्तस्यायमर्थः । काम्येष्टिकाण्डे प्रमथमिन्द्राग्निदेवत्यं काम्येष्टिद्वयं तते। वैश्वानरदेवत्यं काम्येष्टिद्वयमित्येवंप्रकारेण काम्येष्ट्यः पठिताः । काम्ययाः च्यानुवाक्याकाण्डे प्रथमिन्द्राग्निदेवत्यं याच्यानुवाक्यायुगलद्वयं तते। वैश्वानरदेवत्यंकप्रमेण याच्यानुवाक्यामन्द्राः समास्नाताः । तव काम्येष्टिकान्यस्य याच्यानुवाक्याकाण्डस्य च समाख्यायाः संज्ञाया एकत्वात्सामान्यतः याच्यानुवाक्याकाण्डस्य च समाख्यायाः संज्ञाया एकत्वात्सामान्यतः

^{*} खादिरापादानस्वेनेति पु पा ।

[ा] अत्र प्रयोदशं पुरुषविद्याधिव रणं पूर्णम्।

संबन्धः सिध्यति सतासामिष्टीनामेते याच्यानुवाक्यामन्त्रा इति विशेषस्तु संबन्धः प्रथमाया इष्टेः प्रथमं याच्यानुवाक्यायुगलं द्वितीयाया द्वितीयमित्येवं- हृपः सिद्धिवशादिति । ऋषेष्टिकाग्रहस्य मन्त्रकाग्रहस्य च संज्ञेक्येनेष्टीनां मन्त्रागां च संबन्धो मीमांसकैनीकः किं तु मन्त्रकाग्रहस्य काम्ययाच्यानुः वाक्याकाग्रहमिति संज्ञया । आचार्येस्तु न्यायसंग्रहोक्तं समाख्यालवग्रमनुः स्थ्य संज्ञेक्यमुक्तम् । न्यायसंग्रहे हि समाख्या ग्रीगिकी संज्ञेति मीमांसकी- क्तप्रकारं विहाय प्रकारान्तरमाग्रितम् । प्रदेशद्वयाम्नातयोः संबन्धिनिमत्तं संज्ञेक्यं सौमाख्या यद्यातिमुक्तिहोमानामिग्वयेत्तं नयतु प्रजानिन्तत्यादमन्त्रागां च संबन्धनिमित्तमाध्ययेवसंज्ञेक्यमिति । ऋषापीष्टिमन्त्रकाग्रहयोः काम्येष्टि- काग्रहमित्येवमादिहृषेका संज्ञा ऽस्तीत्याचार्याग्रामिमप्रायः । इह सिद्धिव-शाद्विशेषसंबन्धनाभ इति यदुक्तं तथात्यस्ति मीमांसकानां विमतिः ।

ते खल्वित्यमाहु:। द्विविधस्तावदाम्बानसादेश्यहुप: क्रम: यथासंख्या-म्नानं सिन्ध्याम्नानं चेति। तचादोने।दाहुतानामिष्टिमन्त्राणां संबन्धः न तु सिन् धिना भिन्नप्रदेशाम्नातानां तेषां परस्परमिन्नध्यभावात् । मिन्नधिना तु शुन्धध्वं दैव्यायेति मन्त्रस्य सान्नाय्यपाचगुन्धने । विनियोग इत्यते। उच सन्निधिशब्दः सादेश्यमाचे यथासंख्यहुपविशेषपर्यवसायी व्याख्येय: । नन् प्रकृते मन्त्रकर्मणां विद्यामित्रध्याम्नानमस्त्यते। दाष्ट्रीन्तिक्रसाह्नध्यायान्यते। लब्धमामान्यमंबन्धानां विशेषसंबन्धमाचे सिव्धिः प्रभवति यया प्रकरणापादितक्रत्वपूर्वसंबन्धानां शुन्धनमन्त्रादीनां सान्नाय्यपाचादिसंबन्धे । न च इह सामान्यसंबन्धापादकं प्रकरणमस्यतः सन्निधिरव न प्रभवतीत्युदाहर्तव्यम् । सत्यमित्यमुदाहरणं न हि यथा दर्शपूर्णमामाबारभ्येत्यादिटीकायन्येन प्रकृते प्रकरणाऽभावं प्रदर्शयता ऽवगन्तुं शक्यमिति तद्विहाय प्रकरणान्तरेण दाष्ट्रीन्तिकसाह्ययार्थ-माचाँग्रेययां संख्यादाहरणं कृतम् । दाष्ट्रान्तिके हि तदुवनिषदास्त्रातिके ह्रीमिविद्याभिर्मन्त्रकर्मणां सामान्यसंबन्धापादकं किं विद्यास्तीति प्रतिषिपाद-यिषितम् । तत्र यथा काम्ययाच्यानुवाक्यानां बह्वीभिरिष्टिभः सामान्य-संबन्धापादकं समाख्येकामस्तीति व्यतिरेकदृष्टान्तोदाहरग्रम् । ऋङ्गप्रधान-यारित्यादिपूर्वपचोपपादकग्रन्यस्यायमाशयः । यथा सांग्रहग्यादिविकृतीनां

^{, *} साबाय्यते।शुन्धने द्वति १ पुः प्राः ।

क्षिप्रोपकारप्राकृताङ्गसंबन्धेन प्रथमभाविना नैराकाङ्द्ये ऽप्यामनहोमादीनां प्रधानान्वयसाकाङ्गाणां सञ्जिधानतस्तासामाकाङ्गात्यापनादमित्र्यक्तेन प्रकर्णेन सामान्यसंबन्धसिद्धौ सञ्जिधानादामनहोमादीनां यथासामध्येमारादुपकारकन्वादिना उन्वयस्त्रथेहापीति ।

भाष्णगतस्थामांत्रत्यस्य व्याख्यानं सन्तिधिरिति। स्रक्षसादि- ४३१। २४ त्यस्य व्याख्यानं विना विषयेणेति। विना फलेनेत्यर्थः। स्र्यंवत्वे संभव्यति स्रुपक्षान्तम्। स्राश्रयितुम्। स्रङ्गीकर्तम्। न युक्तं इति। न होत्यवत्यस्य नर्जा युक्तं इत्यवान्वये। द्र्यंतः। स्रनेन सन्निथः साफ- व्यासंभवे निष्प्रलो ऽसावङ्गीकर्त् न युक्तं इति भाष्यार्थं उत्तो भवति। ननु तदर्थं यास्त्रादिहेतुभिर्मन्त्राणामर्थेविववा नास्तीति पूर्वपचे प्राप्ते स्रविधि- प्रस्ति स्त्रे इति सूचे इवि लोके इव मन्त्रेव्विप वाक्यार्थेविवचा ऽस्ती-त्ये वाक्यार्थं इति सूचे इवि लोके इव मन्त्रेव्विप वाक्यार्थविवचा ऽस्ती-त्ये नावन्मावमुच्यते न तु तेषां प्रयोगसमवेतार्थंप्रकार्यनेनेपप्रयोगः। स्रतः प्रयोगसमवेतार्थेत्र्यादिदीका ऽनुपपचेत्र्याशङ्क्य तात्पर्यगत्या तावत्पर्यन्तः प्रयोगसमवेतार्थेत्रत्यादिदीका उनुपपचेत्र्यारिति। तत्सर्वार्थमविशेषादिति। स्त्रास्य विधानानां प्रकृतिगामित्विमिति। तत्सर्वार्थमविशेषादिति। स्त्रास्य विधानानां प्रकृतिगामित्विमिति। तत्सर्वार्थमविशेषादित्येवस्य सर्वार्थमप्रकरणस्य षष्ठपादादिमस्य पूर्वपवसूर्व सर्वार्थमप्रकरणाः द्रित्येवस्यं पीष्प्रप्रिपाधिकः पर्याद्रित्येवस्य पूर्वपवसूर्वम्। तत्सर्वार्थमविशेषादित्येवस्यं तु शेषलवये तृतीयपादे पीष्प्रप्रप्रपाधिकः रणस्य पूर्वपचसूर्वम्।

न प्रचर्ग्यसंबन्धिविशेषहेतुत्विमिति ज्ञापनार्थं इति । यदाष्
प्रवर्ग्यस्य ज्योतिष्टोमधंबन्धहृषे संबन्धिविशेषे हेतुत्वमुपमदामस्त्युपमदुप-स्थापिते एव ज्योतिष्टोमे प्रवर्ग्यसंबन्धस्य बीधनीयत्वात् तथापि न तद-भावज्ञापनार्थेत्विमहोपमदा महत्यस्योत्तं किं तु प्रवर्ग्योपमदीरङ्गाङ्गिभावहृप-संबन्धविशेषाभावज्ञापनार्थेत्वम् । तेन पुरस्तादुपमदामित्यादिवाक्यं प्रवर्ग्य-स्योपमदुपस्थापितक्रत्वङ्गत्वबे।धकं मा भूदुपमदङ्गत्वबे।धकमस्तु राजन्य-वाविष्ठानां नाराशंसे द्वितीयः प्रयाज इत्यवेत्रोपमदामित्यव षष्ट्याः श्रेषि-विषयत्वे।पपतेरिति शङ्का पुरस्ताच्छब्दमन्वाद्विग्ये।गलद्वेणे षष्ट्रीयं न शेषि-

^{*} जैं∙ सू॰ श्र∗ ९ पा॰ च सू॰ ४०।

[†] जै∙ म्रुं∗ ग्र∙ ३ पा∙ ६ मूं∙ ०

विषया। न च प्राप्रानुवांदेन पूर्वकालत्वे विधीयमाने उङ्गाङ्गिभावा इपि विधातुं शक्यते वाक्यभेदप्रसङ्गादिति परिहारसूचनेन व्यावित् । एवमेव चतुर्थाः ध्याये पुरस्तादुवसदां सै।म्येन प्रचरन्तीति राजपूर्यान्तर्गतवाक्ये सै।म्यं व-४२३ । ३ रूपसदोरङ्गाङ्गिभावे। विधीयतद्ति पूर्वपद्यो निरस्तः । इतरपदानामपि समवेतार्थत्वमिति । यद्यपि निर्वापमन्त्रे सविचादिपदान्यसमवेतार्थान्येव असमवेतानामपि समवेतित्रिशेषणतया अभिधानमदृष्टार्थम् । ऋत एवं तेषां प्रकृतिष्वनूह इति नवमाध्याये निर्णोतं तथापि तद्विशिष्टाग्न्यर्थनिर्वापह्रपः समवेतार्थेपर्यवसानाभिप्रायेग समवेतार्थत्वमुलम् । तदिह सन्निधिरिति । यदि सिर्ज्ञिष्यवास्यगम्यमधे प्रत्याख्यातुं प्रवर्तेत तहीव बलवता वाक्येन सितिथिबीध्येत न त्वेवमस्तीत्यर्थै: । ननु विरोधाभावेन प्रबलप्रमागालभ्य-विनियागद्वयाभ्युपगमे बनाबनाधिकरगविरेधः स्यात् श्रुत्यादिभिः क्षं चन विनियुक्तानां विरोधाभावेन लिङ्गादिभिरन्यनापि विनियोगोपपतेरित्याशङ्क्याह तद्नेनेति । तचाप्येत्रमेवास्त्वित पूर्वपत्यागय इति भावः । ह्वाः समान-कर्तृत्वमवगम्यतइत्यच ह्वा इत्यस्यार्थमाह क्रवाप्रत्यस्येति । ह्वाप्रत्यया-दिति व्याख्यातव्यं षष्ट्रयन्तपाठस्तु लेखकप्रमादागनः । धातुसंबन्धे प्रत्यया इति सूचाद्धातुषंबन्धइत्यस्थानुबृन्या इनुबृतस्य द्वयोधीत्वर्थयोर्गुगाप्रधान-भावेन संबन्धा ऽर्ध इत्येतदुषपादयति धातुसंबन्धइत्युक्तइत्यादिना । धातोरित्येकत्वाधिकारादिति हेतु: धातुद्वयात्यत्ययविध्यनुपपती । धातु-द्वयापनौ त्वेकस्य धाताः स्वेनैव संबन्धायागा हेतुः । समानकर्तृकत्वा-देकप्रयोगतामिति । यदापि शरदि वाजपेयानन्तरं बृहस्पतिसवस्य कालः वसन्ते कर्तव्य इति चतुर्थेएव निर्णोतत्वाद् बृहस्पतिसवस्य तह्यतिरिक्तसक-लाङ्गसहितवाचपेयप्रयोगात् पृथक् प्रयोगा ऽस्ति तथापि स्वाराज्यफलायि-राजसूयकर्चे अव्यवस्तं महाप्रये। गैश्यमस्तीत्याशयः । प्रयोगो भिद्येतेति । महाप्रयागैक्यमपि न भवेदित्यर्थः ।

२४ । ११ न चैकमेव वाक्यं दूरस्थं कर्म सन्निधापयति अन्याङ्गत्वेन च वि-धत्तइति युज्यतइति । सन्निधिना विपरिवृत्तौ सत्यां वाक्यं विधिमाचपरं दृष्टम् । यथा ऽग्निहोचविधिसन्निधी श्रूयमाणं दधा जुहोतीति वाक्यम् । यच न सन्निधिस्तचैकेन वाक्येन विपरिवृत्तौ कृतायाम् अन्यद्वाक्यं विधिपरं दृष्ट्रम् यथा गवामयनादिगतैक्ये।तिर्गारायुरित्यादाहःक्रृप्रिवचनैक्ये।तिरादाभिधानामेकाहकतुह्रपाणां से।मयागानां विपरिवृत्ती कृतायां यं कामं कामयते तमेतेनाप्रोतीति वचनान्तरेण तकै कदेशतया कले विधानस् । ग्रवमेव प्रकर्णान्तराधिकरणे वार्तिककृतैतद्व वनमुदाहृत्योक्तम् ग्रकेन वचनेन पर्युपस्थाप्यापरेण कले विधीयन्तइति । न चेह तथा वाक्यद्वयमस्ति । न चेतद्वाक्यं प्रसिद्धम् वृहस्पतिसवप्रत्यभिचापनार्थमेवास्तु प्रत्यभिचापनावैयर्थ्याय तस्याङ्गत्वेन विधिः कल्प्यतामिति वाच्यम् । क्षाप्रत्ययश्ववणादकेव वाक्ये वाजपेयोत्तरकाले वृहस्पतिसवविधेरप्यङ्गीकर्त्वव्यत्वात् । तस्मात्यत्यभिचानाभिधानहृष्ट्यापारद्वयावेशे वाक्यभेदप्रसङ्गाद्विधानावश्यंभावेन प्रत्यभिचानविरहे स्ति कर्मान्तरविधानमेव प्राप्नोतीत्यर्थः । मतहयेपि संमतमिति । मतद्वयमाचार्यमतं गुक्रमतं च ।

सत्यमभ्युपेत्यवाद् इति 🖍 किमय चमाधीयते । मीमांसकानां ४२४ । १५ मुद्राभङ्ग इह चिक्रीर्षित एव कृत इति किमिति नाच्यते विधानं प्रत्यभिचानं चैकस्मिन् वाक्ये न संभवतीति मीमांसकमुद्रा हि नि-रालम्बना । प्रत्यभिज्ञानं पदकृत्यं त्रिधानं वाक्यकृत्यमित्येकस्मिन् वाक्ये तदुभयसमावेशसंभवात् । अन्यथा आज्यंभागा यजतीत्यच का गति: । न हि तचाज्यभागानां व्यतिरेकेण प्रसिद्धाज्यभागयाः प्रत्यभिच्चापकमस्ति । न च चादकः प्रत्यभिचापकः । चादकलापाङ्गीकारात्र वा तच विधायकम-न्यदस्ति । न च प्रत्यभिज्ञापनावैयर्थ्याय विधिः सल्पनीया ऽस्त्विति शङ्कितुं शक्यम् । क्रृशोपकारप्राकृताङ्गविषयप्रत्यचविधिना नैराकाङ्च्येण हि तत्र चेादकले।प इष्यते त्राज्यभागये।रिति चेद्विधि: कल्पनीय:। चे।दक एव किमिति न कल्प्येन तथात्वे हीतिकर्तव्यताकाङ्का प्रकामं परिपूर्णा भवेत् । ऋाज्यभागै। यजतीत्येतच्च यदाग्नेयाष्ट्राक्रपाले। उमावा-स्यायां भवतीतिवदनुवादमाचं स्यानस्मादाज्यभागै। यजतीत्यचैव विधानं प्रत्यभिचानं चेत्यभ्युपगन्तव्यम् । एवमेवातः भाष्यादिव्यपि । एवं तर्हि मासाग्निहे। चमपि नित्याग्निहो चान्न भिरोत । नित्याग्निहो चस्यैव नाम्ना प्रत्य-भिचापितस्य तचापि विधानसंभवादिति चेद् ऋस्तु का हानि: । संप्रति-

^{*} मतद्वयेन समानमिति २ पुः पाः।

पत्नं हि नित्याग्निहोचस्य प्रकरणान्तरे ऽप्यग्निहोचनाम्ना प्रत्यभिचानम् ।
यया यतपथ्रबास्यो दर्शपूर्णमासप्रकरणे चातुर्मास्येषु गृहमेथीयप्रकरणे च
स* यवाग्वेतां राचिमग्निहोचं जुहोतीति अश्वमेथप्रकरणे च वाग्यतस्येतां
राचिमग्निहोचं जुहोतीति । एतेन थातुना पूर्वापरीभूनतया प्रतीतस्य नाम्ना
प्रत्यभिचानं न संभवतीत्यिष शङ्का निरस्ता । कथं च थात्वर्थोपस्थापकत्वाभावातन्नामत्वमग्निहोचशब्दस्य भवेत् । ननु विहितस्य नित्याग्निहोचस्य पुनर्विधानाऽयोगेन विधियोग्यक्रमोन्तरपरत्वावश्यंभावेन तत्परतन्त्रं
नामापि कर्मान्तरपरं स्यादिति चेद् न । स्वातन्त्र्येण विहितस्यापि
नित्याग्निहोचस्य सचाङ्गत्विद्यये पुनर्विधानसंभवेनास्थातस्य भेदौदासीन्ये सित क्रांस्यभोजिन्यायादास्थातेनैव नाम्ना ऽनुवर्तनीयत्वान्नाम्नो
ऽप्रसिद्धार्थतायामास्थातपारतन्त्र्ये ऽपि प्रसिद्धार्थतायामास्थातस्येव नामपारतन्त्र्याञ्च । न चैवं सित प्रकरणान्तराधिकरणिवरोधः । तस्य धात्वथाभेदे ऽप्यथ्यायार्थभूतो भावनाभेदः स्वतन्त्रपरतन्त्रविध्यायतो ऽस्तीत्येतत्परत्वात् । उत्तं च वार्तिककृता तिस्मन्निधकरणे ।

नाम्ना धात्वर्थमानं च सन्निधाप्येत शक्तितः । भावना त्वनुषस्थानाद्विद्यमाना न वार्यते ॥ इति ।

ननु तथापि उत्तं क्रियाभिधानं तच्छुतावन्यन विधिप्रदेशः स्या†दिति सप्रमाधिकरणेन मासाग्निहोने नित्याग्निहोनधर्माणां नाम्ना ऽतिदेशं प्रति-पादयता विरोधः स्यादिति चेन्न । तस्य नित्याग्निहोनप्रकरणद्व मासाग्निहोनस्यले ऽपि देवताविधानकृताऽग्निहोननामः प्रवृत्तिनिमिनाभिव्यन्तिनेस्तित्यस्फुटशिक्तकत्वाभिप्रायत्वात् । प्रत्यवाद्गुणसंयोगात्क्रियाभिधानं स्यातदभावे ऽप्रसिद्धं स्या‡दिति तदिधकरणसूचेण तथा तदिभिप्रायस्फुटी-करणात् । तस्मात्स्वतन्त्रबृहस्पतिसवस्येव वाजपेयाङ्गतायां न किश्चिद्धिः रोध इत्येवं सद्धान्तिकः पन्नो ऽभ्यपगन्तं युक्तः । श्रत एव विवरणान्वार्येरि पुरुषार्थस्य सानामणिवृहस्पतिसवादेरिनचयनवाजपेयादिप्रकरणान्तरेषु ततत्वकर्माङ्गतया विधानं सिद्धवत्कृत्य व्यवहृतम् । तस्मादभ्यपेत्य-न्तरेषु ततत्वकर्माङ्गतया विधानं सिद्धवत्कृत्य व्यवहृतम् । तस्मादभ्यपेत्य-

^{*} स इति नास्ति ३ पु∙। † जैं सूर ऋ∙ ७ पा॰ ३ सू॰ ९। ‡ जैं• सूर ऋ॰ ३ पा॰ ३ सूर ४।

वाद (र्हात न वक्तव्यमिति चेत् सत्यम् । अभ्युपेत्यवादत्वेक्तिरेवेयम् । एतावट्टरविवेचनाऽसमधान् त्रिनेयान् प्रत्यभ्युपेत्यवाद*) रूपा । ऋष वा उङ्गं बृहस्पतिसवः क्रमान्तरमित्यभ्युपगतवतां मीमासकानां क्रमीन्तरत्वपचा ऽप्यभ्युपेत्यवादहृषे।स्तीत्येतत्परेयमभ्युपेत्यवादत्वेात्तिः । गुरुणा हि निबन्ध-नटोकायामङ्गरीवामणिबृहस्पतिसवयोः कर्मान्तरत्वं प्रसाधितवतापि विव-रगटोकायामकर्मान्तरत्वं वयबहूतम् । ग्विमदं मीमांचकदृष्टा न व्यवस्थि तमुदाहरणिमिति मत्वैवं तन्मते व्यवस्थितादाहरणं खदिरत्वादीत्युदाहर-गान्तरमन्विष्टम् ।

नाङ्गाङ्गित्ववाधकमिति । नामा प्रसिद्धये।र्दुर्शपूर्णमासयाः सामः ४२४ । १९ द्रव्येग प्रसिद्धस्य सेामयागस्य च प्रत्यभिज्ञानातेषां च साधिकारत्वेन विनिगमनाविरहात्र किंचिदङ्गन्वेनान्यविधानं शश्चिमित्यर्थः । ननु से।म-यागे विधियवणं तस्याङ्गचेन विधाने विनिगमकमस्तीति चेदचते। सामस्य दर्शपूर्णमासाङ्गन्वे तद्वि हृतीनां दीचणीयादिसामयागाङ्गेष्टीनामणि सा ऽङ्गं स्यादिति वीवणीयादिषहितस्य सामयागस्य मिद्धा दीवणीयादीनां साङ्ग-त्विषिद्धिः सामयागपहितानां दोचणीयादीनां पिद्धाः सामयागस्य साङ्गत्विष-द्धिरिति परस्पराश्रयः स्यात् । तत्परिहाराय दीचणीयादिषु से।मयागव्यति-रिक्तैष्टिकविध्यन्तरातिदेश: कल्पनीय: । दर्शपूर्णमासया: सामाङ्गत्वे विधेर्गु-गावंक्रमणं कल्पनीयमेवं प्राप्तै। किमच कल्पनीयमित्यच विनिगमनाविरहो विवित्तितः ।

ननु क चित्सामयागप्रकरणे इति । ननूत्यत्तिकालविशय§इति चतुर्थ।ध्यायाधिकरगप्रथमसूचे यदनुक्रान्तं तच दर्शपूर्णमासाङ्गसामद्रव्यक्या-गान्तरविधिरिति पूर्वपद्ये। दर्शितः स कथमुपपद्यते । ऋस्य वाक्यस्य से।मप्रकरणे श्रवणातदा हि से।माङ्गत्वेन दर्शपूर्णमासविधिरिति पूर्वपद्यः कार्यः । सत्यमिदं वाक्यं दर्शपूर्णमासप्रकरणे श्रूयतइति भाष्यकारमत्या तच भाष्यकारे। तप्रकारेण तदिधिकरणमनुक्रान्तम् इह वार्तिककारमतानुसा-रिटीकोक्तप्रकारेण से।मयागे बृहस्पतिसववैषम्यं दर्शितमिति न विरोध:।

^{* ()} एतदन्तर्गता ग्रन्था नास्ति ९ पुः। ‡ विधाने इति त्रुटितं २ पु॰।

[†] कर्मान्तरत्विमिति २ पुः पाः। § जै. मृ. अ. ४ पा. ३ सू. ३।

अनुवादे लाभमाहेति । प्रकरिणसे।माङ्गतया दर्शपूर्णमासये।विधी स्वत-न्वाधिकारये।स्तये।रङ्गतया विधानेनाचाणाततः प्राधान्यपरित्यागस्यामावा लाभः । दर्शपूर्णमासे।त्तरकाले से।मयागिवधी विधिः समानपदे।णात्तविषये। भवति पचान्तरे तु गुणसंक्रान्ते। विधिः स्यादिति तत्प्रसत्त्यभावे। ऽपि लाभ इति द्रष्ट्रव्यम् । अत एव विनियुक्तविनियोगे ऽपि क्रत्वर्थतया विनियुक्तस्य खादिरादेः पुरुषार्थतया विनियोगान्तरं विनियुक्तविनियोगः ।

४२६ । १६

स्वार्थवाघे श्रुतेः शीघप्रवृत्ते शिति । वाक्यसमपंगीयविशेषणविशेष्यभावोपेतस्य श्रीतस्य शेषशेषिभावस्य लैङ्गिकविनियोगेन विरोधः
समर्थनीय इति श्रुतिवाक्ययोपन्योग्न्यापेचयोलिङ्गेन विरोधे ऽपि श्रुतेः स्वप्रमेये वाक्यतः श्रीष्रं प्रवृत्तेः श्रुतिलिङ्गिवरे।धे एवेदमुदाहरणमित्यर्थः ।
तया श्रीतस्य शेषशेषिभावस्य प्रतियोगिविशेषसभपेणेन गुणभूतं वाक्यं प्रधानेन च विरोधो लवणीय इत्यतो ऽपि श्रुतिलङ्गिवरोधे एवेदमुदाहरणम् ।
श्रिष च लिङ्गे बलीयसि यस्य बाधः तिल्लङ्गेन विरुध्यते न चाच बलीयसि
वाक्यं बाध्यते किं तु गार्हणत्यश्रुतिरिन्द्रे लच्चण्या द्वितीयाश्रुतिवी सामीय्ये
लच्चण्या बाध्यते वाक्यं तु एदचयसमिन्याहाररूपं तथैवावितष्ठते तर्हिः
लिङ्गवाक्यविरोधोदाहरणे लिङ्गवाध्यस्य स्थानं ते इत्यादेः सुमनस्यमान
इत्यन्तस्य वाक्यस्य लिङ्गेन बाधे वाक्यद्वयकल्पना ऽस्ति । श्रता ऽपि
श्रुतिलिङ्गिवरोधे एवेदमुदाहरणम् ।

नन् उपस्थापयितव्य इत्यस्य प्रकाशियतव्य इत्यथे: कृता लब्ध इत्याकाङ्कायामाह ऋच इति । उपान्मन्त्रकरणे इति सूचेण उपपूर्वातिष्ठ-तेथाता: मन्त्रकरणके ऽर्थे वर्तमानादात्मनेपदं विहितम् । मन्त्रकरणं मन्त्र-काये तद्य प्रकाशनमेवेत्युक्तार्थेलाम इति मावः । के चित्रूपपूर्वातिष्ठते-थातारात्मनेपदं तदर्थे एव समीपावस्थाने मन्त्रकरणके विधीयते समीपा-पस्थानं मन्त्रकरणकं तदा स्याद्यद्यमिधानफलकं स्यात्रथा चेपस्थापिय-तव्य इत्यस्य समीपे ऽवस्थाय प्रकाशियतव्य इत्यर्थे इत्याहु: । नन्वा-चार्यरनेन श्रुतिलिङ्गाधिकरणमध्याचिप्रमिति पूर्वयन्थेन प्रवलदुर्वलाभ्यामिप

[,] शोघतरवव्हें सित ९ पु॰ पा॰।

प्रमाणाभ्यामुभयच विनियोगा ऽस्तु विराधाभावादिति पूर्वषचः श्रुतिलिकुाधिकरणे निराकृत इति सूचितं कथमिह लेक्कि एव विनियोगा न
श्रीत इति पूर्वषचः क्रियते । उच्यते । वस्तुतस्तथैव श्रुतिलिक्काधिकरणे
पूर्वषचः । लेक्कि एव विनियोगा न श्रीत इति पूर्वषचवचनात् । यथाथेमैन्द्री स्थादित्यधिकरणे निराकृतत्वात् तथापि टोकाकारेरिह गेन्द्राधिकरणं लिखितवद्धः प्रबलस्तदधिकरणपूर्वपच एव श्रुतिलिक्काधिकरणपूरवेषचत्वेन लिखित इत्याचार्यरिष तदनुवर्तनं कृतम् । श्रुतेः शेषत्वे
ज्ञाते अनन्तरमर्थे तादशी शक्तिः कल्प्यतइति । श्रीनना सिञ्चेदित्यच शक्तिकल्पनस्य बाधितत्वादप्रामाण्यमिति भावः ।

गैाणमपि सामर्थ्यमिति । गै।णगब्द इह स्वगुणाऽन्यगुणसाधा- ४२७ । १९ रययेन गुणयोगनिमित्तकत्व्रमाचपरा योगगै। खवृतिसाधारणः । अत इन्द्र-शब्दस्य योगिकत्वप्रदर्शकेन प्रभवति हि स्वैः वितायामित्यादाग्रिमयन्थेन न विरोध: । इदि परमैखर्वे इति धातोरिन्द्रशब्द इत्ययं योगः प्रदर्शित: । यदि ऋजेन्द्रायवजेत्यादिष्वेषोन्धिधाती रन्प्रत्ययान्ततया निपातननि-ष्पन इन्द्रशब्द इष्यते तदा गाहिपत्ये यागः सुतरां संगच्छते । श्रामावेव खिल्विन्थि दीप्राविति चात्वर्थः सुप्रसिद्धः । ननु श्रेति गार्हेपत्यशेषत्वे सुप्रसिद्धे ऋगाम्नातस्यैन्द्रशब्दस्य तस्मिन् योगिको वृत्तिः कल्पनीया । तदेव क्यं सिर्ध्यात । न ह्यैन्द्रीति तद्वितान्तेन प्रातिपदिकेन इन्द्रशेषतया उनूदिता ऋगगाईपत्यशेषत्वेन तृतीयया विधातुं शक्या । प्रयाजशेषेण हवींष्यभिचारयतीत्यच सत्यामपि तृतीयायां प्रयाजशेषतया ऽनूदितस्य हि द्विरभिघारगारीषत्वेन विधानं न संभवतीति तृतीयामविगगय्य प्रयाजशेषं हविष्य चारयेदिति प्रयाजशेषप्रतिपतिविधानाथैत्वं वाक्यस्य समाश्रितं तथे-हापीन्द्रशेषत्वेनानूदिताया ऋचे। गाहंपत्यशेषत्वेन विधानं न संभवतीति गाईपत्यसमीपे स्थित्वेन्द्रः प्रकाशियतव्यः इत्यर्थसमाययगं युक्तमिति चेदु-चते । ग्रेन्द्रीप्रातिपदिकेनेन्द्रप्रकाशकतामात्रह्णमिन्द्रशेषत्वमुच्यते त्विन्द्रोपस्थानविनियुक्तत्वरूपं तद्विनियोजकबुद्धभावात् । इन्द्रप्रकाशकत्वं

^{*} प्रदर्शनं केनेति २ पु॰ गाः।

[†] सूत्रेग्रेदिधाते।रिति २ पुः पाः।

च न गार्डपत्योपस्थाने विनियोगेन विरुध्यते मुख्यतयेन्द्रप्रकाशकस्यापि गै। गार्चुन्या गार्डपत्यप्रकाशकत्वसंभवादते। विरोधाभावाद्विधिवाक्ये क्ष चिद्राप्त पदे जधन्यवृत्तिनाभ्यपगन्तव्या । अवश्यं क चिदाप्रयणीया जधन्यवृत्तिर-नुवादके तेन विधिना विनियोज्ये मन्त्रस्वाप्रयितव्येति युक्तम् । प्रकरणा-ज्ञानसामध्यादित्यस्य दर्शपूर्णमासप्रकरणाम्बानसामध्यादिति व्याख्यानं कोशिषु दृश्यते तत्याया लेखकप्रमादापदितम् अभिनचयनप्रकरणे खल्वेन्द्रस् गार्डपत्यमुपतिष्ठतइति विधिराम्बायते ।

39 1 95

ननु यथा प्रत्यत्तेणारिनवीध्यते इति । ननु श्रुतिलिङ्गाभ्यां तुल्यब-लाभ्यामस्य मन्त्रस्य गार्हपत्यशेषत्वमिन्द्रशेषत्वं चास्तीति शङ्का न पूर्वपिचणे। युक्ता । लिङ्गादिन्द्रशेषत्वमेवेति हि षूर्वयत्तः कृतः । तथाशङ्कायां च यया ग्रत्यचानुमानाभ्यां वन्हिबीध्यते इति न दृष्टान्तीकर्तुम्चितं किं तु यथैकस्य पर्वतस्य प्रत्यचानुमानाभ्यां हृदवत्वं वहिमन्वं चेति दृष्टान्तीकर्त्व्यमिति चेत्। उच्यते। लिङ्गेन साचाद्विनियोगे। न कल्पनीय इति प्रतिचायां हि श्रीताद्विनियोगात्कल्पनीयस्यार्थेविप्रक्रवे।दिति टीकायां हेतुम्तः स च लिङ्गस्य बाचाद्विनियाजकत्वगङ्कां से।पपत्तिकामवतार्यं तिवरासार्थत्वेनावतारः गीयस्तस्य साचाद्विनियाजकत्वे च श्रुत्या हि लिङ्गस्य तुल्यबलत्वमेवायाति नाधिकवलवन्त्रम् । श्रुतेर्लिङ्गसापेचत्त्वस्य निराकृतत्वादत इह श्रुतिलिङ्गाभ्याः विनियागद्वयमिति पूर्वपत्ते। ऽपि टीकाशयस्य इत्यभिप्रेत्याभ्यां तुल्यबलाभ्याः मुभयच विनियोग इति शङ्का कृता।दृष्टान्तस्तु श्रुतिविल्लङ्गेनापि स्वातन्त्र्येण स्वविषयबोधनं संभवति वह्निविषयप्रत्यचवत्रद्विषयानुमानेनापि तत्प्रत्यच-निरपेचेण वह्निबाधदर्शनादित्येतावन्माचे याजनीय: । यद्वा इन्द्रे विनियागः श्रुत्येव लिङ्गेनापि बाधियतुं शक्य इत्यस्मिन्नर्थं दृष्टान्तीयम् । अच दाष्ट्रान्ति-कांश उन्नेयः । इत्यं लिङ्गस्य स्वातःच्ये सति फलितं श्रुतिलिङ्गयोस्तुल्यबः लत्वमवलम्ब्योभयच विनियागाशङ्का एवं लिङ्गयुतिभ्यामित्यादिना दर्शिता तबैवमित्यस्य एवं सतीत्यर्थे इति न किं चिदवद्यम् ।

११ श्रनुयोग श्राक्षेप इति । यद्यपि प्रश्नो ऽनुयोगः पृच्छा चैत्य-नुयोगशब्दः प्रश्ने ऽनुशिष्टस्तयापि शास्त्रेषु प्रश्न श्राव्येपपर्यवसायीत्येवं व्याख्यातम् । यत्तत्पद्समभिन्याहार इति । तत्यददर्शनादथ्याहृतं

यत्पदमित्युभयसमभित्र्याहार उत्तः । तावत्युक्ते इति । विभन्यमानत्वे पति पाकाङ्गत्वमिति नचणे विभन्यमानमित्येतावत्युक्ते इत्यर्थः । अथैक-त्वविशेषणस्य त्विति । यद्यपि विभक्त्यमानसाकाङ्कत्वमानं तमे पर्यास द्यानयति सा वैश्वदेव्यामिन्नेत्यनातित्यामं तनाप्युतरवाक्ये तत्पदसद्भा-वेन विभागे पूर्वसाकाङ्क्षतायाः सद्घावात् तथापि यजुः शब्दाभिधेयेषु प्रश्लि-ष्ट्रपठितमन्त्रेषु परिमाणं दुर्ज्ञानमिति तञ्जानाय निरूपिते ऽस्मिन् लचणे यजूरुप् स्मेत्र विशेषणव्यावत्ये वक्तव्यं तत्तु स्योनं ते इत्यादिकमेव विभ-च्यमानसाकाङ्मयजुष्टुस्यान्यवातिव्याप्रिशङ्काभावात् स्योनं ते इत्यादिमन्त्रे च पूर्वपचदशायां वाक्यभेदे। न सिद्ध इति व्यावत्याभावादर्यैकः त्वविशेषणं ने।पार्तामत्यर्थः । अग्नये निर्वपामीति पद्मियामेकवाक्य-तां कल्पियत्वेति । यदायेकवाक्यता स्वत एव प्रतीयते तथाप्यसमवे-तार्थत्वेन वाक्यानन्तर्भावशङ्कां परिहृत्य प्रतीतेकवाक्यता निर्वहणीयेति कल्पयित्वेत्युक्तम् । अभिधानसामर्थ्यं कल्प्यतामिति । निर्वापान्वया- ४२८ । ५२ पयोगितत्प्रशंसामिधानसामय्ये कल्यतामित्यर्थः । न तु निर्वापामिधान-सामर्थ्ये कल्प्यतामिति निर्वपामीत्यनेन पैनिसत्यापत्ते: । एवं दार्घ्वान्तिके ऽपि कृत्स्त्रमन्त्रस्य यदा सदनकरणे विनिये।गस्तदे।नरभागस्य प्रतिष्ठापना-र्थत्वस्वतिद्विशेषाभिधानसामर्थ्यकल्पनेति द्रष्टव्यम् । अत्रैकशब्दः प्रयुक्त इति । षिद्धान्ते यजुःपरिमाग्यलचगे अर्थैकत्वविशेषग्रस्यापेचितत्वादेक-शब्दः प्रयुक्त इत्यर्थः । तदपेचायां हेतुं सिद्धान्ते तझावर्त्यसिद्धं दर्शः यित स्यानं तइत्यस्येति । एवमेकत्विविशेषणे कृते तत्प्रयुक्तलवणाः संभवपरिहाराथे प्रधानमिति विशेषणमित्याह एकस्मिन् वाक्ये इति। प्राप्तिमात्रोपपादि चेति। निःश्रेण्यारोहणप्राप्यं प्रासादादि प्राप्तिमाचेण लभ्य-मित्यर्थः । विलम्बेन लभ्यं चे पश्चादाह्रढे। ऽपि कदा वित्फनं गृह्गीयादि-त्याशङ्कार्णरहार्थिमदं विशेषणम् । पश्चिमा ऽवतरेन्मुधेति । एवमेव वाक्यमूलक्रमामर्थ्यादिकल्पनाक्रमे। विनियागलवर्ण फलमगृहीत्वा‡ परावर्त-तइति दार्शन्तिके याजनीयम् । भेदेन चिनियागः स्यादिति । ऋग्नये

वज्रह्मिति २ पुः पाः ।

[‡] ग्रहीत्वेति २ पुः पाः ।

[†] व्यावत्यं दर्शयतीति २ पुः पाः।

जुष्टं निर्वेषामीत्येतदितिस्तानां देवस्य त्वत्यादिषदानामिति शेषः । तथा सत्यतिप्रसङ्गान्तरमप्यापतेदित्याह तथा चेति । सद्रनादिषदातिरित्तपदानां स्योनमादिषदानाम् । यन तु विरोधिः निङ्गम् अस्य तु विवरणं पृथिगिति । अगतेवरमिति । यदि पृथक्तर्मवर्तिपदाश्चेष्रकाशकपदानां वा सामर्थ्यः स्थानमादिषदानाम् । यदि पृथक्तर्मवर्तिपदाश्चेष्रकाशकपदानां वा सामर्थ्यः कल्पनेन विनियोजकत्वं न स्थानदा तेषां गत्यन्तराभावेन वैकल्यं । स्थानतो वरं तेषां वाक्यं विनियोजकमित्याश्चयणित्यर्थः । उदाहृतस्तिकास्यान्तरापेत्वावरेने विष्णादाय व्याचष्टे लिङ्गादायस्यभङ्ग इत्यर्थ इति । कार्या-न्तरापेत्वावरोनेति । कार्यान्तरमितिकत्व्यता तथा च सिद्ध्याम्वातः पदार्थसवन्यापादकेतिकर्तव्यताकाङ्गावत्यथानवचनं प्रकरणमित्युक्तं भवित् तद्विशेषसभावात् क्व चिदितिकर्तव्यताकाङ्गावशेन सिद्धितवाक्यान्तरसंबन्धः प्रकरणमिति व्यवङ्गितते । क्व चिदितिकर्तव्यताकाङ्गावशेन सिद्धितवाक्यान्तरसंबन्धः प्रकरणमिति व्यवङ्गितते । क्व चिदितिकर्तव्यताकाङ्गावशेन प्रकरणमिति व्यवः हियते । इदं कर्मप्रकरणमानासाधारायं प्रकरणल्वसम् । ब्रह्मप्रकरणमाधारायं प्रकरणल्वसम् । ब्रह्मप्रकरणमाधारायं त्र तत्वचणमाकाङ्गावार्यान्तरविशेषस्य विहाय निर्वक्तव्यम् ।

830 15

सिनिहितकरणापकारे संभवतीति । सिन्ध्यामातस्य करणस्थापकारे त्राकाङ्कावशाद्धुद्धिस्य फले संभवत्यबुद्धिस्यस्वर्गफलकल्यना न
युक्तेत्यर्थः । त्रायमेव हेतुरनुषङ्गार्थवादिकफलाकल्पनयारिष । स्वर्गस्यानाकाङ्कत्वादित्यभ्यस्यमात्रं स्वर्गस्य दर्शपूर्णमासकरणान्वये उनाकाङ्कत्वे ऽिष
प्रयाचादीनां फलाकाङ्कया तदन्वयसंभवात् । या ते त्राने त्रयाशयेत्यादिमन्त्रान्वयेन निराकाङ्कस्यापि तनूर्विषेष्ठित्यादिवाक्यशेषस्य या ते त्राने रज्ञाश्रया या ते त्राने हराशयेति मन्त्रयारिष तदाकाङ्कामानेणानुषङ्गस्य द्वितीये
प्रथाये निर्णातत्वात् । चतुर्थाध्याये वैश्वदेवीं सांग्रह्णीं निर्विषेद् ग्रामकाम
इत्यव श्रतस्य फलस्य सांग्रहणीधिह्रपकारणान्वयेन निराकाङ्कत्वे ऽप्यामनमस्यामनस्यदेवा इति तिम्र त्राहुतीर्जुहातीति तत्सिन्ध्याम्बातानां होमानां
फलाकाङ्कया उनुषङ्ग इति पूर्वपचं कृत्वा सांग्रहणीतिकनेव्यताहृषेण तदुपकारात्मकफले संभवति नानुषङ्गः कल्यनीय इति सिद्धान्तितत्वाद्य ।

^{*} विरोधिकमिति २ पु॰ षाः। † वैकल्यमिति ९ पु॰ षाः। ‡ इतिकर्तव्यताविशेषणमिति २ पु॰ पाः। •

यमकरणादीति। वर्म वा एतराचस्य क्रियते वर्म यजमानस्य यत्रयाजानूयाजा ६ ज्यन्ते इत्यर्थवादोक्तं फलं राविसवन्यायेन न विपित् ग्यमनीयमित्यर्थः। देवतासंवोधनप्रधानइति। परम्वेशय्वार्थलेखन्ता- स्थातयुक्तः पदसमूहो निगद इति यद्यपि निगद्धिकर्णे वर्णितं तथापि सूक्तवाकनिगद इद्धानगद इत्यादिव्यवहारदर्थनादन्यचपि नितरां गदात- इत्युचिष्ट्रयोगेन तद्युवहारे। ऽस्तीति भावः। द्धिपयसोरभावइति। यदाप्यसेमयाजिने दिधिपयसेरभाव ऐन्द्राग्नपुरोडाशक्तेत्युभयं तत्तद्ववन् वलान्मिलतं न तु प्रयोज्यप्रयोजकभावात्। अन्यशा वैपरीत्यमेव किं न स्यात् तथाप्रयेममाजमावमवर्णस्य प्रयोज्यप्रयोजकभाव उपवितः। अविवृधेतामित्यादिमञ्जरोष इति। इदं हविरज्यतामित्यंशस्याप्ययः स्विश्वेतामित्यादिमञ्जरोष इति। इदं हविरज्यतामित्यंशस्याप्ययः लच्चमेतत्। नानेष्टिपशुसोमसमुदाय इति। अनुमत्यादिदेवताकाना- मिष्टीनामहादिपशुकानां पशुबन्धानां सेमयागानां च सन्निधी पठिते राज्यस्याराज्यकामे। राजसूयेन यजेतेत्यिकारवाक्ये श्रुतस्य राजसूयस्य नामधेन्यस्थाप्रसिद्धार्थत्वेनास्थातपारतन्त्यादाख्यातस्य च सन्निहितसकलयागानुन वादस्वारस्थात्यदिवितसकलेष्टिपशुसोमसमुदायो राजसूय इत्यर्थः।

श्रीनःश्रेफाख्यानं विकृशिति शुनःशेफः किलेति । तदित्यम्। हरि ४३१ । ४ श्वन्दस्य राज्ञः शतं जाया बभूवः । तासु पुत्रमलभमानः स्वगृहे वसन्तं नारदं पुत्रप्रेयाजनं पप्रच्छ । स पुत्रवतः प्रशंसया तद्वितस्य निन्द्या च पुत्र-लाभमितितरां प्रशस्य जातेन पुत्रेश वस्तां यच्चे इति संकल्पे कृते तव पुत्रो भिवितत्युवाच । हरिश्वन्द्रस्तर्थिति सङ्गल्प्य रेहितं नाम पुत्रं लेभे । तदैव वस्त्रीन मामनेन यजस्विति पृष्टो दन्तीत्पत्यनन्तरिमिति तदन्तरं पृष्टे। दन्त्रात्पत्यनन्तरिमिति तदन्तरं पृष्टे। दन्त्रात्पत्यनन्तरिमिति तदन् पृष्टः कवचथरे जाते इति च तावत्पयन्तं कालं पशुभावानहेतोद्वावनेन चपयामास । कवचथरं कुमारं दृष्ट्या मामनेन यजस्विति वस्त्रीन पृष्टे कुमारे धनुगृहोत्वा वनं प्रतस्ये। हरिश्वन्द्रे। वस्त्रगृहोता जले।दर्श्याध्युत्ते। जन्ने । रोहितः संवत्सरं वने चरित्वा प्रत्यागतः संवारे फलं प्रदर्शयतेन्द्रे-शिपिदेष्टः पुनरिष संवत्सरं वने चरित्वा प्रत्याजगाम । एवं पुनरिन्द्रस्यो-पदिश्वः पुनरिष संवत्सरं वने चरित्वा प्रत्याजगाम । एवं पुनरिन्द्रस्यो-पदिशः पुनरिष संवत्सरं वने चरार । षष्ठे पर्याये पुनवन्तमजीगर्त-

नामानं चरिषं वने दृष्ट्वा तमेकं पुषं ययाचेति हरिश्चन्द्रेण कर्तव्ये वरुणयचे पशुत्वेन नियुच्य स्वात्मनिष्क्रयाथं तदा पिता च्छेष्ठं माता किन्षुपुषं च दातुं नान्वमन्यत । ऋषान्मध्यमः शुनःशेफो देयः पर्यवितः । तं क्रीत्वा समाग्त्य वरुणं यष्टुं पुषो ददा । पिता च हरिश्चन्द्रे। राजसूयं प्रारम्याभिषेचनीये शुनःशेफं पशुं सङ्कल्पयामास । ऋजीगर्तः पुनः शतं गृहीत्वां तं विशिष्टि तुमुद्युक्तः । तस्मिन्विशिष्तुमुद्युक्ते शुनःशेफो वरुणं तुष्टाव । वरुणस्य प्रीत्या पाशाद्विमुक्तस्तच यच्चे होतारं विश्वामित्रं प्राप्य तस्य पुषा बमून्विति । ऋषाद्विमुक्तस्तच यच्चे होतारं विश्वामित्रं प्राप्य तस्य पुषा बमून्विति । ऋषार्येहरिश्चन्द्रेण कर्नु प्रारब्धे। राजसूय यव पुरुषपशुक्रत्वेन पुरुष्टेष समेध उपचरितः ।

839 1 90

विकल्पेन पूर्वपत्तं वस्यन्निति । संदेहटीकायामभिषेवनीयस्यै-वाङ्गिमिति पूर्वेपचक्तिरिप्रदर्शनम् पक्रममाचिमिति भावः । नन्वाकाङ्कितमपि सिव्हितमेवान्वेति सिव्हितमयाकाङ्कितमेवान्वितीत्याकाङ्कासिव्यानये।लेकि परस्परापेचादर्शनेन प्रकरणपद्मिधानये।स्तुल्यबनतया प्रकरणाद्राजसूयस्य वाङ्गं मित्रधानादिभिषेचनीयस्य वाङ्गिमिति विकल्पेन पूर्वपच इत्येतन्न युज्यते राजसूयस्य प्रकरणाविद्धेस्तदन्तर्गतानामिष्ट्यादीनां विकृतित्वेन क्रुग्रोपकारप्रा-कृताङ्गसंबन्धनिराकाङ्कत्वात्प्रकरणासन्वे ऽपि सन्निध्यनुरोधपचदव प्रकरणानु-रोधपचे ऽप्यभिषेचनीयाङ्गत्वस्यावश्यंभावेन नित्यस्य तस्य वैकल्पिकत्वासंभ-वाच्चेति चेत् । उच्यते । इष्ट्र्याद्यात्मना नैराकाङ्क्ये ऽपि राजसूयात्मना ऽस्त्या-काङ्का पविचादारभ्य चचस्यधृतिपर्यन्तं राजसूया यह्यैता उत्पुनातीत्यादि-ष्वङ्गवाक्येषु राजसूयपरामशानुवृत्या तदात्मनेतिक्रत्तेव्यताकाङ्कोत्यापनात् । विकल्पोक्तिस्तु अभिषेवनीयातिरिक्तपविवादिप्रधानान्तरविषया । एवं च संदे-हटीका उप्यङ्गणब्दस्य नित्याङ्गत्विवयतया त्रय क्रम इत्येतदनन्तरं प्रकरणतु-ल्यवत् इत्यथ्याहारेग चे।कार्ये सुयोजेति ने।पक्रमविरोधे। ऽपि । न तु प्रक-रणाद्राजसूर्यार्थत्वमिति । विरोधे हि प्रकरणपन्निधानये।: पाचिकप्रवृ-तिर्वाच्या सक्रलराजसूयाङ्गत्वाभिषेचनीयाङ्गत्वयानीस्ति विरोध:। न च सिन्नधानेनाभिषेचनीयमाचाङ्गत्वं बाध्यमिति विरोधः शङ्कनीयः । प्रकरणसिन-

^{*} वदिन्नतीति २ पु·।

धानयास्तुल्यबलत्वपूर्वपचे ऽपि प्रकरणवेष्यस्य प्रधानान्तराङ्गत्वस्याप्रतिचे-प्यतया सन्निधिना तन्मानाङ्गत्वानाभादते। विरोधाभावात्समुद्यया ऽस्त्वित भाव: । सिन्निधिबोध्यमभिषेवनीयाङ्गत्वं पविचादिसऋलप्रधानाङ्गत्वं बोधयता प्रकरणेनैव बोधितमिति सिन्निधिबोध्यस्य समुन्नयस्याभावान्न समुन्नयः संभ-वति । अयोच्येत सन्निधिबलादिभिषेचनीयार्थत्वेन कि चिदनुष्ठानं प्रकारणबला-त्सकलराजमूयार्थत्वेनान्यदित्यनुष्ठानषमुच्चयः संभवतीति तचाह अभिषे- ४३१ । १९ चनीयस्यापीति । अभिषेचनीयाधै यचाभिषेचनीयमाहेन्द्रस्तोचकाले उपा-ख्यानाद्यनुष्ठेयं तनैव सक्तलराजसूयार्थमय्यनुष्ठेयम् । ऋभिषेचनीयानन्तरमा-मातस्यापि साम्राज्याभिषेकात् प्राचीनस्योपाख्यानादेमे।हेन्द्रस्तोचं प्रत्यभिष-च्यतइति साम्राज्याभिषेकापक्षविधिप्रयुक्तस्य तदन्तापक्रपेन्यायसिद्धस्यापक्त-षेत्य पचद्वये ऽप्यविशेषात् । तथा च देशकालक्ष्मैश्यादिदमनुष्ठानमभिषेच-नीयार्थमेव न तु सकलराजसूयार्थमिति विशेषग्रहणाभावादभिषेचनीयार्थमे-वानुष्ठानं सक्तलराजसूयार्थमपि भवेदता ऽभिषेवनीयमाचार्थे पृथगनुष्ठानाऽला-भादनुष्ठानभेदेनापि समुच्चयापपादनं न संभवतीति कदा चिदभिषेचनीयाथै कदा चित्सकतराजसूर्वार्थमिति विकल्पेनैवानुष्ठानमप्युपपादनीयमिति भावः। न चैवं चिन्तावैयर्थ्यमिति। एवं हि सति न किच्दुपाख्यानादानुष्ठाने विशेष: । न च तदननुष्ठाने ऽभिषेचनीयमाचवैकल्यं पविचादिसकलवैकल्यं वेत्यते। विशेषः पचद्वये ऽपि परमाऽपूर्वाऽनुत्पत्तिदे।षस्यैकस्वपत्वात् । तस्मा-देषा चिन्ता व्यर्थेति न शङ्कनीयमित्यर्थः । तत्सिद्धयइति । तदीयस्रवीव-यवार्येत्विसद्धयद्दत्यर्थः । तित्सद्धा राजसूयान्तर्गतसक्रलेष्ट्रिपशुसामविकृतिष्व-तिदेशेन नित्यापाख्यानादिप्राप्तिः पूर्वपचे त्वभिषेचनीयविकृतावेव नित्या त्रन्यविकृतिषु वैकल्पिकीति फलभेद इति भावः। च्त्रस्य-धृतिरिष्टिरिति । अग्निष्टोममन्तत स्राहरित स्रानः सर्वा देवता देवता-स्वेव प्रतितिष्ठतीति राजसूयप्रकरणान्ते श्रवणात् चवस्यपृतिः सामयागविशेष इत्यवगम्यते । चवाणां धृतिस्त्रिष्टोमा ऽग्निष्टोमः पञ्चापवर्गः । तेन त्रन्तता यजेत संतिष्ठते राजसूय इत्यापस्तम्बवचनादपि तथा ऽवसीयते । इष्टिरिति त्वाचार्यैः शाखान्तरं कल्पसूचान्तरं वा दृष्ट्रोत्तम् ।

99 1 28

^{*} अभिषेचनीयापीति १ पुः पाः।

४३२। १ प्रधानस्याकाङ्चायामनुवर्तमानायामिति । राजसूयस्या-काङ्घा पविचादारभ्य प्राक्षिद्धा उनुवर्तते अभिषेचनीयसिविधिना तु तदा-नीमुत्यापनीया । त्रतः सह प्रस्थितया राजसूयाकाङ्घाभिषेचनीयसिन्नधान-योराद्या शीघ्रं विनियागफलं गृह्हीयादिति भाव: । स्यादेतत् । क्रमप्रक-रणविरोधोदाहरणमिदमयुक्तम् । उपाख्यानविदेवनादीनामभिषेचनीयमध्यगः तत्वेन तदङ्गत्वस्यैवोचितत्वात् । नन्वनुष्ठानमेव तेषामभिषेचनीयमध्यगत-मःम्बानं त्वभिषेचनीयानन्तरम् । एवमनन्तरमाम्बाने ऽपि तेभ्यः पश्चादा-म्नातस्याभिषेकस्य म।हेन्द्रस्तोचं प्रत्यभिषिचातदत्यभिषेचनीयाङ्गमाहेन्द्रस्तो-चकाले ऽपकृष्टतया तदन्तापक्षवेन्यायेन तेषामपि तचापक्षवातन्मध्ये ऽनुष्ठान-माचम् । ततश्च तेषां महाप्रकरणेन राजसूयसंयोगादिभिषेचनीयमध्ये ऽनुष्ठा-नमाचेण न तेष्वभिषेचनीयाङ्गत्वादादकं तदवान्तरप्रकरणमुन्मिषति । असं-युक्तं प्रकरणादिति न्यायात् । एवमेत्र च चतुर्थपञ्चमयानिर्णोतमिति चेत् । स्यादेतदेवं यद्यभिषेचनीयमध्ये तेषामाम्नानं न स्यात् । स्रस्ति तु तद्विशो-भयं राजा उभूदिति। पञ्चाचान् प्रयच्छतीति श्रीन:शेषमांख्यायते इति च। एतदनन्तरमपि हि माहतस्य चैकविंशतिकपालस्य वैश्वदेव्ये चामिचाया अभ्नये स्विष्टकृते समवदानीति प्रागुपक्रान्ताभिषेचनीयाङ्गिष्टिशेषानुवर्तनम् । श्रपांनप्ते वाहोर्जे।नप्ते स्वाहा उम्मये गृहपतये स्वाहेति तिम्र श्राहुतीर्जुहोती-त्यभिषेचनीयाङ्गहोमित्रशेषविधानं च दृश्यते ऽताभिषेचनीयाङ्गसदृशाद्विदेव-नादेस्तदवान्तरप्रकरणसद्भाव: स्पष्ट एव । यदि शाखान्तरे क चितेषामभिषे-चनीयसमाध्यनन्तरमाम्बानं स्यात् तथाध्यनावान्तरप्रकरखेन सिद्धं तदङ्गत्वम् अन्य चाप्यप्रत्याख्येयं महाप्रकरणादवान्तरप्रकरणस्य बलीयस्त्वादिति चेत्। उच्यते । नेादाहरणमादरणीयं न्यायमाचित्रमधिकरणं यच क्रमस्यैव प्रकर-गोन विरोध: नावान्तरप्रकरग्रसद्वावशङ्कास्ति तदच मुख्यमुदाहरगां भवि-

ष्यति कृत्वाचिन्तया त्विदमुदाहरणमिति न कश्चिद्विरोधः । संबन्ध आनुमानिक इति । पदार्थान्तरहृपेण वैशिष्ट्येन संबन्धो ऽनुमेय इत्पर्थः । ननु वैशिष्ट्यवाचकत्वे ऽपि वैशिष्ट्यं तत्प्रतियोग्यनुयोगिनै। चेति चया वाच्याः प्रसच्चेरिज्ञिति तुल्यो देषः । प्रतियोगिविशेषविशिष्टुं द्रव्य-मुच्यतइति विशिष्टहृष्ट्येण वाच्येकसमर्थनं तत्संबद्धद्रव्यमुच्यतइति संबन्ध-

19 1 99

A 2

वाचकत्वपचे ऽिष संबन्धमामान्यमेव युत्या लभ्यते न तु विनियोगह्णः संबन्धविशेष इत्याह श्रीपे च भवत्विति । सन्निधिमुपकलपयतीति । ४३२ । २० ननु सन्निध्यमावे ऽिष ।

> यस्य येनार्थसंबन्धे। दूरस्थेनापि तेन सः । ऋर्थते। ह्यसमर्थानामानन्तर्यमकारणम् ॥

इति न्यायात् संबन्धा घटते । श्रशकां चान्यचान्नातानामन्यसन्नि-ध्याम्नानकल्पनम् । तस्मात्समाख्यया सन्निधिकल्पनं तावदयुक्तम् । तथा स्त्रिधिना ऽ5काङ्काकल्पनम्बि न युक्तम् । सन्निथ्यभावे ऽवि पुराेडाशवाचः शुन्धनस्यानुष्ठानाय स्मृतिजनकाकाङ्कासत्वात् । तथा ऽऽकाङ्कयैकवाक्यत्व-कल्पनमपि न युक्तम् । शुन्धनिवधेः शुन्धनप्रकाशक्रमन्त्रविनिये।जकविध्ये-कवाक्यत्वाद्वीह्यादिरीत्या विनियोज्यपदार्थहृपेख मन्त्रेगीकवाक्यत्वानपेच-गात्। वाक्येन सामर्थ्यक्रल्पनमपि न युक्तम्। शुन्धनप्रकाशनसामर्थ्यस्य स्फु-टतरत्वात् । स्फटतरतत्प्रकाशनसामर्थ्यलब्य एव हि शुन्धनसंबन्धः समा-ख्यया पुरे।डाशपाचशुन्थने बाधनीयः स्थानेन सान्नाय्यपाचशुन्धने वेति संदेहे। दर्शित इति चेत्। उच्यते । संबन्धेनाम्नानसन्निधे: कल्पनमिह न विविचितं किं त्वनुष्ठानसिन्नधेः । स तु घटतग्रव । श्रन्यनाम्नातस्याप्यन्य-चानुष्ठानसन्तिथिना च सन्निध्यनुष्ठीयमानमन्त्रविशेषाकाङ्काकल्पनं विविवतं तनु प्राङ् न सिद्धम् । अनुष्ठेयार्थस्यतिजनकमात्रापेचा ऽपि हि प्राक्तिद्धा तदाकाङ्घया चैकवाक्यत्वं पुराेडाशपाचशुन्धनविधेर्मन्त्रपंबन्धमाचह्नपं विव-चितं ततु प्रकाश्यप्रकाशकभावस्वपमुपपदाते तत्प्रकाशकत्वनिर्वाहाथे च शुन्धनसामान्यप्रकाशकस्य मन्त्रस्य पुरे।डाशपाचशुन्धनप्रकाशनसामध्ये कल्प-नीयमिति तत्कल्पनं विवचितम् । ऋतः सर्वमेतदुपपन्नम् ।

त्रश्रेषु प्रतीतिविरोधा न वस्तुविरोध इति टीकायां वस्तुविरोधा-भावे विविचतं हेतुमाह द्ध्न उभयार्थत्वद्शनादिति । प्रतीतिविरोध- ४३३ । २२ सद्भावे विविचतं हेतुमाह अन्यशेषस्येति । ननु अन्यशेषस्यान्यशेषत्व-रूपं वस्तुतो न विरुद्ध†मित्यनुषदमेवोक्तं कथं तिद्वरोधे। हेतूक्रियते ।

^{*} सिवध्यामानाकाङ्कासत्त्वात्कल्पनिमिति २ पुः पाः।

[†] वस्तुन विरुद्धिर्मित २ पु∘ पा∗।

त्रयान्यशेषत्वेनानूदितस्यान्यशेषत्वेनानुवादादन्यस्यैव शेष इत्ययमर्थे। लभ्यते व्यावतं कस्वभावानां विशेषणानामन्यये। गव्यवच्छेदस्वारस्यात् तथा चानूद्यमानविधीयमानार्थये। विद्यातः । त्रनेनेवाभिप्रायेण दृष्टान्त उत्तः यद् देवतीयं तदाचदत्रशेष इतिवदिति । यदिति । त्रव हि यद्वेव-दत्तीयमित्यनेन देवदत्तस्येव स्वमुच्यते न तु यचदतस्यापि साधारणम् । तथा मित देवदत्तस्य स्वसंबन्धे यचदत्तमपिचतया सामध्यीभावेन तद्वि-तानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । तश्चिष्टानलच्ण्येति । यचानुवादे उन्यशेषत्ववान् चक्तः शन्द्यो उस्ति पुराडाशक्रपालेन तुषानुपवपति परिधा पश्चं नियुक्तीतेन्त्यादौ तद्विषयेयमधिष्ठानलच्णातिः । तच हि पुराडाशशेषत्वादिस्वविन्यादौ शिष्णां विहाय वस्तुतस्तदिधष्ठाने कपालादिविशेष्यमाचे लच्चणा पुराडाशन्वात्रभवात्याः कपालादिश्वस्यान्यस्याः प्रकृतदिध्वहस्यात्मवविषयाः न भवति त्वियमः धिष्ठानलच्णाेतिः । तये। रम्यशेषत्वसमर्पकशब्दाभावात् ।

४३३ । स्ध

तत्तुल्यमिति । नन्चिष्ठष्ठानलच्यया विरोधसमाधानं विद्यायां मन्त्रस्य विनियोगे ऽपि तुल्यमिति न वत्तव्यम् । सिर्विधकल्पनीये विद्या- विनियोगे उपि तुल्यमिति न वत्तव्यम् । सिर्विधकल्पनीये विद्या- विनियोगवाक्ये वैधादिमन्त्रस्य दिधिबृहस्पतिसववत्स्वहृपेण ग्रहणस्योपपन्न तया उन्यशेषत्वेनोपादानाभावात् । अते। यद्यप्यथैष प्रतीतिविरोधो न वस्तुविरोध इति शङ्कानन्तरं स विद्याविनियोगे ऽपि तुल्य इति टीकाग्र- न्यस्य विरोधतील्यार्थकत्वं परिहृत्य विरोध *समाधानार्थकत्वमुपपादियतुं ग्रङ्काग्रन्थस्यव किस्मिश्चिद्विरोधसमाधाने तात्पर्यमुक्ता विद्याविनियोगे तत्ति। ग्रङ्काग्रन्थस्यव किसमिश्चिद्विरोधसमाधाने तात्पर्यमुक्ता विद्याविनियोगे तत्ति। विरोध विद्यायां तत्समाधानते। त्यस्माधानते। त्यस्माधानते। त्यस्माधानते। त्यस्माधानते। तस्मादिधिष्ठानलच्याया विद्यायां मन्त्रस्य विनियोगे ऽपि तुल्यमिति । तस्मादिधिष्ठानलच्याया विरोधसमाधानते। त्यस्माद्यावन्त्यम् प्रत्यायकविशेषणस्ये ऽप्यधिष्ठानलच्याया विरोधसमाधानेन विनियुक्तवि- प्रत्यायकविशेषणसन्ते ऽप्यधिष्ठानलच्याया विरोधसमाधानेन विनियुक्तवि- नियोगः कतुं शक्यते इह तदभावे किम् वक्तव्यमिति कैम्तिकंन्यायाद्धाः उनार्थमनया भङ्गा विरोधसमाधानते। त्यमुक्तमिति न का चिदनुपपतिः ।

^{*} श्रविरोधेति ३ पुः पाः।

एकस्मिन प्रयोगे मस्त्रावृत्तिप्रसङ्गादिति । यदाव्ययं न देखः ४३३ । २६ च्योतिष्ट्रोमप्रकरणाम्नातस्य श्रग्नश्रायाहि वीतये इति मन्त्रस्य यजुर्वेदे श्राग्नेय्याग्नीभ्रमुपतिष्ठतदृत्याग्नीभ्रोपस्थाने ऽपि विनियोगदर्शनात् तत्र विनि-याजकप्रमाणद्वयानुसारेण यद्येकस्मिन्नपि ज्योतिष्ठोमप्रयोगे मन्त्रावृतिस्तहीं-न्द्रादाविष तथा स्यादिति चेत् । एवं तिहं श्रुतिलिङ्गाधिकरणमप्याचि-प्येतदिधिकरणप्रवृतिरित्यस्तु । एवमेव खन्वावार्येक्तं पूर्वपत्ते । ननु बृह-स्पतिसवन्यायेन विनियुक्तविनियागे।पणादनं न युक्तम् । ऋङ्गवृहस्पतिसवस्य स्वतन्त्रबृहस्पतिसवादन्यत्वस्य मोमांसकैकत्तत्वादित्याशङ्क्याह बृहस्पतिस-वादाहरणं त्विति । अच वक्तव्यं प्रागेवाक्तम् । अस्याधिकाशङ्केति टीकाया अर्थमाह अस्य पुनः स्मारणस्येति । ननु टीकायां नेहेत्यादि-क्लाकतद्विवरगाभ्यामधिकागङ्कापरिहारे। यः कृतः से। ऽपि श्रुतिलिङ्गाद्यधि- ' करणस्य एव । तथा हि । द्विविधे। बाध: प्राप्नबाधे। ऽप्राप्नबाधश्चेति । तच दशमे वैकृतविधिवाक्यशेषेण चादकेन कृष्णलादिषु प्राप्रस्यैवावहननादेद्वार-ले।पादिना बाधे। निरूपित: । तृतीये तु श्रुत्यादिभिर्लिङ्गादीनां स्वस्व*प्रमेय-परिच्छेदप्राविरहितानामेत्र नैराक्षाङ्क्षेग प्राविनिरोधलवर्णा ऽप्राव्रबाधी निरूपित इति पूर्वमीमां सकै: कृते। विभागस्तदनुसारेण टीकायामपि बलाबलाधिकरणा-नुक्रमणे ऐन्द्रीमन्त्रःदीनां प्रथमप्रवृतयुत्यादिभिनिराकाङ्घीकरणेनाप्राप्रबाध एव र्बार्णतः । तथा चेयमधिकाशङ्कापरिहारोक्तिरयुक्तेत्याशङ्कते यद्यपीति।

युत्यदिभिनिङ्गादिबाधः पूर्वन्त्रनिह्णिता ऽप्राप्नं बाधः सन्निष्ण प्रका-श्यस्येन्द्रादेः प्रकाशकमन्त्राद्याकाङ्गावशात्प्राप्रबाधत्वशङ्कामानस्यापि विषये। भवति इह तु तदिष नास्ति विद्यायाः मन्त्राकाङ्गाविरहादिति भेदप्रदर्शनेन पेतनहत्त्यं परिहरित तथापीति । निन्वन्द्रस्य नास्ति प्रकाशकमन्त्राकाङ्गा ४३४ । ७ श्रीमचयनप्रकर्णे तस्य यष्ट्रव्यत्वादिना ऽनाम्नातत्वेन प्रकाशनाऽनपेचणा-दिति चेत् सत्यम् । नेदाहरणमादरणीयम् उदाहरणान्तरं भविष्यति इमा-मगुभ्णन् रशनामृतस्येति मन्त्रस्य इत्यश्वाभिधानीमादलइतीतिकारश्रुत्या तृतीयाश्रुतिसमानार्थया ऽश्वरशनायहणे विनियोगे कृते ऽपि रशनायहणप्र-

^{&#}x27;स्वग्रब्दः सकत् २ पुः। † निरूपितो वस्तुप्राप्तेत्यादिः पाठः ५ पुः।

Ace

वेदान्तकल्पतस्परिमले [ऋ ३ पा ३ ऋधि १४-१५ काशनसामर्थ्यक्रपालिङ्गाद् गर्दभरशनाग्रहणे ऽपि प्राप्तिः शङ्कितुं शक्यते तस्याप्यश्वरश्वनायष्ट्र बवदग्निचयने ऽनुष्ठेयस्य तन्मन्त्राकाङ्गत्वानदिहोदाहर-ग्रम् । ननु प्राप्तिशङ्कासद्वावतदभावाभ्यां विशेषकयने वेधादाधिकरणानार-म्भकशङ्केच स्थिरीकृता स्यात् प्राप्रिमन्वशङ्कास्यदस्यापि लिङ्गादे: मुत्या बाचे पूर्वतन्त्रे निह्नपिते पति तच्छङ्काऽनास्पदस्य विद्यापन्निचेलिङ्गादिभिकीधस्य कैमुतिकन्यायेन चिद्धेरिति चेदुच्यते । शास्त्रभेदान्न पेानकृत्यमित्येव मुख्यः परिहारी ऽवाभिसंहित: । क्व वित्यौढ्या व्यवहृतमैक्रणस्त्र्यपचं यथाकथं चित्समर्थेयितुमभ्युच्चयद्ववेयमधिकाशङ्कापरिहारये।हक्ति: । ऋधिकाशङ्कापि बस्तुता ऽच नास्त्येव ऋविरोधे प्रवलदुर्वलयारिव श्रुतिलिङ्गयाने बाध्यबाध-कभाव इत्यतः श्रुत्या क्व चिद्विनियुक्तस्यापि लिङ्गेनान्यच विनियोगी घटत-ं इत्येव प्रतिलिङ्गाधिकरणे पूर्वपत्तकरणात् । येकशास्त्र्यपत्ते भाष्यादिष्वधिक-शङ्कापरिहारावन्याविष मूचिता लिङ्गादिभिरन्यच विनियुक्तानां मन्त्रादीनां विद्यायामपि सन्निधिना विनियोगः कल्पनीयः । श्रन्यथा विद्यासन्निष्णास्ना-नवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । ऋयाता उग्निष्ट्रामेनानुयुञ्जन्तीति वाक्येनाहवनीयाधारतया चित्याग्नै। प्रकृत्यग्निष्टे।मे प्राप्ने ऽप्युत्तरवेद्याः प्रक्ररणाम्बानवैयर्थ्यपरिहारार्थे त्तदाधारतया प्राप्तिमङ्गीकृत्य विषमिशिष्टये।रम्युत्तरवेद्योविकल्या ऽप्यभ्यपगम्यते अब विकल्पाऽप्रसत्तो सिन्निथिवैयथ्य परिहर्तव्यमिति किमु वत्तव्यमिन्यिथः काशङ्कांविद्यासिद्धध्यासानम् आरायकत्वप्राप्यश्चेत्वेनान्ययासिद्धम् अन्यव विनियोगेन निराक्षाङ्घाणां नान्यच विनियोगकल्पनचममिति परिहार:। यजे-·तेत्यादिसमानपदश्रुते। प्रकृतिप्रत्यययोरन्ये।न्य।पेचासन्वादव्याप्रिवार**गा**य पदे उन्यस्मिति विशेषग्रम् । तथा च स्वाधीमिधाने पदान्तरनिरपेतः शब्दः म्रुतिरिति लचणार्थः । बहिदैवसदनं दामीत्यादिमन्त्रेषु शब्दशक्तिवत् सूवे-णावदातीत्यादिविधिषु मुवादीनां द्रवद्रव्यादावदानशक्तिरिष लिङ्गिमिति तत्साधारएयाय भावगतेत्युक्तम् । समानदेशत्वं यथासंख्येन सन्निधिना वा सिन्निधिरप्याम्नानसिन्निधिरनुष्ठानसिन्निधिरिति द्विविध: ।

त्रैलाक्यमिति । अन्तरिचोदरः के।शा भूमिबुधा न जीर्धति । 8ईते। त दिशा ह्यस्य सत्तया द्यारस्यातरं बिलं स एष वस्थान इत्यादिना वैला-क्यस्य के।शत्वेन कर्मफलहृपवसुनिधानार्थपेटिकात्वेने।पासना पुचदीघीगुष्टु- फलाये विहिता तस्य केश्यस्य भूमिर्भूलावयवः अन्तरिचमुदरं द्यौः पिधा-नाये जध्वावयवः दिशः केश्या इति प्रसिद्धकेशशसदृश्यापादकावयवकल्पना कृता । भूरिति इमं लेशकिमित्यर्थे इति । इदं मन्त्रगतशब्दमानं गृहीत्वा व्याख्यातम् । श्रीते तु वाक्यशेषे भूरित्यस्य लेशकवयपरत्वेन व्याख्यानं दृश्यते । श्रय यदवेश्वं भूः प्रपदाइति पृथिवीं प्रपदो अन्तरिचं प्रपदो दिवं प्रपदो इत्येतदवेशचिमित ॥

हाना तूपायनशब्दशेषत्वात् कुशाच्छन्दः-स्तृत्युपगानवत्तदुक्तम् ॥ २६ ॥

४३५। ८

परत्रावस्थानसापेक्त्वादिति । श्रवश्यं हि कुतश्वित्प्रहीयं किं चिदुपैति यथा ऽश्वात्प्रहीयं रोमवृन्दं भूप्रदेशमिति हानस्ये।पायनापेक्चं विद्य-मानयोः सुकृतदुष्कृतयोः फलजननावश्यम्भावादि तदपेक्चा ऽस्तीति भावः । सिमध हति । उद्गातृयां प्रस्तावकर्मणि स्तोवसंख्यागयानाथा दास्थलाका-विशेषा इत्यर्थः । श्रीदुम्बरा हति विशेषणादिति । श्रनेन शाट्यायनि-शाखायां कुशशब्दः पृद्धिङ्ग इति सूचितम् । स्त्रीलङ्गत्वे त्वादुम्बये इति स्यात् । यदि तु कस्यां चिदिति । श्रीदुम्बयं इति भाष्यप्रयोगं दृष्ट्वा तदः नुकार्यक्षुत्युन्नयनम् ।

पर्युदासाधिकरणविषयमाहेति । ननु नदीविताधिकरणि ४३६ । २० द्धान्तसूषं भाष्यकारैः पठितं तित्किमिति ठीकाकारैः पर्युदासाधिकरणि द्धान्तसूषं भाष्यकारैः पठितं तित्किमिति ठीकाकारैः पर्युदासाधिकरणि द्धान्तसूष्यम् पठितमापाद्य पर्युदासाधिकरणम् नक्षम्यते किमिति च तदनुमेा-दनमाचार्येः क्रियते । इत्यं हि नदीविताधिकरणम् । दीवितो न जुहोतीति च्योतिष्ठेषामप्रकरणाम्नातं वाक्यं क्रत्वर्थेपुरुषार्थसाधारण्येन सर्वेषामि होमानां प्रतिषेधकम् अथ वा क्रत्वर्थेषु प्रत्यविष्ठिष्ठान् विहायातिदेशप्राप्नानां क्रत्व-र्थानां पुरुषार्थानां च होमानां प्रतिषेधकमिति पूर्वपचे प्रयोगनहोषादिहो-मानां स्वस्वविधिमः क्रतुमध्ये कर्तव्यतया नदीवितवचनेनाकर्तव्यतया च पर्युदासाधिकरणपूर्वपचन्यायेन प्रतिषेधाङ्गीकारे विकल्पः स्यातत्परिहा-राय नदीवितवाक्यस्यागिहोषादिवाक्यशेषत्वमभ्युपगम्य नजः पर्युदासवृ-

^{्&}lt;sup>* अत्र चतुर्दशं विधादाधिकरणं पूर्णम् ।</sup>

तिराश्रयणीया तेनादीविता यावन्जीवमग्निहोषं चुहोतीत्यग्निहोषादिवा-क्यानामर्थः संवदातङ्कति । तदेव चाचिकरणं प्रदेशान्तरस्यवाक्यस्य प्रदेशान न्तरस्यवाक्यशेषतायां प्रसाधनीयत्वेन प्रस्तुतायां दृष्टान्तत्वेने।दाहतुं युत्तं न प्युंदासाधिकरणमिति चेत्। उचाते। नदीचितवाक्ये प्रतिषेधाश्रयणे वस्तुता विकल्पे। न प्रसञ्चते । होर्मनिषेधः क्रत्वर्थे। होमः पुरुषार्थे इति विधिनि-बेधयोर्विषयभेदात् । उभयारपि क्रत्वर्थत्वेन विषयेक्ये हि बेडिशियहगाय-हणरीत्या तयारन्यतरस्य यस्य बस्य चित्परियहे उपि क्रताः साद्गायाद्वि-कल्या भवेत् । इह तु हार्मानषेथ एव क्रत्वर्थ इति हामण्चे क्रतार्वेगुएया-द्विकल्पस्य न प्रसिक्तः । कृत्वा चिन्तया तु तत् सूचं प्रवृतम् । यदि प्रतिषेधा-म्प्रयंगे विकल्पः प्रसच्यते तदा नदीवितवाक्यस्याग्निहोचादिवाक्यशेवत्वमङ्गी-कृत्यापि सुपरिहरणीयम् । बिंचित्त्रकरणास्नातस्यैकस्य गब्दस्य प्रदेशान्तरमा-म्बातानेकवाक्यशेषभावादपि पापीयान् विकल्प इति न्यायं व्युत्पादियतुमतः पर्युदासाधिकरणपूर्वेपचे यव वस्तुते। विकल्पप्राप्निरिति तदधिकरणे(सिद्धान्तमू-चमेवाच पठितव्यमित्यागयेन ठीकाकारैभीष्यमन्यया कृतम् त्राचार्यश्च तदन्-मोदितम्। भाष्यकाराणां त्वयमाशयः। प्रतिषेधपचे विकल्पे। भवत्येव। ऋग्नि-होषादानुष्ठाने से।मयागवैकल्यं तदननुष्ठाने यावन्जीवाग्निहोचसंकल्यवैकल्यः मित्यन्यतरवैकल्याभ्युपगमेनाग्निहोचच्योतिष्ट्रीमानुष्टानस्य तयेर्गिवकल्पं विना गत्यन्तराभावात् । किं च चादकप्राप्रक्रत्वर्थहामप्रतिषेथे पर्युदासाधिकरगपूर्वप-चन्यायेन प्रत्यचिष्रष्टहोमप्रतिषेधे च चतुर्विशन्मन्त्रतत्प्रतिषेधन्यायेनानिवाया ंविकल्प: । यदि **च विकल्प**प्रसत्त्यभावे ऽपि प्रदेशान्तरस्यवाक्यशेषभावेन तदन्व-यादिष विकल्पः पापीयानिति न्यायव्युत्पादनार्थे नदीविताधिकरणं स्यानदा स्तरां तदधिकरणसूचे।दाहरणं प्रकृते।पयोगि प्रदेशान्तरस्यानां कुशाच्छन्द:-स्तुत्युपगानविशेषवाक्यानां हाने।पादाने।भयविषयवाक्यस्य च प्रदेशान्तरस्थवा-क्वशेषभाव एव युक्ता न विकल्प इत्युपपादियितुं खलूदाहरग्रमन्विष्यतइति ।

ननु न ते। पशे। करोतीत्यर्थवाद इति टीकान्तमयुक्तं पूर्वमीमां-सके: खल्वपूर्वे चार्थवादः स्या*दित्यधिकरये न ते। पशे। करोतीति पशा-वाज्यभागयोः प्रतिषेधार्थः, न तु दार्शपीर्यमासिकाज्यभागस्तुत्यर्थे। ऽनुवादः ।

^{*} जैन् सून् आर् २० वान् द सून् ५।

पशाकाच्यभागप्रतिषेथस्याप्राप्रत्वात् । श्रधिकरगं तु न सेामे ऽध्वरइत्येतः द्विषयम् । तदित्यम् । अयं प्रतिषेधा ऽर्थवादे। वेति संशये सामाङ्गेषु दीच-गोयादिषु चेादकप्राप्रयोराज्यभागयारयं प्रतिषेधः तस्यैकशतं प्रयाजान्याजा इत्यव दीचणीयादाङ्गानां प्रयाजानूयाजानामिव तथाभूतये।राज्यभागये।रिष सामसंबन्धित्वेन कीर्तनापपतिरिति प्राप्तेः तथा सित न ते। पश्ची करो-तीत्येतद्वेयथ्ये स्यात् । न सेामे ऽध्वरदत्यत एव दीवगीयादिवत्सामाङ्गे अग्नीषे।मीयपेशा तद्विकृतिषु सवनीयादिषु चाच्यभागप्रतिषेथलाभात् । अतस्ता न पर्शावित्यस्यायं प्रतिवस्तूपमाविषया दृष्टान्तसमपेग्रेन स्तुत्यर्थे। ऽर्थेवाद इति । तस्मादयुक्तं ते। न पर्शावित्यस्य टीके।क्तमर्थवादत्वमित्यागङ्काह तथा क चित्पशुप्रकरणे ऽपीति । अयमाशयः । ते। न पशे। करोतीति ४३८ । ६ पशुप्रकरगे ऽपि किं चिद्वाक्यं टीकाकारैर्दृष्टमस्ति।तस्याज्यभागवज्ये प्रकृतिव-त्कुर्यादिति पर्युदासवृत्या प्रकृतिवच्छब्दशेषत्वेनान्वये सति तल्लब्थस्य पशाः षाज्यभागाभावस्यानुवादो न ते। प्रशाविति न से।मे इति से।मे नित्यप्राप्रस्य तदभावस्यानुवादः । उभयमपि विधेयाज्यभागस्तुत्यर्थमिति । एवं च प्रति-षेचपचे पद्यावाज्यभागयार्विकल्पः। पर्युदासपचे नित्यमेव वर्जनमिति विशेषः। यदापि दर्शपूर्णमासम्बरणास्नातस्येव न ते। पशावित्यस्य प्रकरणादुत्कृष्टस्य पर्युदासकृत्या पाशुक्रप्रकृतिवच्छब्दशेषत्वं वक्तुं शक्यम् प्राभाकरैरपि पर्युदा-चपचं चमर्थयमानेस्तथेवातां तथापि टीकात्तमनुवादत्वं पशुनकरणे तथाभूतं वाक्यं विना न निर्वहतीति तत्यद्वावा उङ्गीकृत: । अवधूतेति । लाके त्यतम्बन्नकर्माणमवधूतमाहुस्तव धूननस्य त्यागार्थत्वं प्रसिद्धमित्यर्थः। यदाप्यवधूतशब्दस्याक्तार्थेपरतायामवधूतकर्मेति प्रयाक्तव्यं तथापि विभक्तध-नेषु भ्रातृषु विभक्ता भ्रातर इतिवद्गम्यमानत्वादुनरपदस्याप्रयागः । घातूनां निर्दिष्टार्थेव्यतिरेकेणाप्पर्थान्तरसद्भावे शाब्दिका ज्ञापकमाहुः। धातुपाठे कुर्द खुर्द गुर्द गुद क्रीडायामेवेत्येवकारः पठाते स घात्वन्तराणां घातुपाठे निर्दिष्टादधीन्तरमप्यस्तीति चायपति जन्यया ऽर्धनिदेशादेव क्रीडामाचार्थः त्वसिद्धेरेवकारवैयर्थ्यादिति*॥

[्]रं श्रन पञ्चदशं हात्यधिकरसं पूर्णम्।

8३६ । २१

सांपराये तर्तव्याभावात्तया ह्यन्ये॥ २०॥

सुकृतदुष्कृतच्यस्ति । न च वाच्यं पर्यङ्कविद्यायामिर्चरादि-पर्यं प्राप्रस्य मध्ये चन्द्रेण सह संवादोत्तेः संवादस्य शरीरसाध्यत्वातदर्थे कमीपेचा उस्तीति विद्यासामध्यादेव मार्गे ऽपि शरीरलाभीपपतेः । अवश्यं हि विद्यायाः दिव्यशरीरोत्यादने ऽपि सामध्ये वत्तव्यम् । अन्यथा पर्यङ्कि-विद्यायामेव देवयानेन पथा ब्रह्मलोकं प्राप्रस्य पर्यङ्कस्थेन ब्रह्मणा सह संवादोत्तेः का गतिः ॥

४४१ । ११ गतेरर्थवत्त्वमुभयथा उन्यथा हि विरोधः ॥ २६॥

एनसः पापात् परीति । अपपरी वर्जने इति वर्जनाथे। ऽच परिशब्दः पञ्चम्यपाङ्परिभिरिति तदो।गे पञ्चमो । स्वकृतमन्यकृतं चास्मदनुभाव्यफलमेना वर्जयित्वा विनाश्य परिपालयतेति योजना । पिपृतेति । पृ पालन पूरग्रायोरिति धातुः । यदेनश्चकृमा वयं यद्वा ऽन्यकृतमारिम अनया
समिधा वयं सवै तदपमृन्महे इति सामवेदमन्त्रे इन्द्राग्नी मिचावक्षी। से।मे।
धाता बृहस्पतिः तेने। मुञ्चन्त्वेनसे। यदन्यकृतमारिमेति र्यजुर्वेदमन्त्रे चान्यकृतपापस्यान्यच सङ्कमग्रं स्पष्टमेव सूयते । एवमनेअमृतिप्रतिपद्वे ऽर्थे शङ्कानुत्थानाम्न तद्यावर्तनार्थत्वेन सूचं योजनीयमित्यि द्रष्ट्रव्यम् ।

४४२। १ अनियमः सर्वासामविरोधः शब्दानुमानाभ्याम् ॥ ३१॥

उभयत्रापिति । नारिष्टहोमानामप्यङ्गप्रधानार्थेर्बर्हिराज्यादिधर्मैः क्रितिपयधर्मवन्त्रमस्तीति भावः । श्रुत्याद्यो हि विप्रकारा इति । निन्वदं विशेषकयनमन्पपन्नं न्नीहिष्यितिनेरुपाऽनिरुप्रनेहिष्यितेन्द्रीयतेरप्यस्ति प्रकरणान्नाताऽनाम्नातानेकैन्द्रीषु साधारण्यात् । प्रकृताऽनुपयुक्तं चेदं प्रकारद्व- यक्रयनम् । न चैविमिति यचापीति च टीकायन्ययोः प्रकरणान्नाताऽनाम्नात्वान्यस्त्रान्त्रम्यात्वाद्विषयत्वस्येव स्पष्टं प्रतीयमानतया तयोः सामान्यविशेषविषययुः त्यादिविषयत्वाप्रतीतेः। उच्यते । इन्द्रो देवता अस्या इति विग्रहवाक्यसमानार्थत्वादैन्द्रीयुतेर्विग्रहवाक्यस्यस्य च सर्वनामः कदा चन स्तरीरसीति

^{*} अत्र वेडियं सांपरायाधिकरणं पूर्णम्।

[।] अत्र सप्तवशं गतिरथैवस्वाधिक्षरणं पूर्णम्।

सांपरायाधिकरणम् । गतेरर्थवन्वाधिकरणम् । ऋनियमाधिकरणम् । ५६९ प्रकृतेन्द्रीविषयत्वाद्रैन्द्रीश्रुतेविशेषविषयत्वमुत्तम् । यचापीति टीकायन्यस्य प्रकरणाभावे श्रुत्यादिकृतविनियागनिवीहाय प्रकरणं कल्पनीयमित्येतदर्थप-रत्वं न युक्तम् । न हि यदाहवनीय जुहातीत्यनारभ्याधीतश्रीतविनियागे यस्य पर्यमियी जुहूभेवतीत्यनारभ्याधीतवात्र्यविनियोगे च श्रुतिवात्र्याभ्यां प्रकरणकल्पनमिष्यते । तथा सनि श्रुत्यादिषूत्तरीत्तरमेव पूर्वपूर्वकल्पनाम-पेद्य प्रमाणं न तु पूर्वपूर्वमुत्तरीतरऋज्यनामपेच्छेति बलाऽबलाधिकरणमया-दाभङ्गापतेः । तस्मात् क्रृप्रकल्पनीयप्रकरणकयुत्यादिविषयत्वमुदाहृतटीकावा-क्यद्वयस्यानुषपन्नमित्याले।क्याचार्येत्रिषयान्तरं दर्शितम् । वस्तुतस्त्वप्रकरणा-म्नात यत्यादि कृतविनियागनिर्वाहाय प्रकरणकल्पनमपि टीकाक्तमुपपादयितुं शक्यम् । श्रुत्यादिषूतरोत्तरस्य स्थपरिच्छेद्यप्रमेये पूर्वपूर्वकल्पनापेता हि बला-बलाधिकरणदेविन्यहेतुत्वेन दर्शिता सा ऽच नाच्यते कि त्वनारभ्याधीतम् त्यादि कृतविशेषविनिये।गनिवीहायापूर्वेदमध्येह्रएसामान्यविनिये।गहेतुत्वाका-ङ्कानवगाप्रकरगाकल्पनमुच्यते । न च प्रमेयभेदेनान्यापेवामाचं स्वप्रमेयपरि-च्छेद। श्रां श्रत्यादिप्रवृत्तिं निरुन्धे येन प्रकरणादिह श्रत्यादीनां बलाबलाधिक-रयोकदीर्बल्यमापतेदिति ।

प्रकरणस्य वाक्याद्वाधमाशङ्क्याहृति । यद्यपि वाक्यस्यादि ४४३ । द स्वप्रमेयविशेषविनियोगिनवे।हाय सामान्यविनियोगहेतुप्रकरणापेवणमनुपद-मेवोक्तामिति वाक्येन स्वापेवितप्रकरणबाधनमशक्यशङ्कं तथापि यथा कथं वित्यकरणबाधकत्वेन शङ्कनीयं वाक्यमप्यच नास्तीति दर्शयतुं शङ्कात्या-पनमिति द्रष्ट्रव्यम् । सिद्धान्ते प्रकरणस्य वाक्याविरोधिन एव वाक्येन सामान्यसंबन्धिनवे।हायान्वेषणं न तु विरोधिनो ऽपीति यदुक्तम् इदं स्वीसां विद्यानां गत्यपेवालवणिलङ्गस्यापि समानम् । लिङ्गमपि हि स्वविरोधिप्रकरणं नानुरुन्थे दर्शपूर्णमासप्रकरणादिभ्यः पूषाद्यनुमन्त्रणमन्त्राणां पूषदेवताकयाः गादिषूत्वक्षीभ्यपगमात् । ननु विद्याद्वये गत्यास्नानमनुचिन्तन।धैमित्येतदन्यक्तम् । स्वीस्वपि विद्यासु गतिरनुचिन्तनीया तत्कतुन्यायाद्वतेरप्यान्तरा-लिकविद्याफलत्वात् गतमितः प्रेत्यानिसंभवितास्मीति शाणिङ्क्यविद्यायां ब्रह्मप्राप्रिवद्वतेरप्यनुचिन्तनीयकाटे। निवेशनात् । तच हि प्रेत्येति प्रकर्षेण गमनं दूराध्वगमनमुच्यते ततु देवयानमागंगमनमेव भवति । सूचकारे- वेदान्तकल्पतसपरिमले [ऋ ३ पा ३ ऋधि १८-२२

गापि चतुर्थाध्याये गत्यनुचिन्तनस्य सक्तविद्यासाधारययमुक्तं विद्यासाम्मध्यातच्छेषगत्यनुस्पृतियोगाच्चेति । गतिचिन्तनस्य सर्वेब्रह्मविद्यासाधारयये ऽपि पञ्चाग्निविद्यायां ब्रह्मविषयायां प्राप्ययेत्वेन तद्यइत्यं विदुरिति वचनं सफलम् । उपकोसलविद्यायाम् अय यदु चैवास्मिन् शव्यं कुर्वन्ति यदु चनेत्यारभ्याचिरादिमागक्षयनम् अचिपुरुषोपासकस्य पुचैर्दहनकर्मणा ऽकृतत्वे ऽपि त्वरितमेवाचिरादिगतिप्राप्तिरस्ति न विद्यान्तरशीलिनामिव तत्प्राप्ते विलम्बो अस्तीति विशेषप्रदर्शनार्थत्वेन सफलम् । यतेन प्रतिपद्य-माना इमं मानवं नावतेन्तइत्यनावृत्तिफलस्कृपविशेषप्रदर्शनेनापि सफलम् । तस्मादुभयचाम्नात्रमनुचिन्तनार्थमित्येतत्कथमुपपादनीयमिति चेत्। इत्यम् । यत् प्राप्ययमाम्नानं यच्च विशेषप्रदर्शनाये तदनुचिन्तनार्थमित चेत्। इत्यम् । यत् प्राप्ययमाम्नानं यच्च विशेषप्रदर्शनाये तदनुचिन्तनार्थमि भवति । अनु-चिन्तनमेव हि साचाद्विद्याशेषः तद्विषयभूता गतिः क्वाचित्कस्तदीया विशे-षश्चानुचिन्तनिर्वाहार्थत्वेन कथिते। ऽतः प्राधान्यादनुचिन्तनं फलत्वेनोनकमिति न क्विच्छेषः ॥

४४४ । ६ यावदिधिकारमवस्थितिराधिकारिकागाम् ॥ ३२ ॥

438

ऐश्वर्यफलकत्विमिति । निर्गुणविद्यायाः परममुलिफलकत्वाऽसंभवे निर्गुणविद्यावाक्यशेषामातं सत्तव प्रयेति जचत् क्रीडन् रममाणः स्त्रीभिवा यानै-वैत्यादिसगुणविद्याफलकोतेनं निर्गुणविद्याफलमेवाभ्युपेतं स्यादिति भावः ।

वारवन्तादिपद्वन्तीति । ऋष्वं नत्वा वारवन्तमिति वारवन्तपदवत्यामृचि गीतं साम वारवन्तीयम् । यज्ञायज्ञा वे। ऋग्नयइति यज्ञायज्ञापदवत्यामृचि गीतं साम यज्ञायज्ञीयम् । वामदेव्यं तु वामदेवेन दृष्टं
साम । वारवन्तादिपदवन्तीति बहुवचनं क्रविन्यायेन योज्यम् । उत्पत्त्यादिषु मध्यइति । यद्यपि सर्वेषां विधीनामृत्यत्तिविनियागप्रयोगाधिकारशक्रिरस्ति तथापि लाघवाथै विधयो विध्यन्तरप्राप्यांशं विहायाग्रामांशमावे

^{*} श्रत्र श्रष्टादशम् श्रनियमाधिकरणं पूर्णम् ।

[†] अत्र जनविश्रम् यावदधिकाराधिकरणं पूर्णम् ।

विश्वाम्य न्ति वेयया दर्शपूर्णमासयोर्यदाग्नेया ऽष्टाकपाल इत्यादय उत्पत्तिविध्यः । दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वगंकामा यजेतेत्यधिकारविधिः । स एवाङ्गवान्ययेरकवाक्यतापन्ना विनियागविधिः । पौर्णमास्यां पूर्णमास्या यजेत स्रमान्वास्यया यजेतेति प्रयोगविधिः । विध्यन्तराभावे त्वेकस्यैव विधेष्टात्रहृष्यम् । यथा ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत्रजाकाम इति ॥

इयदामननात्॥ ३४॥

इह । ६८४

त्रव गुहाधिकरणेन पै।नक्त्यमाशङ्क्य तवाता पिबळ्ळव्दस्य लचणा न युक्ता मुख्यार्थमंभवात् । न च प्रकरणेन वात्र्यशेषेण वा लचणा । ताभ्यां वलीयमे। वाक्यस्य बाधायोगादित्यधिकाशङ्कामुद्राव्य न केवलं प्रकरणेन वाक्यस्य बाध उच्यते किं तूपक्रमे।पमंहारैकहृप्यावगमितमहावाक्यविरे।धेना-वान्तरवाक्यस्य बाध उच्यतहति परिहारव्युत्पादनार्थत्वेनाधिकरणस्य माफल्यम् ल्यमुक्तमिति प्रतीयते । तवे।पक्रमे।पमंहारानुमारेण मध्यमवाक्यं नेयमित्येत-दिष प्रतदेनाधिकरणदिषु बहुशः चुण्णम् । तस्मादित्यमधिकरणस्य माफल्यं वक्तव्यम्। मन्त्रयोरीत्यितकदित्वविशिष्टमाध्यात्मिकं वस्तुद्वयं तावत्प्रतिपादां तद्योभयचाप्यभिन्नमिति प्रतीयते । तुल्याभिधानहृपममाख्याप्रमाणवशादिति टीके।क्तन्यायव्युत्पादनार्थमिदमधिकरणम् । न च ममाख्यायाः किं चिद्वाध-कर्मस्ति प्रत्युतानुग्राहकमेवास्तीति बाधकाभावं व्यतिरेकमुखेन व्यवस्थाप-यितुमुपक्रमे।पमंहारप्रदर्शनमिति ॥

श्रन्तरा भूतग्रामवत्स्वात्मनः ॥ ३५ ॥

882 1 60

युवेति । ऋपत्यं पैत्रप्रभृति गावं जीवति तु वंश्ये युवेति पाणिनी-योक्तलचणं युवापत्यमित्यर्थः । ऋपरोत्त्वादिति । व्यत्ययो बहुलमिति द्यान्दसेन विभक्तिव्यत्ययेन प्रथमार्थे पञ्चमी । ऋभ्यासात् सर्वान्तरत्व-प्रत्यभिज्ञानाचेति । ननु द्वावच पूर्वपच्चा । उभयच वेद्यभेद इत्येकः । वेद्याऽभेदे ऽप्यभ्यासाद्विद्याभेद इति द्वितीयः । तचाद्यनिराकरण्यव सर्वान्त-रत्वप्रत्यभिज्ञायुक्तः ।न द्वितीयनिराकरणे सर्वान्तरत्वप्रत्यभिज्ञानस्याविशेष-

^{*} अत्र विशम् **त्रात्तरध्यधिकरणं पूर्ण**म् ।

[†] अत्र एकविंशम् द्यवधिकरणं पूर्णम्।

वेदान्तकल्पतस्परिमले [अ ३ पा ३ अधि २२-२४ पुनः श्ववग्रह्णभ्यासे।पणादकतया द्वितीयपचग्वापपादकत्वस्याचार्यैरग्रे बद्ध-मागत्वात् । तस्य तु निराकरणम् ऋभ्यामासिद्धान्ययासिद्धिभ्यां करिष्यते । सत्यम् । प्रथमपूर्वपर्वानराकरणयुक्तिरेवाच सिद्धान्तके।ट्युपपादकयुक्तित्वेन लिखिता द्वितीयपूर्वपचे निराकरणयुक्तिन्तु वद्यमाणा चातुं शक्येति न लिखिता* ॥

व्यतिहारे। विशिषन्ति हीतरवत्॥ ३०॥ 840 1 3

भाष्यकारैरिधकरगानो जावालैरैतरीयभिश्च प्रदर्शितस्य व्यतिहारस्य समाने विषये उपसंहार: कार्य इत्युक्तम् । तच समाने विषये इत्येतत्समा-नगुगविद्यान्तरविषयं सकलाहंग्रहोपासनापरं वानु ॥

सैव हि सत्यादयः॥ ३६॥ 99 1 90

निन्वहाधिकरणे सत्यविद्याभेदाभेदचिन्तावत्सत्यहृदयिद्याभेदाभे-दचिन्ता ऽपि कतुँ शक्यते सत्यविद्यायां जयतीमान् लाकानिति फलनिर्देशः हृदयिवद्यायामेष प्रजापतियदुदयमेतदु होतत्सवे तदेतत् च्यत्तरं हृदयमिति हु इत्येकमचरमभिहरन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य गवं वेद इत्येकमचरं द इत्य-स्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद यमित्येकमचरमेति स्वग लोकं य एवं वेदेति फलनिर्देशभेदः पूर्वण्चन्यायस्तुल्यः । तच्छब्दद्वयेन प्रकृतहृदयब्रह्मस्वरूपप्र-कारपरामर्थेन तस्यैव हृदयाख्यस्य ब्रह्मणः सत्यह्रपताच्यतहति वेद्याभेदाद्व विद्याभेदः । फलनिर्देशभेदस्विसिद्धः जयतीमान् लेकानिति प्रधानब्रह्मेपा-सनायाः फलवन्वे सिद्धे तदङ्गहृदङ्गहृदयनामाचरे।पासनाफलनिदैशस्यार्थवा-दत्वात् । प्रधाने ऽप्येवंकामषदेन फलनिदेंशाभावात् । सवन्यायेन फल-विपरिगामे कल्पनीये प्रधाने तदवयवे यत्किञ्चित्फलं श्रुतं सर्वस्यापि जातेष्ट्रि-फलन्यायेन समुच्चयकल्पने।पपतेश्चेति सिद्धान्तन्याये। ऽपि तुल्यः । ऋष एव प्रजापतियेद्भुदयमित्यारभ्य तस्ये।पनिषदहमिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेदेत्यन्तेन संदर्भेण विधीयमानैकैव विद्येत्येवमधिकरणव्यत्याद्ये उर्थे वक्तव्ये किमिति स या ह वैतिदिति मध्ये गृहीत्वा भेदाभेदिचन्ता।

अन हाविशम् ग्रन्तरत्वाधिकरणं पूर्णम् ।

[†] अन्न चयेविंशं व्यतिहाराधिकरशं पूर्णम्।

व्यतिहाराधिकरणम् । सत्यादाधिकरणम् । कामादाधिकरणम् । ५६५ उच्यते । एकदेशे कृता चिन्ता तुल्यन्यायतयैकदेशान्तरे ऽपि संचारयितुं शक्येति क्ष चिदियं चिन्ता कृता* ॥

कामादीतरत्र तत्र चायतनादिभ्यः ॥ ३६॥

४५१ । २०

तस्य न स्थानता ऽपीति। उपलच्चणमेतत्। इहाव्यधिकरणे भाष्य-कारैबृहदारययकेक्ता निर्गुणविद्या तत्पूर्वीतरमन्दर्भादाहरणेन छान्दोग्य-वर्षिता सगुणविद्येत्येतांश्च सत्यान् कामानिति तचत्यवाक्योदाहरणेन च स्पष्टीकृतम् । ग्रतांश्च सत्यान् कामानित्येतदुदाहरग्रेनापि बृहदारग्यकीका विद्या निर्गुणविद्येति व्यञ्जितम् । ऋयमिति चेत् । इत्यम् । विद्यान्तरे-षूपास्यगुणानामुपदेशमाचं कृतं तावतैव गुणविशिष्टोपासना सिद्धातीति । ष्ट्रह तु गुगानामप्युपासना विधीयते तत्किमधै बृहदारग्यके उपसंहृता यते निर्गुणप्रकरणानुषारेणानुषास्यास्तयेहाप्यनुषास्या मा भूवज्ञित्येतदर्थ-मित्येव कल्पनीयम् प्रयोजनान्तराभावात् । कामशब्दधंगृहीतगुणजातव्यति-रिकदावापृथिव्यादिसमानाधारत्वश्रमुखगुणानामनुपास्यतायाः प्रयोजकत्वक-ल्पने परिसंख्यार्थेत्वप्रसङ्गात् । गुणानां पृथगुपासनासिद्धार्थेत्वं स्यादिति चेन्न तावद्धर्मिणं विना उपासना पृथगुपासनां युता सत्यकामादिशब्दानां र्धामपर्यन्तत्वेन गुणापासनाविधाने ऽपि गुणविधिष्ठधर्म्युपासनाप्राप्ते: । नापि धर्मिविशेषगतयैव गुगानां क्रमेगोपासना पृथगुपासना शापिडल्यविद्यादिषु मनामयादिगुणानामपि तथैवापासनेति तता विशेषाभावात् । नापि गुण-विशेष्यकीपासना पृथगुपासना । तस्यापि विवित्तत्वे श्रस्मिन् कामाः समा-हिता इति गुर्णावशेष्यकोपदेशतस्त्रह्माभात् । तस्मादस्मदुक्तमेव तत्प्र-ये।जनमिति युक्तम् । तन्मुखेन च भाष्यकारैवीजसनेयाकविद्याया निर्गुण-विद्यात्वं व्यञ्जितम् । ननु छान्दोग्यवाजसनेयके।त्तविद्यये।: सगुर्यानगुँगा-विषयतया भेदे ऽप्यायतनत्वादिषाम्यमाचेण परस्परगुणीपपंहारे समा-ख्याभेदेन भिन्नये।र्दहरशागिडल्यविद्यये।रपि परस्परगुगो।पर्महारः स्यात् तये।-रिष हृदयायतनत्वमेतत्सत्यं ब्रह्मपुरं मनामया ऽयं पुरुषा भाः सत्यमित्युत्तं सत्यत्वम् । त्रथ य त्रात्मा स सेतुर्विधृतिः सत्यधृतिरित्युक्ता धृतिः । चत्यकामः चत्यसङ्कल्पः भारूपः चत्यसङ्कल्प इत्युक्तं सत्यसङ्कल्प-

^{*} अत्र **व**तुर्विभं सत्याद्यधिकरणं पूर्णम् ।

334

वेदान्तकल्पतहपरिमले [अर ३ पा ३ ऋथि २५-२६ त्वम् । सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिरित्युभयषायुक्ते सर्वेश्वरत्वसर्वाधि-पतित्वे चेत्येवं बहवा गुणाः समाना दृश्यन्तदति चेत् । नाच साचानमुख्य उपासनार्थगुणोपसंहार उचाते। किं त्वेकैकच मुतानां गुणानामन्यचापि सत्यकामत्वादिसामर्थ्येन हृदयायतनत्वादिसाम्येन चे।पस्थितानां स्तुति-प्रकर्षमाच्ययोजनतोच्यते । एवमेव हि ध्येयत्वमपूर्वमित्यादिना स्रता उन्त-भावमाषमुष्पंहार इत्यन्तेन प्राक्तनयन्धेनाक्तम् । श्रन्यषाध्ययं न्याये। भव-त्विति चेद् भवतु नाम नैतावता विद्याभेदे ध्यानार्थगुगोपसंहारप्रसङ्गः ॥

४५२ । १३

आदरादलापः ॥ ४०॥

पूर्वे। तिथिभ्य इत्यादिस्तुत्युपपत्त्यर्थिमिति। यद्यपि पूर्वे। ऽति-थिभ्यो ऽश्नीयादित्ययं विधिः यथा वै स्वयमहुत्वेत्यादिस्तदर्थवाद एव स्तावकः तथाप्यर्थवादा यथा विधेये आदरावहः एवमिह पूर्वा-तिथिभ्य इति विधिरिष प्राणाग्निहोचे त्रादरावह इति साम्याद्विधिरिष स्तुतिकाटी निर्विशितः । यद्वा पूर्वे।तिथिभ्यो ऽश्नीयादित्ययमादियस्येत्य-तङ्ग्यसंविज्ञानबहुत्रीहिणा ऽधैवादांश एव गृहीत: । यदेतद्ज्ञाभ्यञ्जन-मिति । अद्याभ्यञ्जनमप्येकष्टायनीनयनस्य प्रयोजकं चेदचाभ्यञ्जनात्प्राक् पदपांस्वपचारे तत्संपादनाथै पुनरप्येकहायनीनयनं कार्यम् ऋप्रयोज्ञकं चेत्पुनस्तन्न कार्यम् श्रवाभ्यञ्जनं तु पांश्वन्तरेणान्येन वा कार्यमिति फल-भेदः । (नन्वेकहायनीक्रयार्थानयनं क्रयाभ्यञ्जनाभयार्थमस्तु । उभयारिष नयनसाध्यत्वाविशेषादित्याशङ्क्याह यद्थी च सेति । यदर्थद्वयं तत्संस्का-रोषि द्रव्यद्वारा तद्र्थे एव स्यादिति भावः । सप्तमपद्रपांशुग्रहणुमि-त्यर्थ इति । एवं च टीकाकारपचे पदकर्मित सूचपदेन पदवांशुग्रहणं विविचतं तद्विषय: प्रयोजकत्वाप्रयोजकत्वविचार इति प्रथमं शिलायां सप्र-मपदनिधाने पदपांशुग्रहणार्थे पुनरप्येकहायनीनयनं पूर्वपचे कार्य पिद्धान्ते नेति फलभेद: †।) पचद्वये ऽपि पूर्वपचिद्धान्तन्याया समाना वस्तुतः प्रांशुग्रहग्रमचाभ्यञ्जनं चेत्युभ्यमप्यधिकरग्रस्योदाहरग्रम् । एकस्मिनुदाहृते न्यायसाम्यादन्यदप्युदाहरणमुपगन्तुं शक्यमित्यभिग्रेत्य टीकाकारैः प्रथमा-तिक्रमे कारणं नास्तीति पांशुग्रहणमुदाहृतम् । त्राचार्यस्वचाञ्जनमप्यु-

^{*} अत्र पश्चविंगं कामाद्यधिकरणं कूर्णम् । ृ ं () एकमध्यमे सन्ये। नास्ति २ पुः ।

दाहरणमिति स्पष्टीकते तदुदाहृतम् । तस्येकहायनीनयनसाध्यतायाः पांशुग्रहणद्वारकतया तस्येकहायनीनयनप्रयाजकत्वसमर्थनेनेव पांशुग्रहण-स्यापि तत्प्रयाजकत्वसामर्थ्यात्समर्थितं भवतीति तन्नोदाहृतम् ।

प्रागुच्यमानमशनमप्य*ग्निहोत्रमेवेति । त्रत ग्वाधिकरणा- ४५३ । ११ रम्भे पादसङ्गितः । टीकायां प्राणाग्निहोत्रमेव पूर्वभाजनशब्देने। कम् । स्वामिभाजनमित्यध्याहार इति। यदितिथिभाजने।तरकालं विहितं स्वामिभाजनं समयादणकृष्येत्यच विद्यमानं स्वामिभाजनपदम् ऋपकर्षकर्म-समर्थेकतया द्वितीयान्तमित्यभिग्नेत्य विहितमित्यस्यान्वयार्थे प्रथमान्तस्य स्वामिभे।जनपदान्तरस्याध्याहार उत्तः । वस्तुतस्तु तदेव पदं प्रथमान्तं वतुं शक्यम् । ऋषकृष्य विहितमित्यच विधानहृपप्रधानक्रियाकर्मग्री ऽसि-हितत्वमाचेगाम्रुतपदस्य प्रथमान्तत्वोपपतेः । स्रयं ब्राह्मगस्तते। ऽपकृष्याच नीत इत्यादिप्रयोगदर्शनात् । त्रता नाध्याहारानुषङ्गापेवा । उपसदादि-भर्म इति । उपसद श्रादया यस्याग्निहात्रस्य तदुपसदादि । भावप्रधाना निर्देश: । तथा चाष्मदादित्वधर्म: उष्मदानन्तर्भधर्म इत्यर्थ: । देव-तान्तरायरुद्धत्यादिति । त्राग्नेयमष्टाकपालमग्नीषामीयमेकादशकपाल-मित्यादिविधिभिः कृत्स्त्रस्य पुरोडागस्य देवतान्तरार्थत्वावगमादित्यर्थः । न च द्यवदानमाचस्याग्ने। प्रचेषातावदेवाग्न्यादार्थमिति शङ्कनीयमुत्पतिवा-क्यानुसारात् । कृत्स्त्रेन पुरोडाशेनाग्न्यादियागः ग्रृप्रचेपमाचं द्यावदानस्य तिन द्युवदानप्रचेपकाले कृत्स्तः पुरोडाशा उग्न्यादिदेवतायै मनसा त्यक्तव्य इति सर्वप्रदानाधिकरये वार्तिककारै: स्थापितत्वात् । प्राणिमात्रस्य वराहमेषहरि-गादे: । उत्तं च वार्तिके ऽपि जाचन्यधिकरग्रे । नावश्यमिति यच्छागा-देव ग्रहीतव्या जायनी जायनीनामकावयवमाच्यवगादिति । स्रिनित्यानां च प्रारब्धानामिति । प्रारब्धकाम्यकर्मगामित्यर्थः । अविशिष्टत्वेन प्रत्यभिज्ञानादिति । प्रतिनिधिद्रव्येषु नीवारादिषु मुख्यब्रीह्यादिद्रव्याव-यवानुप्रवेशप्रयुक्तमादृश्यमूलात्प्रत्यभिज्ञानादित्यर्थः । नाग्निहोत्रहवणीति । ४५५ । ४ यदाप्यग्निहोनं यया होष्यते सा ऽप्यग्निहोन्दहवर्गीति वतुं शक्या ल्युटो हि भूतकाले विधानामावात् तथापि भाव्यर्थे प्रमागाभावात् प्रवृत्तिनि-

^{*} उच्चमानमप्यश्रनमिति २-५ पु्षाः।

मित्त, निर्धारणाय यया अनिहोचं हुतं सैवानिहोचहवणी बाह्येति माव:। ४५५ । ४ तक्रिशिष्टत्वेन श्रुतस्येति । यदापि चतुरो मुष्टोन्निवेपतीति संख्यामुष्टि-विधिष्ठे निवीपे विहिते ऋग्निहे। बहवरयेति वाक्यान्तरेग तत्साधनमाचं विधीयेत तथापि तस्मिन्वाक्ये साधनविशेषविशिष्टत्वप्रतीतिरस्तीति तद्वि-शिष्टुत्वयवग्रमुक्तम् । पश्चात्प्राभातीति । यदाप्यखग्डापकारमुखेन सक-लपदार्थानां युगपदेव प्रापकश्चोदकः न तु चादकस्य प्रतिपदार्थे पृथम्या-पारे। ऽस्ति न वा प्रतिपदार्थे चे।दक्षमेदे। ऽस्ति तथापि प्रकृतिवच्छब्देन युगपत्याप्रेष्विप पदार्थेष्वनुष्ठानकाले तत्तदवान्तरापकारापेवाक्रमेण तत्तदु-पकारजनकपटाथानुष्ठान।पेक्षित्रजुद्धिक्रमा ऽस्तीत्येतदवलम्ब्य प्राप्तिपीर्वापर्य-मुक्तम् । अर्थवाद्गतस्त्विति । से।मा वै वाजिनिमत्यर्थवादे से।मे वाजि-नशब्दवदेव वे दर्शपूर्णमासयारवभृय इति अर्थवादे अपां व्यत्सेके अव-भृषणब्दवच्च सिद्धसादृश्यमाचपर इत्यर्थः । परिमाणविशेषवानिति । गुञ्जाबीजपरिमाणं परिमाणविशेष:। अवघाताद्यंइति । ऋदिशब्देन निष्मलीकरणग्रहणम् । ननु वितुषीभावादिलचणद्वाराभावे बाध एव युक्त इति क्रथं पूर्वपत्त इत्यवाह अचराचिति । अनवस्नावितान्तर जव्मपक्षीद-नविशेषवाची चरुशब्द इति दशमे निर्णीतम्। तथा चाचरै। चरुशब्दीयं चर्ध्यमाणाम् अवधातादीनामतिदेशकः स्यादित्यर्थः । सत्यां गता विधा गाणत्वायागाहिति। अनिहावशब्दस्तु द्रव्यदेवतापेचावशाद्धि-धिगता गोगो। ऽभ्यूपगतः । न चेहावघाताद्यपेचा ऽस्तीत वैषम्यमिति भावः । गत्यभावादिति । द्वारलापात् श्रपणवद्विशेषविध्यभावाचेति भातः । नन्वतिथिभाजने।तरकालमित्यादिशङ्कायाः पूर्वपचोपयागं दर्शयति ननु स्वामिभे।जनस्येति । श्रतः प्राणाग्निहोत्रस्यैवेति । तथा चाद-रिलङ्गस्य न परिहारिसिद्धिरिति भाव: ॥

४५६ । ट तिव्विधारणानियमस्तद्वृष्टेः पृथाग्यप्रतिबन्धः फलम् ॥ ४२॥ रात्रिसत्राणामगत्या विपरिणाम त्राश्रित इति । ननु विप-रिणामाऽनात्रयणे त्रर्थवादमानता स्थात् सा च फलविपरिमात्रयणान् जध-

^{*} अत्र विक्रंशम् ग्रादराधिकरणं पूर्णम्।

कतूपकारस्य सिद्धत्वादिति । प्रयाजाञ्जनयोः प्रकरणात् क्रतू- ४५७ । ५ पकारमिद्धिः पर्यातायास्तु फलकल्पनापचे ऽपि क्रतूपस्थित्यवश्यंभावात् । सा सप्तम्यर्थेति । नन्वादित्यादिमतय । इत्यादाधिकरणे द्वितीया सप्त-म्यर्थेति न बद्धते किंतु कर्मार्थैव । सप्रमी तु तृतीयाथी । तेन लेकिश-ब्दस्य ले। कदृष्टिपरत्वमङ्गीकृत्य ले। कदृष्ट्या सामे। पासीतेत्यर्थे इति वच्यते । सत्यम् । इह सप्रम्यर्थेति वत्यतइत्यस्यायमथे: । सामदृष्ट्या लेाकानुपासीतिति तदधिकरग्रपूर्वपचे लेकिव्विति सप्रम्या या उर्धः अनीव्यितकर्मत्वं लेकाना-मन्यवापि नियुक्तानाम् असंस्कार्यतयेप्सितकर्मत्वायागात् तदेव तत्त्व-द्धान्ते सामेति द्वितीयाया ऋषे इति वच्यतइति । यदापि कमीथीपरित्या-गमाचं वत्यते न तु कर्मणा ऽनीप्सिनत्वं तथाप्युपासनायाः कर्मार्थत्वासं-भवाद् अर्थादनीप्सितत्वे पर्यवसानं भवति कर्मणामुपासनार्थतायां हि दृष्टार्थेता लभ्यते निरालम्बनापाचनानुपपत्तेरालम्बनस्य तदपेचितत्वात् । उपासनायाः कर्मार्थत्वे ऽदृष्टार्थता स्याद् उपासनेनाद्गीचाटिषूत्पत्तिप्राप्निविकृ-तीनामसंभवेनादृष्टुसंस्कारस्येव वक्तव्यत्वात् । दृष्टादृष्टुफलपर्यव वाय्यन्वयद्वयसं-भवे च दृष्टफलपर्य्यवसाय्येवान्वया ग्राह्य: । त्रत एव खलेवाली यूपा भव-तीत्यस्य यः खादिरादिः प्रकृतितः प्राप्ना पूर्यः तस्य खलेवाल्याकृतिपरतायां त्वदृष्टार्थेता स्यादिति विधेर्दृष्टार्थेत्वलिप्सया खलेवाल्या यूपकार्ये विधिरा-

^{*} कतूपकरणानुगततामिति २ युः पाः । † ब्रादित्यादित्यादिमतय इति २ युः।

ष्प्रतः । ननु तेने।ङ्कारेग्रीभाविष कुरुत इत्यादिना आध्यादिगुगकविचानस्य षोडिशिग्रहगवदिनियताङ्गत्वमङ्गीकृत्य तिद्वचानाऽविचानयेाः फलाभेदं पूर्वप-चियत्वा बोडिशियहगण्चे इवाङ्गभूयस्त्वात् फलभूयस्त्वेन न्यायिद्धेन सिद्धान्तः क्रियतहिन। तेनामा कुमत इत्यादिश्रुतिकाष्ट्याता। इदं व्याख्यानं विद्ययेति तृतीयायुत्या विज्ञानस्य क्रमाङ्गत्वप्रतीतेः वीयेवतरमिति तरपा विज्ञानपवे फलभूयस्त्वप्रतीतेश्व श्रुतिस्वारस्यानुसार्येषि प्रकृताधिकरगार्थेविरुद्धम् । उच्यते । युतै। वीर्यशब्देन फलं ने। च्यते । वीर्य हि लोके कार्यानुकूलं बलमिति प्रिष्टुं न तु कार्यमेव । बलवतरत्वं च कर्मणः स्वफलजननप्रतिबन्धका-पेत्या वक्तव्यम् । श्रन्यस्य प्रकृतानुपयागात् । श्रतः स्वफलढानान्मुखेन विरोधिकमीन्तरेगाप्रतिबन्धकृषं फलान्तरवन्वं वीर्यवत्तरत्वमित्योचित्याद-वसीयते । एवं च विद्ययेति तृतीयाश्रुति: फलान्तराथेस्य विज्ञानस्य मुख्यं कर्मशेषत्वं न प्रतिपादयति किं तु कर्मभिरविलम्बेन फले जननीये तदुषकारकत्वकृपं मुख्यमेव शेषत्वमिति न श्रुतेरङ्गभूयस्त्वात् फलभूयस्त्व-मित्यस्मिन्नर्थे स्वारस्यं किं तु पृथम्यप्रतिबन्धः फलमिति सूचे।क्तग्वार्थे। तस्मादङ्गाधिक्यात्फलाधिक्यमित्याचार्यवचनम् ऋतिबन्धे।पक्षारजनक्षसा-हित्यात् फलस्याविलम्बलचग्रम् इत्येतत्परतया व्याख्येयम्*॥

84€ 1 4

प्रदानवदेव तदुक्तम्॥ ४३॥

नन् वायुप्राणयोध्तत्वाऽभेदेऽध्यवस्थाभेदाद् भेदे। न वायुक्तिये पृथगुपदेशादित्यधिकरणे निर्णातः । ततः प्रयोगभेद उपपन्न इत्याशङ्क्य हेत्वन्तरमाह तत्प्राप्तिसत्त्व्योति । नन् वाजमनेयके श्रध्यातमप्राणश्रेष्ट्रगन्विन्तनस्य तेन ह वाव तत्कुलमाचत्तते यिस्मिन् कुले भवतीति य एवं वेदेति
फलमुङ्क्षा श्रद्याधिदेवतिमत्युपक्रान्तस्य वायुश्रेष्ट्रगन्तिनस्य तेन एतस्यै
देवताये मायुक्यं मलोकतां जयतीति फलान्तरमुक्तम् । श्रतो वाजमनेयके
फलेक्यं सिद्धम् । छान्देग्ये श्रद्भवानन्नादे। भवति य एवं वेदेत्युत्पत्तिवाक्यश्रतफलेक्येपि तत्फलमुपास्यदेवताप्राणिह्यं न भवति । श्रतस्तत्प्राणिलचणफलेक्योदिति हेते।ह्मयचापि नान्वय इति चेत् । उच्यते । वाजमनेयके ये।

^{*} अत्र सप्तविशं तिविधारणाधिकरणं पूर्णम् ।

[†] फलेक्बं किन्द्रमिति २ पुः याः ।

ऽयं मध्यमः प्राणः प्राणाद्वा एष सूर्य उदेतीत्युपक्रमोषपं हारैकहृत्यात् कृत्स्व-मणीदं प्रकरणमेकविद्याविषयमिति उपमंहार युतदेवतासायु च्याहृषक्षेत्रयमु-सम् । अर्थवादान्तरप्राप्तं कुलश्रेष्ट्यं फलान्तरं भवति चेद् भवतु नाम द्वान्दोग्ये तत्प्राप्तिनवणकलाऽश्रवणे ऽपि पूर्वपचे हेतुत्रया उपेचितस्य फलेक्यस्य सद्भावो उस्तीति तावता संगतिः । उपास्यभेदफलेक्ये यद्यपि सत्यविद्यायामपि स्तः तथापि तवाद्यादित्यस्थानभेदात्पृथगन्चिन्तनं व्यक्तमिति पूर्वपचसंभावनार्थे प्राणश्रेष्ठ्यविद्या संवर्गविद्या चादाहृता । वत्कारो धर्मस्येति । दिधितण्डुलादि-वदिति वित्यत्ययो ऽध्यात्ममधिदैवतं च भिन्नस्य गुणजातस्योपमार्थे इत्यथैः ।

देवताकाण्डाधिकरणस्येति । यद्यवि संकर्षकाण्डा न देवतावि- ४५८ । २० चाराष्टे प्रवर्तितः किं तु द्वादशलचग्यविचारितनानाविषयन्यायविचारात्मक-स्तत्परिशिष्टः तन्त्रप्रसङ्गवदुपदेशातिदेशमाधारग्येन प्रकीर्यकः प्रवर्तितः । न हि तच देवताविचारेणापक्रम उपसंहारा वा ऽस्ति तच ह्यनुयजतीत्यनुवषट्-कारश्चोद्यतहति सूचेण प्रथमं से।मस्याग्ने वीहीत्यनुयजतीत्यच किमैन्द्रवाय-वादियागेषु मन्त्रविधानमुत कर्मान्तरविधानमिति विचारेगोपक्रमः पशा-बुत्तमे प्रयाचे सुगादापने। न विदाते संप्रेषितत्वाद् विदाते वा ऽन्यकालत्वाद् ययाच्यमंप्रेषा यथा याच्यमंप्रेष इति सूचाभ्यां पशा प्रथमप्रयाचे।पक्रमे होचा प्रयुक्ता अनिहीता वेत्विनिहींचं वेत्वित्यादिः सुगादापनमन्त्र उक्तः प्रयाजापक्रमे न प्रयाक्तव्य उत तदानीमपि प्रयाक्तव्य इति विचारेण शास्त्र-समापनम् । तथापि संकर्षे देवताविधानरहितेषूपांशुपाचादिषु देवता ऽस्ति न वा) प्रयाजादिषु देवतावाचिनस्समिद्वाहिरादिशब्दाः दर्शपूर्योमासाङ्ग-प्रिसिद्धसमिद्वार्हरादिपरास्तदन्यपरा वा श्रीनं होनायावह स्वं महिमान-मावहेत्यच हे।चशब्दोत्तहोमद्रव्यार्थत्वेन स्रुत: स्विष्टुकृदग्निराहवनीया गार्हपत्ये। वा¦ पशे। यष्ट्रव्या वनस्पतिदेवता पश्वङ्गयूपह्रपा ऽन्या वा स्वाहा देवा त्राज्यपा जुषाया इत्यवाज्यपाः सक्तत्रयाजानूयाजदेवताः उत्तमप्रयाजानूयाजमाचदेवता वा ग्रहाणां वैराजस्य स्ते।चायेत्यादिचतुर्थोनिर्दि-ष्ट्रानि स्तोचाणि देवता, त्राग्नेयं गृह्वातीत्यादितद्वितनिर्दिष्टा त्राग्न्यादया वा यां देवतां वषद्वरिष्यन् स्यानां मनसा ध्यायेदिति देवतावाचिशब्दध्यान-

^{*} संकर्षेणकागड इति २-५ पुः पा-। एवमग्रे ऽपि पाठद्वैविध्यं दृश्यते ।

विधि: देवतार्थंध्यानविधिवी यनेति द्यावारं ये यनामहद्दति पञ्चावरिति विहित्तये।येनयेमहियोरिनं विष्णुमित्यादिद्वितीयान्तदेवतानां निर्देशः कार्ये। न वा त्रावह देवान्यनमानायेति प्राकरिणक्रमकलदेवताविषये। वा व्यान्मगनत्रावहेत्यादिनिदेन्यमाणाग्न्यादिदेवतामावविषये। वा देवान् यनेति प्रथमानूयाने।पक्रमप्रेषे देवानिति शब्दः प्रथमानूयानदेवताविषयः सर्वान्-यानदेवताविषयः सर्वान्-यानदेवताविषये। वेत्यादिदेवताविचारभूयस्त्वाद् भूम्ना संकर्षकाण्डस्येव देवताकाण्ड इत्यि व्यवहारे। ऽस्तीति तस्य तेनापादानम्।

842 1 54

पूर्वपचं सिद्धान्तं चाहेति । संकर्षे नानाप्रदानाधिकरणात् पूर्वाधिकरणे तेषां पृथक्कृतानां निरवदानं यथा उन्येषां हिवःपृथक्षादिति
सूर्वेण येन्द्रादिपुराडाशानामध्यधांश्रम्पणे कृते स्रवदानवेलायां पुराडाशान्
पृथक्कृत्य पृथ*गवदानानि तन्मध्यपूर्वाद्धाभ्यां याह्याणि उत पुराडाश्रम्यादिष
सहैवावदानानि याह्याणीति संशये हिवभेदात् पृथगिति पूर्वपचं प्रापय्य
बचनात्, सर्वेषां सहावदीयेतिति सूर्षेण सर्वेषामभिगमयन्नवदातीति वचनात्
सर्वेषामिन्द्रादीनां चयाणां पुराडाशानभिगमयन् प्रापयन्नवदाति न पर्यायेणेत्येतदर्थकात्सहैवावदानं/नास्ति वचनस्यातिभारः पुराडाशानां मध्यभागे
नलकप्रवेशनाद्युषयेन मध्यादिष युगपदवदानं याह्यमिति सिद्धान्तः कृतः ।
ततस्तेषां पृथक् प्रदानमवदानैकत्वादिति सूर्वेणास्याधिकरणस्य पूर्वपचः
कृतः । स्रवावदानैकत्वादिति सेषहेतुरेव मिलितानां श्रपणाविशेषादिति
टीकायन्थे विविच्वतः ।

प्रथमपुरोडाशप्रदानइति । ऋस्याः विपुरोडाशायाः वैधातवीया-ख्याया इष्ट्रेयांच्यानुवाक्याकृपतया प्राच्यां दिशि त्विमन्द्रोति राज्यंत्यादयस्तिम् ऋचः समाम्नाताः । तत्र प्रथमयागे प्रथमानुवाक्यामध्यमा याच्या पुनःप्रयोगे द्वितीयभागे मध्यमानुवाक्या तृतीया याच्या पश्चातृतीयप्रयोगे तृतीयानुवाक्या या पूर्व प्रथमप्रयोगे उनुवाक्या प्रथमा सा ऽत्र याच्येत्यर्थः । संकर्षे नाना-प्रदानाधिकरणस्यान्यार्थप्रदर्शनाच्चेति गुणसूत्रं भाष्यकृता भवस्वामिनेत्यं व्याख्यातम् । याच्याऽनुवाक्याविनियागपरं वत्रनं प्रदानभेदं प्रकाशयति

^{*} एवक् एवगिति २ पुः पाः।

(प्रथमामनूच्य मध्यमया यजेद् मध्यमामनूच्यातमया यजेद् उत्तमामनूच्य प्रथमया यजेद् एवं सर्वा अनुवाक्याः सर्वा याच्या भवन्तीति)*। तदनुसारे-योत्थमाचार्यवचनं योजितम् ।

प्राण्ने प्राप्ते प्राण्यादिति । अवेयं विषयशुद्धिः । अध्यात्मं प्राणं ४५६ । ० वागादींश्चाधिदेवतं वायुमग्न्यादींश्चापक्रम्य ऋष या हैताननन्तानुपास्ते श्वनन्तं स लेकं जयतीति तेषामुपासनासाफल्यमुह्मा श्रयाता व्रतमीमांसेत्य-ध्यात्मं प्रायास्याधिदैवतं वायेश्च व्रतं तदुपासकेन काय्ये न तु वागादी-नामम्यादीनां वेति निर्धारणाये विचारं प्रस्तुत्य वागादीनामभिवदनादिनि-यमहुपस्याग्न्यादीनां प्रज्वलनादिनियमहुपस्य च व्रतस्य तेषां श्रान्त्यस्तमः याभ्यां भङ्गमुक्का श्राध्यात्मिकाधिदैवतमेदभिन्नस्य प्राणस्य स्वव्यापारनिय-मरूपव्रताभङ्गमुक्का तस्मादेकमेव व्रतं चरेदित्यभग्नव्रतस्य प्रागस्येव व्रतं तञ्चापारक्ष्वमुवासनया प्रावात्मतां प्राप्न उपासकश्चरेन्न वागादिव्यापारमभिव-दनादिक्र पिमतीतरनिवृतिं विधाय तत् किं प्राणव्रतमित्याकाङ्घायामिदमा-म्बायते प्राग्याचेवापान्याचेति । तत्र जीवत उपासकस्य स्वरससिद्धयाः प्राग्रनाः ऽपाननव्यापारयेर्वावेथानं व्यर्थेमित्याशङ्क्य प्राग्याचैवेति एवकारलब्याप्रसः क्तयोः प्राग्रनापाननव्यापारयेाः कदा चिदिच्छया प्रसक्तस्य निरोधस्य निवृति-र्वतत्वेन विवित्ततेत्याचाँगैर्दार्थतम् प्राग्रने प्राप्ने प्राग्यादपानने प्राप्ने ऽपान्या-त्यागापाननिरोधनं न कुर्यादित्यर्थे इति । नन्वेकमेवेति यावच्जीवं वागादि-व्यापारनिवृत्तिः कथं विहिता अशक्यत्वादिति चेदुच्यते । वागादिव्यापारेष्वपि प्राणव्यापारतादृष्टिः कर्नव्या वागादिभिरभग्नव्रतत्वेन प्राणस्य श्रेष्ट्यं निर्द्धार्य प्रागानामरूपत्वं प्राप्रमिति हन्तास्येव सर्वे रूपमसामेति एतस्येव सर्वे रूपमः भवंस्तस्मादेतरतेनाख्यायन्ते प्रागा इतीति प्राचीनसंदर्भे प्रतिपादितत्वेन वागादिव्यापारेषु प्राणव्यापारतादृष्टेक्चितत्वादिति तात्पर्य्यम् । ऋते। वागा-दिव्यापारस्य स्वरूपता निवृत्तिने विधेयेति नाशक्यानुष्ठानता । केषु चिन्मू-लके। रेषु प्राचने प्राप्ते अपान्याद् अपानने प्राप्ते प्राच्यात् प्राचापाननिरोधं

^{* ()} एतन्मध्यमा यन्या न दृश्यते २ पुः ।

[†] ऋषान्यादिति सुद्रितमूलपुस्तके तटादर्शपुस्तकेषु च पाठः । तत्रापि उपरितन एव षाठः शोध्यः । स्मुटीभविष्यत्यनुपदमेवैवं परिमलात् ।

कुर्यादित्यर्थे इति पाठे। दृश्यते । स पाठे। बृहदारएयके प्रायास्याभग्नव्रत-त्वोपक्रमविरोधातद्वाष्यवार्तिककृद्याख्यानविरोधाच्च न सांप्रदायिकः ।

सायुज्यं समानदेहतामिति । दिह उपचयद्गति धातोर्घजन्ता देहराब्दे। योगेनेपचयवाची भागसमृद्धिपरः । चतः समानभागतामित्यर्थः । न तु साह्ययमित्यर्थः । उत्कृष्टेपपसनाफलस्य भागसाम्यह्यतायाः सूचकृता बच्यमाणत्वात्*॥

८७ । ३५८

लिङ्गभूयस्त्वात्तद्धि बलीयस्तद्पि॥ ४४॥

प्रकरणेनेति । नन्नान्तरहस्यब्राह्मणे मनश्चिदादीनां क्रतार्विनियानकं क्रतप्रकरणं नास्ति किं त्वनारभ्याधीतस्य क्रत्वङ्गस्याग्नरेव प्रकरणं तावतश्च क्रत्वङ्गप्रायपाठलचणः संनिधिरेव लभ्यते । सत्यम् । संनिधिरेवाच लैकिका प्रकरणलचणः प्रकरणण्वदेनोकः । अर्थगतसुदाहरतीति । पणुना यन्नेतत्यच नृतीयेकवचनार्थस्य एकत्वस्य समानपदीपानेन पणुना नान्वयः एकः पणुरिति किं तु समानप्रत्ययोपानेन करणकारकेणान्वयः । एकत्वसंख्या करणकारकमिति समानप्रत्ययोपानेन समानप्रत्ययभूतेरन्तरङ्गतया बलीयस्त्वात् । तदुक्तम् ।

तथा पश्वङ्गमेकत्वं पदयुत्या प्रतीयते । समानप्रत्यययुत्या बलीयस्या क्रियाङ्गता ॥ इति ।

एवं शब्दान्वये स्थित संख्यायाः साचात्त्रियानिर्वतंत्रत्वायोगाद् द्वारान्व्यापेचायां संख्येवावच्छेदसामध्येह्णाह्मङ्गात्पशुद्रव्यावच्छेदकतया ऽस्णैक्षहायनीन्यायेन पार्ष्णिकान्वय इति मीमांसका वदन्ति तदिहोदाहरतीत्यथैः।
पत्नीसंयाजान्तान्यहानि संतिष्ठन्तइति वचनादिति। ननु द्वादशाहप्रकरणाम्नातं सर्वेषामह्मसाधारणमिदं वचनम् श्रहरन्तरमपि सृशेदेव श्रता
ऽहरन्तरपचे ऽप्येतद्वचनिरिधः समान इति चेत्। उच्यते। श्रहरन्तरपचे
प्रायणीयाद्यदयनीयान्तानामह्रां बन्धक्रमत्वाद् मानसं चयादशमहः स्यात्
पत्नीसंयाजान्तवचनमुक्तम् श्रहवेज्वियित्वा श्रस्थिते। हि तहि यच्च इति
वाक्यशेषादिवशादिति पत्नीसंयाजान्तत्वं सर्वेषामिवशेषादिति नाविमकाधिकरणे निर्णोतम्। श्रता ऽहरन्तरपचे नास्ति वचनविरोधः।

^{*} श्रत्राष्टाविशं प्रदानाधिकारसं पूर्णम् ।

द्शरात्रस्य द्वाद्शाहिवकृतित्वादिति । ननु द्वादशाहस्य प्राय- ४६० । ७ गौया ऽतिरावः प्रथममहः ततः पृष्ट्यः वडहस्ततश्छन्दोमचतुष्ट्रयं तत उदयनीया ऽतिराव इति द्वादशाहानि । तव चतुर्थे छन्दोमे श्रविवाक्ये ऽह्रि मानसग्रहः ततश्च द्वादशाहिबकृती दशराचे द्वादशाहस्य प्रायगीयमा-रभ्य द्वादंशानाम् अहां धर्मा: प्रवर्तेरिव्वति तृतीयक्कन्दोमधर्म एव दशरा-चस्य दशमे उहनि प्रवर्तेतिति तस्मिन्नविवाक्यधर्माप्रवृते: कथं मानसग्रहप्राप्ति: । डचाते । द्वादशाहिबकृतिषु द्वादशाहस्य प्रावणीयादयनीया वर्ज्जायत्वा मध्यमदशराषस्य धर्माः प्रवर्तन्तर्शत दशमे चादनामु त्वपूर्वत्वाल्लिङ्गेन धर्म-नियमः स्या†दित्यधिकरणे निर्णोतम् । तस्मिन्नधिकरणे द्वादशाहित्रकृतिषु द्विराचादिषु द्वादशाहस्य ऋहां धर्मा ऋदित आरभ्य प्रवर्तन्ते प्रथमातिक्रमे कारणाभावादिति प्रापय्य सिद्धान्तितं लिङ्गविशेषैः प्रायणीयादयनीया वर्ज-यित्वा मध्यमदशराचधर्माणामेव विकृतिषु प्रकृतिः । तथा हि । द्विराचे श्रूयते यत्प्रथमं तद् द्वितीयं यद् द्वितीयं ततृतीयमिति। द्विराचे यत्प्रथममहः तद् द्वादशाहे द्वितीयं यद् द्विराचे द्वितीयं तद् द्वादशाहे तृतीयमित्यथे:। इदमेकं लिङ्गम् । तथा द्विराचएव चगतीमं तर्प्यन्तीति पार्ष्टिकस्य तृतीयस्याह्रो चाग-तस्यान्तराय: श्रूयते से। ऽपि पार्ष्ठिकेन द्वितीयेनाहू। द्विराचस्य समाप्ति प्रथ-यत् प्रायणीयवर्ज्यातिदेशनिङ्गतया द्वादशाहस्य मध्यमेषु दशमु ऋहःसु दशराचशब्दप्रसिद्धिरस्ति द्विराचादिचे।दनास्वपि राचशब्दो ऽस्ति तच्चोदना-लिङ्गं विशेषलिङ्गं सदहर्गग्यत्वसामान्यलिङ्गाद् बलीय: । तेन यत्प्रथमं तद् द्वितीयमित्यादिलिङ्गानुगृहोतेन द्विराचादिविकृतिषु मध्यमदशरावस्यैव प्रवृतिरिति । तस्मान्मध्यमदशराचे दशममहरविवाक्यमिति दशराचस्य दयमे उहनि तदुर्मप्रवृत्याः मानसप्रहप्राप्रिरस्ति । एवं च भाष्ये दयरावश-ब्दस्य द्वादशाहान्तर्गतमध्यमदशराचविषयतैवेषपद्वेति विकृतिदशराचान्त्रेष-ग्रमपि न कार्यमिति द्रष्टव्यम् ।

मनेवृत्तिष्वग्नित्वदृष्टिविधेरिति । क्रत्वङ्गानात्रितत्वहेतुं षट्-चिंगत्सहस्राणीत्यादिषुत्यथीपन्यासेने।पपादयति षट्त्रिंशतं सहस्राणीति । युतावात्मने। ऽग्नीनित्यचात्मन इति षष्ठी व्यानीनां तदृतिषु दृष्टिविधा-

92 1 93

^{*} द्वद्याहानासिति ९ पुः पाः। . 💠 जैः सूः ग्रन्थः १७ पाः ५ सूः ९३।

नाद् वृतिमद्भावमंबन्थार्थेत्यभिष्रेत्य तद्यै विवृग्रेगीत चात्मनोवृत्तीरग्नी-निति । नन्यतुल्यकार्यत्वेन विकल्पासंभवे स्पष्टे कथं विकल्पेन पूर्वपद्यः पूर्वविकल्प इति सूचेगा कृत इत्याशङ्क्याह कियानुप्रवेशमात्रमिति। विकल्पः पूर्वपचे न विविचतः प्रसिद्धाग्निविलचणाग्निप्रकारभेदमाचं सूचे विकल्पशब्देन विश्वितमें मयमप्यग्निविकल्प इति भाष्ये तस्य व्याख्यात-त्वात् । इह तु विकल्प इति मन्दशङ्कामात्रस्य निर करणमित्यर्थः । इत्य-मवतारिकया टीकायां यदुक्तमित्येतदाशंसायां भूतवद्विधानाद् यदि वकुमिष्टं यदि विविचितद्दत्येवंपरतया व्याख्यातं भवति । तद्झावेषावपीति । तदन्तर्गतावेष्ठात्रित्यर्थः । राजसूयान्तर्गतेष्ठिपशुसामानां सर्वेषां समप्रधान-त्वेनावेष्टेरङ्गत्वाभावात् । राज्यस्य कर्ता राजेति त्रैवर्णिकानां राज-त्वादिति । यदापि चिचययेव राज्यपरिपालनं धर्मः तथा ऽप्युङ्गिहित-मयादी ब्राह्मणवैश्याविष राज्यं कुर्वाणी दृश्येते त्रतस्ताविष राजगन्दवा खी प्रवृत्ति*निमिनसङ्घावमाषस्यापेचितत्वादिति **श**ब्दवाच्यतायां शास्त्रसहितेति । शास्त्रमहितानामार्याणां प्रिवद्धोत्यर्थः । गावानुधाव-न्ति अनुकुर्वन्ति । चतुष्पात्त्वेन शुक्कादिशब्देभ्य इति । जडादिशब्दा-नामुपलवयमेतत् । शुक्रादिशब्देभ्यो हि भावार्थमाचे व्याजिमनिचा प्रत्यया विहितो तत्र शुक्रस्य भावः शिक्ष्यं शुक्रिमेत्याद्युदाहरणम् । उदाहृत-सूचे जाड्यादिगुगावचनेभ्यो ब्राह्मगादिभ्यश्च भावकर्मगोरर्थया: व्यञ्जनस्यय-मानं विधीयते चाडां मीटामित्यादि तदुदाहरणम् ।

४६२ । १८

अनादिवृद्धव्यवहाररूढ़त्वादिति । ननु तथात्वे ऽपि स्वरवर्णा-दिभ्रंगे प्रत्यवायमनुषंदथानानामार्थाणां प्रसिद्धिराप्रिमूलत्वेन बलवती स्ने-च्छानां तु गवादिविषये गाव्यादिशब्दमपभ्रंगं प्रयुक्तानानां प्रसिद्धिरनाप्रिमू-लत्वेन दुर्बेला अतः स्वरूपतस्तावत्र विशेषा ऽन्तीत्येतदयुक्तम् । राजग-ब्दे‡ त्वार्यप्रसिद्धेनेस्ति वेदानुग्रह इत्येतदप्ययुक्तम् । सेमो ऽस्माकं ब्राह्म-गानां राजा सेम श्रेषधीनां राजा ती वा ग्रता देवतानां यदग्नीष्रमा

वाच्यतायां कुर्वित्तं च प्रवृत्तीति २ पुः पाः ।

[†] चतुष्पात्वादिशब्देभ्य इतीति प्रतीकाकारः २ पुः।

[🛊] प्रब्देनेति २ पुः पाः।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षगीनामित्यादिवेदानुग्रहसन्वातदभावे ऽपि स्वत ग्रधा-र्यप्रसिद्धेर्वनवन्वविशेषसद्वावाच्च । विशेषमाहेत्यप्ययुक्तम् । स्मृत्यनुग्रहस्य वत्यमागरीत्ये।भववाव्यविशेषात् । स्मृत्यनुगृहीता म्बेळप्रयोग श्रायप्रयोगाः द्वलीयानित्यव्ययुक्तम् । राज्यशब्दे गुणवचनादिसूचविधीयमानव्यज्प्रत्ययप्रकृ-िभूतस्य ब्राह्मणादिगगपिठतस्य राजगन्दस्य चित्रार्थेताया इव पालका-र्थतावा अप्युपण्यत्रत्या स्मृतेस्यमाधारण्यात् । न हि विधीयमानप्रत्यया-थादन्यदेव ॥ मृत्यर्थे प्रवृतिनिमिनं याह्यमिति नियमा ऽस्ति । काठकणब्दे कठप्रोत्तशाखाध्यायिनामाम्बाय इत्यर्थके गेविचरणादिसूर्वविधीयमानप्रत्य-यार्थस्य कठप्रोक्ताम्बायस्य कठप्रोक्तचाखाध्यायिवाचककठशब्दरूपप्रकृत्यर्थप्रः षृतिनिमितान्तर्भावदर्शनात् । घटस्य शैक्ष्यमित्यव वर्णदृढ।दिसूचविधीय-मानस्य प्यञ्जत्ययार्थस्य † शुक्रगुणस्यैव शुक्रगुणविशिष्टद्रव्यविषयशुक्रशब्द-इपप्रकृत्यर्थप्रवृतिनिमितत्वदर्शनात् । किं च । ब्राह्मणादिगणपठितस्य राजः शब्दस्य पालकार्थत्वमेव याह्यम् । श्रन्यथा यै।वराक्येन संयातुमेक्कत् प्रीत्या महीपतिरित्यादिप्रयोगेषु व्यञ्प्रत्यये। न स्यात् । तत्र राजगन्दस्य वित्रयार्थत्वे युवत्वराजत्वयाः प्रागेव सिद्धनया संयोक्तुमिष्यमाणस्यालाभात् । न च तच मा भूत् ष्यज्पत्ययः पत्यन्तपुरे।हितादिभ्यो यगिति भावकर्मणारेव विह्ति। यक्ःत्यये। ऽस्तु पुराहितादिगये ऽपि राजगब्दस्य पाठादिति वाच्यम् । तच राजासे इत्येतदसमासगतस्य राजशब्दस्य पाठेन तते। युवराजशब्दाद्यग-प्राप्पा ष्यञ एवान्वेषगीयत्वात् । ब्राह्मगादिगगपिठतस्येव तस्यापि पालका-र्थेत्वोपपतेश्च । जनपदविशेषवाचिने। विदेहपञ्चालादिशब्दात् तस्य राजे-त्यर्थे भ्रपत्यार्थप्रत्ययानिदेशके तस्य राजन्यपत्यवदिति वार्तिके राजगः ब्दस्य पालकार्थतायाः संप्रतिपन्नत्वाच्च । विदेहानां राजा वैदेहः पञ्चालानां राजा पाञ्चाल इत्यादि हि तदुदाहरगम्। एवं राजपदस्य पालकार्थत्वाध्य-वसाये सित यत्कर्माधारय इति ब्राह्मणकुमारयोरिति चानुत्ती राजेति (पूर्व-षदं ब्राह्मणकुमारये।हतरपदये।रन्यतरस्यां प्रकृतिस्वरे। भवति पूर्वपदप्रकृ-तिस्वरविधायकस्य राजा चेति‡) सूचस्योदाहरणं राजब्राह्मण इति तदिष

^{*} प्रत्ययार्थादेवेति २ पुः पाः ।

[🕇] प्रत्ययार्थस्य पानकार्थत्वमेवेति २ पुः पाः ।

^{‡ ()} एतम्बध्यमा ग्रन्थो नाहित ० पुः।

राजत्वब्राह्मगत्वये।युंगयत्सामानाधिकरगयादाञ्जस्यं लभते । ननु मा भूद् राज्यशब्दव्युत्पादकसृत्या म्लेक्ब्रामिद्धेरनुग्रहः । राजश्वशुराद्यदिति स्मृत्या राजगब्दादपत्यार्थे यत्प्रत्ययविधानार्थया तु स्यात् चित्रापत्यद्व जन-पदपालकब्राह्मणाद्यपत्ये राजन्यशब्दप्रयागाभावेन तत प्रकृतिभूतस्य राज-पदस्य चित्रार्थताया एव याह्यत्वादिति चेत् किं ततः । एवमार्थप्रिसिद्धेरिष पाणिनिस्मृत्यनुग्रहे। उस्तीति राजसूयवाक्ये चित्रम्यहे नैव कि चिद्विनिगमक लब्यम्। गतेन स्मृतिशब्देन त्राषे धर्मशास्त्रादिकमनुग्राष्ट्रकत्वेन विविचितम्। गौतमीये हि धर्मशास्त्रे द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानमिति चैवर्णिकानां साधारगाधमीत्वनन्तरं ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजनप्रतिग्रहा इत्यादिना ब्राह्मगावैशेषिकधर्मानुक्षा चिवयवैशेषिकधर्मीतित्रस्तावे राज्ञे। ऽधिकं रचगं पर्वभूतानामिति राजशब्दः प्रयुक्तः। न च तस्य पालकार्थयहर्णं युक्तं प्रकः रणानुरोधात् पालकमेवोद्धिश्य पालनविधानायागाञ्च । न हि यः पालकः तेन पालनं कर्तव्यमित्यन्वेति । एवं धर्मशास्त्रान्तरमप्युदाहर्तव्यम् । समृति-ग्रहणमत्र युतेरप्युपलवणम् । त्रस्ति हि स्त्रेच्छ्यसिद्धेरनुग्राहिका राजानम-भिषेचयेत् तिष्येन श्रवरोन बेति श्रुति: । श्रव राज्ञ: सते। ऽभिषेका विधीन यते न च चित्रयत्विमव पालकत्वं प्राक् सिद्धमस्ति । अभिषिक्तस्य स्मृतिषु पालनविधानात् । न च यूपं तचतीत्यच तच्चणेन पूर्वं कुर्यादितिवद् अभि-षेक्रेण राजानं कुर्यादिति क्रिष्टयोजनं न्याय्यम् । यूपगब्दार्थस्येव राजगब्दाः र्थस्य प्राक्षिद्धस्यामन्वाभावाद् म्हेच्छप्रयोगप्रमिद्धस्य चित्रस्य मन्वादिति निरस्तम् । एवमपि विनिगमनाविरहृदूषणानितनहुनाद् ग्राय्येप्रसिद्धेरपि युत्यनुग्रहस्य दर्शितत्वात् ।

> नगरस्थो वनस्थो वा त्वं ने। राजा जनेश्वर । विविक्ते देवराजानमिदं वचनमब्रवीत् ॥

इत्यादिसमृत्यनुग्रहस्यापि सन्वात् । राज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते तेनैतान् राजेत्याचचतइति श्रुती रञ्जनात् खलु राजत्वं प्रजानां पालनादपीति भारत्वचने च पालकत्वं राजग्रब्दार्थे इति साचादेव प्रतिपादनाच्च । एतेनैव चित्रयवाचिने। राजपदस्य पालकत्वसादृश्याद् आर्थाणां जनपदपरिपालके ब्राह्मणादे प्रयोग इत्येतदर्थेकाग्रिमग्रन्थस्याप्ययुक्तत्वं व्याख्यातम् । पालन

कवाचिन एव पालकत्वयाग्यचिये गाँगतित वैपरीत्यस्यापि वतुं शक्य-त्वात् । तस्मात्सर्वे। ऽयमनुषपन्नः विद्धान्तयन्य इति चेत् । उचते । विनिगमनाविरहादर्थेद्वयसन्वे ऽपि राजसूयवाक्ये चित्रय एवार्थे। याह्य: । सप्रतियोगिकै।पाधिकधर्महृपपालकत्वापेचया निष्यतियोगिकाखर् इहुपधर्मच-वियजातेर्लघुत्वेन असित बाधके लघुप्रवृत्तिनिमित्तकार्थग्रहणै।चित्यात् । न चावेष्टिवाक्यगतचैवर्णिकप्रापिद्यातकयदिशब्दस्वारस्याद् गुरेारप्यर्थस्य ग्रहणं स्यादिति वाच्यम् । द्योतकनिपातस्वारस्यानुरोधेन वाचकानां स्वारस्य-भानायागात् । वस्तुतस्तु श्रुतिस्मृतिप्रयागवैयाक्ररणव्यवहाराणामुभयच साम्ये ऽपि चिचियेष्येव शितस्तेषु चिचयजातेरिव पालकेष्यनुगताऽनिप्रस-त्तराक्यतावच्छेदकसूपामावात् । तथा हि । न पालनमाचं निमितं सर्वसा-धारग्यप्रमङ्गात् । श्वस्ति हि सर्वेषामपि पुनदारधनादिविषयमन्ततः स्वयरी-रविषयं वा पालनम् । नापि जनपदपरिपालनं निमित्तम् । राज्ञा नियुक्ते तत्तत्पदाधिकारिणि चत्यपि निस्मन् राजपदाप्रयोगात् । नापि स्वतन्त्रपालनं निमित्तम्। समाजा नृपतिना देशविशेषे राजभावेनाभिषित्ते तदभावात्। किं च विनापि पालकत्वं श्रेष्ट्रामाचेग राजण्दप्रयोगी मृगराजः पश्चिराजी वृचराज-श्वेतीत्यादिव्यवहारे दृश्यते । तस्य राजदन्तादिषु परमित्युपमर्जनपरनिपात-विधायकपाणिनिस्मृत्यनुग्रहे। ऽप्यस्ति । तृमादनुगताऽनित्रयस्तजाति-निमित्तकः चिचार्थं एव राजशब्दः चिचयेषु प्रायेण पालकत्वस्य तत्कृतस्य श्रीष्ट्रास्य च सद्वावात्क्व चित् पालको कोन चित्कोन चिद्वाग्रेन श्रीष्ट्रय च तस्य निह्रुठा लच्चणेत्येव युक्तम् । इत्यं राजशब्दस्यानेकार्थत्वे ऽपि राजसूयवाक्ये लाघवात् चित्रार्थे। याद्यः इति व्यवस्थापनं वस्तुतस्त्वस्य चित्रार्थे-त्वमेवेति व्यवस्थापनं च तस्य चिषाधैत्वमद्भावाधीनं तत् समृत्याद्यनुगृ-होतम्बेच्छप्रसिद्धिप्रसादलभ्यमिति तदुत्तिः । गवं च स्वस्र्पतस्तावन्न विशेषा राजशब्दगाचरयारार्यम्बेच्छप्रयागयार्गागावीशब्दप्रयागयारिव स्वरूपते। वर्णविकाररूप: श्रुतिसमृत्यनुग्रहसदसद्वावकृता वा विशेषा नास्ती-त्यर्थः । एवमिह स्नेच्छप्रसिद्धेरपभ्रंशत्वादिमूलकदै।र्वल्यशङ्का निरस्ता । तद-नन्तरवाक्येन यववराहादिशब्देष्वार्यप्रसिद्धेरेव वाक्यशेषानुग्रहः । ऋतस्तव

^{*} तेष्ट्रित्येतस्याने म्बेच्चेष्ट्रिति २ पुः पाः ।

तदादर इति प्रकृताद्विषम्यमुक्तम् । नास्ति वेदानुग्रह इत्यनेन वाक्यशेषानु-यहे। नास्तीत्युक्तम् । यदि राजसूयवाक्यशेषानुग्रहः स्यादायेप्रसिद्धेः तदा तद्वान्यगतराजगब्दस्य वच्यमाग्ररीत्या प्रवृत्तिनिमित्तगीरवं गे।ग्रवृत्यापति चाविगगाय्य पालक गवार्थी ग्राह्यः स्यात्।

> गीएया लच्चणया वापि वाक्यशेषेण वा पुन:। वेदे। यमात्रयत्यर्थे को नु तं प्रतिकूलयेत्॥

इति न्यायात् । त्रतो वाक्यशेषाभाव उत्तः । विशेषमाहेत्यस्य राजः म्यवाक्ये राजगब्दस्य चियार्थग्रहणे प्रवृतिनिमित्तलाघवरूपं मुख्यवृत्तिलाः भरूपं वा विशेषमाहेत्यर्थः । स तु विशेषः चित्रप्रसिद्धेः स्मृत्यनुग्रहोनया राजगञ्दस्य चित्रये गित्तसद्वावव्यवस्थापनद्वारा सूचितः।

४६३ । २४

đli

तद्यावर्तकत्वे वाक्यभेद्प्रसङ्गादिति । विशिष्टोट्टेशप्रयुक्तवाक्य-भेदप्रसङ्गादित्यर्थः । ननु राजपदस्य कर्तृषमपेकत्वे ऽपि वाक्यभेदस्तुन्यः । उत्पत्तिवाऋविहितान् यागाननूरौकेन* फलसंब थस्य कर्तृसंबन्थस्य च विधा-नाऽयागादिति चेत्। स्यादेवं वाक्यभेदः यदि कर्तृवत्फलमपि विधेयं स्यान त्वेवं तस्य कालवदनुपादेयत्वात् । ऋतः फलमनूदा यागा विधेया इति तदङ्गाख्यातेावातसंख्यावच्छे यक्तर्रविशेषह्रपतया राजैव विशिष्टविधिना वि-धेया न फलमिति न वाक्यभेदप्रसङ्गः। न ह्यधिकारवाक्यान्तरगतमिति। तटस्यवाक्यविह्नितमङ्गम् ऋवेष्ट्रिप्रयोगद्वयसाधारणं स्याद् राजा तु स्वारा-च्याधिकारवाक्यश्रुत इति स्वाराज्यफलाथीयामेवाववेष्टावङ्गं स्याद् न त्वन्नादा-फलार्थायामपीत्यर्थः । तथाप्येतयेति प्रकृत†परामर्थे सर्वनामपदं याबद्धि-षिष्टावेष्टि: प्रकृता तार्वाद्विगिष्टां तां परामृशेद् त्रता ऽधिकारान्तरे ऽपि स्वाराज्यकामकर्तृका स्यादिति मन्दशङ्कामुद्राव्य निराकरे।ति ययुच्येतेति।

४६४ । ११ मध्ये निधानाऽसंभवादिति । मध्यदेशनिधानं हित्रषां योगपद्ये यव संभवतीति भाव: । ननु यचान्तरवेष्ट्री सिद्धान्तिना तन्त्रभेद: समर्थनीय: न तच लिङ्गदर्शनमेकवचनं व्रास्ति यचास्ति बहिरवेष्ट्रौ न तच तन्त्रभेदः सिषाध्यिषित इति कथं लिङ्गदर्शनैकवचनाभ्यां पूर्वपचः । इत्थम् । उत्तहे-

^{*} एकेन वाक्येनेति २ पु॰ पा॰।

[†] प्रकल्येति २ पु॰ पा॰।

तुभ्यां बहिरवेष्ट्रौ तावदैकतन्त्र्यं निर्वेवादम् । अतस्तव दिवणाशब्दो दिविणावयवपर इति मिजितेव दिविणा वाच्या । अन्यया तव तन्त्रभेदप्रसङ्गात् ।
तथा चान्तरवेष्ट्राविण स दिविणाशब्दो दिविणावयवपरः स्यादिनि दिविणाभेदाभेदादैकतन्त्र्यमिति । कथं तिर्ह सिद्धान्तः । इत्यम् । वर्णव वसंयुक्ते। बहिरवेष्ट्रिप्रयोगस्तावद्राजमाचकर्नृकादन्तरवेष्ट्रिप्रयोगाद् भिन्नः । तथा च तचागत्या दिविणाशब्दो दिविणावयवलचको जात इति प्रयोगान्तरे दिविणावाक्यान्वये ऽपि स लचको वक्त य इत्यव न मानमितः । येन्द्रमन्त्रस्याग्न्युपस्थाने लचकस्यैन्द्रे ऽपि कर्मणि विनियोगवशात् प्रयुक्त्यमानस्येत्र मुख्यार्थः
तेषपतेः । अते। दिविणाभेदादन्तरवेष्ट्रौ तन्त्रभेद इति । इत्यं पूर्वपचिनद्वान्तप्रकारः सूचकृता क्रत्वर्थायामिति चेदिति सूचेणाद्घादितः । तच क्रत्वथेत्वं क्रत्वन्तर्भावमावं विविवितिमिति न प्राधान्यिवरेष्यः ।

न राजमात्रकरिकेति । राजमात्रकर्तृकत्वेन वर्णवयसंयोगाभावा- ४६४ । १० दन्तरिष्ठो न मध्यनिधानादिप्राप्तिरित्यर्थः । तत्रश्चैकतन्त्र्यहेत्वभावेन दिन्ति गाण्यव्यस्य दिन्नणावयवे लचणाया त्रकल्पनीयतया दिन्नणाभेदानन्त्रभेद इति तात्पर्य्यम् । विरुद्धत्वमाशङ्क्येति । त्रव नित्यः शब्दः कृतकत्वादितिवत् पन्ने साध्यसाधकत्वेन निर्दिष्टस्य हेतोः साध्याभावसाधकत्वकृषं विरुद्धहेन्वा- भासत्वं ने।च्यते सन्तरिष्ठौ मध्यनिधायप्राप्यभावादिद्वारा तन्त्रभेदसाधकत्वे- नाभिमतस्य वर्णवयसंयोगाभावस्यकतन्त्र्यसाधकत्वाभावात् किं तु बहिरिष्ट्रा चेकतन्त्र्यसाधकत्वेनाभिमता वर्णवयसंयोगः । तस्यान्तरिष्टौ सन्वेन तस्यां साध्याभावकृषेकतन्त्र्यसिद्धावितकृषं विरुद्धत्वमुच्यते ते उन्नयो मनसेवाधी- यन्तः । यद्यपि मनक्ष्वतादीनामग्न्याधानस्यिखलकृषेणोपास्यानामग्नीना- माधानं नास्ति किं तु तेषु निधेयस्याहवनीयस्य तथाष्यभेदेवचारादाहवनीयस्य तथाष्यभेदोवचारादाहवनीयस्य तथाष्यभेदोवचारादाहवनीयस्याधानं तेषामाधारत्वेनोपचरितम् ।

एष्विग्निषु ग्रहा ऋगृह्यन्तेति । ग्रष्टागिषु सित्स्वत्यर्थः । ग्रवं ४६५ । ६ ग्रह्महिणात्ते यचनिष्यत्यर्थे कृत्स्त्रस्य सिद्धपत्योपकारकस्य मानसस्योत्तेश्व तिद्वित्यो। मानसः क्रतुरिष विविच्चत इति द्रष्ट्रव्यम् । न चैवं सित मनश्चितादीनां भाष्योत्तं स्वातन्च्यं विरुध्येतेति शङ्कनीयम् । क्रियानुप्र- वेशाभावमात्रस्य स्वातन्च्ये।त्या विविच्चतत्वात् । श्रष्टाप्यिमाधिकरणसंग-

तिभाष्ये मनश्चितादीनां पुरुषार्थेत्वमुतां अयमुपपादनीयमिति चेदित्यम् । इष्ट्रकचितोग्निहत्तरवेदिवत्केवलक्रत्वर्थे। न भवति किं तु पुरुषार्थे। उपि । पश्कामश्चिन्वीतेत्यपि श्रवणात् । अभागिप्रतिषेधवार्तिके तस्य वाक्यस्यो-दाहृतत्वात् । तथा च तेषामेकेक एव तावान् यावानसा पूर्व इति विद्या-मयाग्निष् क्रियामयाग्निकार्यातिदेशस्याग्निधारग्रहुपतत्कार्यविषयत्वस्यासंभ-वात् पशुरूपफलविषयतेव चिद्धाति क्रियामयाग्नियावत् पशुचायकस्तावत्य-शुसाथक एके। ऽग्निरिति यावतावच्छन्दाञ्जस्थाच् । यह्णादिभिः सित्नपत्योः . पकारकैः स्तोषशस्त्रादिभिरारादुपकारकैश्च निर्वत्ये। मानसक्रमस्तु तदाश्रयः त्वेनापयुज्यते । क्रियामयाग्निवद्विद्यामयाग्नये। इपि क्रत्वाश्विता एवर्न पशु-फलसाथनानीत्येतन्मानसफलऋत्वङ्गापदेशसामर्थ्यान् ज्ञायते । न हि मान-सानि यहणादीनि विद्यामयाग्न्यङ्गानि तेषां तिव्वतंकत्वाभावात् । नावि फलान्तराधानि । तेषां फलान्तरापदेशाभावात् । न च सार्विकात्वं सर्वभू-तकर्तृकत्वं विद्यामयाग्निचयनं विदुषः स्वापकाले ऽप्यनुवर्तमानं कथं तदी-यविद्यामयक्रत्वात्रितं स्याद् बह्दि:प्रयागवर्तित्वादिति सङ्गनीयम् । सर्वे।धिक-सर्वभूतकर्तृक *मिष विद्यामयाग्निचयनमिदानीं मदनुष्ठीयमानक्रत्वाधितमिति भावनया तदात्रितत्वोपपतेः । न हि भावनामात्रसाध्यं किन्नाम साधियतु-मथक्ये तस्मात्पशुफलार्थतयाः पुरुषार्थत्वोक्तिरप्युगपदातइति न किं चिदकः द्यम्†॥

ईईधु । १२

एक ज्ञात्मनः शरीरे भावात्॥ ५३॥

यज्ञायुधीति । पैतृमेधिके कमेणि यजमानशरीर यज्ञणात्राणी सादनं विधाय पठाते स एव यज्ञायुधी यजमानाञ्जसा स्वर्णे लोकं यातीति रूप्यादीनि यज्ञसाधनानि यज्ञायुधानि रूप्यश्च कपालानि चारिनहोत्रहवणी च शूपे च कृष्णाजिनं चेत्याद्यनुक्रम्य एतानि वै दश यज्ञायुधानीति प्रव-णातत्सादनेन तद्वान् यजमानः स एव इति निर्दिष्टः प्रत्यचदुश्यो देह एव तस्य तदानीमेव दहनेन भस्मीभवतः स्वर्गगमनं प्रत्यचविसद्धस् । न च देहातिरिक्त त्यातमा देहाभेदोपचारात् स एव इति निर्दिष्ट इति वक्तुं यज्यम् । देहातिरिक्तात्मिन प्रमाणामिति

^{*} कर्त्वकत्विमिति २ पुः पाः । † अत्र कर्नात्रंशं शिक्तुभूयस्त्वाधिकरणं पूर्णम् ।

ष्ट्राप्ती तत्परिहारायावत्य रवार्था भाष्यकृता तवावकृष्य वर्णित इत्यर्थ: । श्रयमर्थे। भट्टवादैरप्युक्तः ।

> इत्याह नास्तिक्यनिराक्षरिष्णु-रात्मास्तितां भाष्यकृदच युक्त्या । दृढत्वमेतद्विषयस्तु बेाधः प्रयाति वेदान्तनिषेव्योन ॥ इति ।

यदापीत्यादिग्रन्थस्य घटादिदृष्टान्तेन देहाचैतन्यान्मानप्रदर्शने तथापीत्यादिग्रन्थस्य तच बाधान्नीतपचेतरोपाध्युद्वावने च तात्पर्ये दर्शयति देहें। न चेतन इति । तथाविधेति । घटदृष्टान्ते। ऽस्तीत्येतावता देहे। न ४६५ । २३ चेतन इत्यनुमानं प्रवर्तेत तदा जलादिदृष्टान्तेन मदिराया मदऋरत्वाभावा-नुमानमपि स्यादित्येवमाभाससमानये।गत्तेमत्वह्रपं प्रतिकूलतक्रमयाहेत्यर्थः। तसाद्देहधमें रिति । अहंप्रत्ययविषयस्यात्मना देहधर्मेस्तादात्म्यानुभवा-दिति योजना । यदा नित्यस्यात्मनश्चैतन्यमनित्यगुण्विशेष इति । यदात्मा चिषकत्वादिरूपेणाऽनित्यः स्याद् यदि वा चैतन्यं शब्दवत्कादाचि-त्काभिव्यक्तिमन्वेन नित्यं स्यातदा नानैकान्त्यमित्याशङ्क्यात्मनि नित्यत्वं विशेषगुणे चानित्यत्वं विशेषणमुक्तम् । ज्ञानं न देहविशेषगुण इति । न च सामान्यगुणत्वसिद्धा ऽघीन्तरम् । ऋष्टद्रव्यव्यावतं बस्य तस्य विशेषगुण-त्वनियमेन सामान्यगुगत्वाऽसम्भवस्थातत्वादिति भावः । किं तु निमिः त्तत्वेनेति । तथा च जीवमृतावस्थयोर्यदसद्वावसद्वावाभ्यां प्रागाचेष्टादितद-भावे। स देहािष्णष्ठाता ऽऽत्मैव पिद्धोदिति भावः। नन्वदृष्ट्रसद्भावापद्भा-बाभ्यां जीवमृतावस्थयाः प्राणचेष्टाभावै। स्याताम् ऋता निमित्रत्वेनात्मा न कल्पनीय इत्याशङ्कानिराकरणाये तस्यापीति टीकायन्यमुपादाय व्याचिष्ठे अदृष्टमपि विशेषगुण इति । गुणत्वे सतीति । गुणत्वविशिष्टं यद्वेवद-नेतरप्रत्यचिषयत्वं तद्रहितत्वादित्यर्थः । देहगतगुरुत्वादाविति । तव विशेष्याभावेन विशिष्टाभावरूपहेतुसत्वादनैकान्त्यपरिहाराय तचापि साध्यं सम्पाद्यतितुं विशेषग्रहणमित्यर्थः । इच्छाद्यतिरिक्तेति । देवदत्तस्य स्वकी-येक्डादिषु न परप्रत्यचं परकोयेक्डादिषु न स्वप्रत्यचिमत्येविमक्डादिमाच-एव चार्वाकाणां स्वपरप्रत्यचाभावप्रसिद्धिः नान्यचान्यस्य स्वमाचप्रत्यचस्य

परमान्प्रत्यत्तस्य नाभावाद् उभये।रप्यप्रत्यत्तस्यातीन्द्रियस्य तन्मते न्नभा-8६६ । १७ वाच्चेति भावः । दृष्टान्ताभावादिति । नन्वस्ति व्यतिरेक्द्रशन्तः ये देहधमास्ते स्वहृपप्रत्यवा इति हि देहहृपादिषु दृश्यते टीकायामपि व्यति-रेकदृष्टान्ता दर्शितः हेते। परग्रह्योनान्वग्रदृष्टान्तमद्वावा ऽपि सूचितः । तेन हीन्छादिमानं न पन्न: किं तु कस्य निदेवेन्छ।दय इति दर्शितम् । अन्यथा सर्वस्यापीच्छात्रयस्य सन्वेन परशब्दार्थेत्वाभावात् । यवं च देवदतस्येच्छा-दया न देवदनदेहिविषेषगुणाः देवदनतदितरप्रत्यचत्वाभावाद् इतरेच्छादि-वदिति टीकाेेेेेे के अनुमाने न का विदनुपर्णतिरिति चेत्यत्यम्। एवमपि साध्यं विशेषणीयमासीदिति यथाश्वतग्रन्था न घटतइत्याचार्ये। तिर्युत्तेव । इयांस्तु विशेष:। त्राचार्ये।पन्यस्ते हेते। टीकात्तस्वविशेषणमपहाय गुगत्ववि-शेषणं कृतम् । उभयमिव ततदभिमतान्वयदृष्टान्ते षाधनवैकल्यपरिहारार्थमि-त्यच न विशेषः । अयावद्भृतेति । यावन्ति भूतानि तावत्स्वसदपीत्यथैः। न तु यावत्स्वाययमूतकालवर्त्यपीत्यर्थः । अनुसानुभाषणापातात् । यदापि समस्तव्यस्ते व्वन्यादिषूर्वपचटीकायन्ये भूतव्यत्यन्तरेषु चैतन्याऽसन्वस्येवे।-क्तत्वाद् इहापि देहाकारपरिणतेषु स्यादित्याचार्यात्वा मदशक्तेमेदिरावयवे-व्यसन्वमङ्गीङ्गत्य मदशिकदृष्टान्तवैषम्यप्रदर्शकेन ऋषि च मदशिकिरित्याद्य-विमरीकायन्थेन च भूतव्यत्यन्तरेष्वसदपीत्यथेस्य स्मरीकरणाच्च । यावहे-हभावित्वानुमानवदिति । यथा विशेषगुणत्वेन हेतुन। चैतन्यस्य याव-द्वेहकालभावित्वानुमानं तथा यावद्भुतवित्वानुमानस्यापि प्रवृतेरित्यर्थः । नन् पूर्वे तथानुमानं ने।पन्यस्तम् इहापि यावद्भृतव्यक्तिमावित्वानुमानं यद्य-पीत्यादिटीकाग्रन्थेन ने।पन्यस्यते अनुमानये।र्बाधितविषयत्वात् किं तु पूर्वे चैतन्यं यदि देहविशेषगुणः स्याद् यावट्टेहकालवर्ती स्यादिति तर्क उप-न्यस्तः । इहापि यदि देहविशेषगुषाः स्याद् यावद्भूतव्यत्यनुवर्तेतित तर्क उपन्यस्यते । यावद्भूतमनुवर्तेतिति हि टीक्रायन्यः । तदनुषारेण यदापीत्यस्य यदीत्यर्थयहणमुचितम् । एवं च निराकृतं विशेषगुणत्वमभ्युपेत्य यदावीत्या-दिटीकायन्यप्रवृतिरिति ततात्पर्यकथनमध्ययुक्तम् । हेतुत्वे खलु सिद्धपेचा न तु यदि वहूर्ने स्यादितिवदापादकत्वे । सत्यम् । यदापीत्यस्य स्वारस्य-मनुक्थ्याचार्येः प्राठमा व्याख्यानान्तरमङ्गीकृतमित्यदेषः । मात्रयापि

मद्जनकत्वाऽद्शेनादिति । यदापि चूर्णे ऽपि योग्यताहृपं मदजनकत्वमस्त्येव केवलं तु चूर्णे पहकारिवैकल्यान्मदं न जनयतिति वक्तुं शक्यं
तथापि चूर्णे मदं न जनयति किं तु चर्वणाढिसाध्यस्ताम्बूलाख्यः पूगादिषयपरिणामविशेषः । न चैतावता स्वते। मदहानिकरे चूर्णे ऽपि मदजनकत्वं
कल्पनीयमिति तात्प्यंम् । वित्तेः कमवद्व्यापारा *ऽयोगादिति । ऋषि १९० । १०
करणप्रतियोगिग्रहणपूर्वकं खलु भेदग्रहण्म् । ऋतः प्रथमं तदुभयग्रहणं पश्चाद्
भेदग्रहण्मिति प्रत्यचस्य विरम्य व्यापारो न सम्भवतीत्यर्थः । प्रतियोगिभेदसिद्धयसि चेपारिति । भेदग्रहणं प्रतियोगिग्रहणापेचं प्रतियोगित्वेन
प्रतियोगिग्रहणं च भेदग्रहण्यपेचमिति परस्परात्रयमित्यर्थः । एतेन प्रतियोगिविष्णुभेदप्रत्यचे विरम्यव्यापारदेशि न प्रमच्यते युगपदेव प्रतियोग्यिषकरणविष्णुभेदविष्यत्त्वस्वीकारात् । प्रतियोगिविष्यस्याधिकरणविष्यस्य
च विशेषणचानत्त्रा कारणस्य चानान्तरत्वस्वीकारादित्यपि शङ्का निरस्ता ।
तस्य चानस्य भेदनिद्धप्यप्रतियोगित्वविषयताया ऋषि वक्तव्यत्वेन परस्परात्रयाऽनुद्धारात्† ॥

अङ्गावबन्धास्तु न शाखासु हि प्रतिवेदम्॥ ५५॥ 🔑 🚉

स्वरादीत्यादिशब्देन वर्णभेदिश्चत्याम्यादिप्रकारभेदश्च गृहाते।
यदायोङ्काराअयव उद्गीय उपास्यः तच स्वरवर्णभेदो नास्ति तथापि स्वर्म्भेदः सम्भावितः उद्गीयस्यावयव उपास्य इति विधा कस्योद्गीयस्यावयव इति विधा कस्योद्गीयस्यावयव इति विशेषाकाङ्घायामुद्गीये सामात्यादिविषयापासनायां च स्वरवर्णभयभेदः सम्भवति। पूर्वाधिकरणस्य प्रासङ्गिकत्वाद्याविहताधिकरणेन सङ्गतिर्वक्तव्येन्त्यभिग्नेत्य तामपि दर्शयति अथ वेति। का श्रुतिरस्माभिः पीड्यतइति। सङ्गाचलचणं तु पीडनं सङ्गिधिवशात्मद्यामित्यवापि शुक्तं पटमानयेत्ययमेव दृष्टान्तः। दृष्टान्तवेषम्यं विवृण्वन् सिद्धान्तयन्यमवतारयति दृष्टान्तइति। मा बाधीत्यच लुङन्तमाख्यातं माङ्यागादद्यामाभावः। एकत्र होतन्या इति। पञ्च प्रयाचान् प्राचा यचतीति देशभेदविधानेन विकल्पितिमदं देशेक्ये विधानं द्यागस्य वपाया इत्याद्यस्य प्रेष्ठेक्यार्थमाह छागादेरिति।

^{*} क्रमव्यापारेति १ पु॰ पा॰ ।

[ं] अत्र त्रिंगम् ऐकातम्याधिकरण् पूर्णम् ।

श्रादिशब्दो वैकृतपश्चन्तरप्रैषगतपशुजात्यन्तरसंग्रहार्थः । स जनास इन्द्र इति शेष इति । अनेन सजनपदवत्यूक्तं हि सजनीयम् । यो जात इति सूक्तं क्रयं सजनीयमित्याकाङ्घायां मन्त्रान्तरहृपशेषदर्शनेनेदं सूक्तं सजनीयं भवतीत्युपपादितम् । अस्मिन् सूक्ते अन्त्यामृचं विना प्रत्यृचं सजना-स इन्द्र इति मन्त्रान्ते इदं सजनीयं भवतीति भावः ॥

89३ । ३१

भूबः क्रतुवज्ज्यायस्त्वं तथा च दर्शयति ॥ ५०॥

वैश्वानरं द्वादशकपालं निवेपेत् पुचे जाते यदशकपालां भवति गायच्येवैनं ब्रह्मवर्च्चमेन पुनाति यद्मवकपालस्तृवृत्तेवास्मिन् तेजा दथाति यद्वशकपाले। विराज्ञेवास्मिन्नद्वाद्यं दथाति यदेकादशकपालस्त्रिष्टुभैवास्मिन्नद्वाद्यं दथाति यदेकादशकपालस्त्रिष्टुभैवास्मिन्निन्द्यं दथाति यद् द्वादशकपाले। जगत्येव तस्मिन् पशून् दथाति यस्मिन् जात्मयतामिष्टिं निवेपित पूत एव तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियावी पशुमान् भवतीति समान्नायः। तमर्थेतः सङ्घित्य दर्शयित वैश्वानरमिति। श्रव कपालानां प्राप्ना श्रप्रसंख्यादिह्या गुणा विधीयन्ते उत्त प्राप्नाभिस्ताभिरेकदेशद्वारा विधिया द्वादशसंख्या स्त्रूयतद्वित संश्ये महासंख्यायामवान्तरसंख्यान्तभावस्य यतेन पञ्चायदनुमानादिन। सुप्रसिद्धत्वेन द्वादशसंख्याविधानते। ऽष्ट्रत्वादीनां प्राप्नेः स्तुत्यर्थतेव युक्तेति कथं पूर्वणच इत्याशङ्क्य परिहरति यद्यपीति।

8031

तथापि न परिच्छेदकत्विमिति । वस्तुतः सन्त्यव्यष्टादिसंख्या द्वादशसंख्यासंख्यानां कपालानां न परिच्छेदिका न विशेषणानि सम्भवद्विरोधिव्यावर्तकं च नीलमुत्पलमित्यादी। विशेषणं भवित न च द्वादशस्वष्टत्वादयः पर्य्याप्रवृत्तयः संभवित्त न वा विरोधिसंख्या व्यावर्तिका श्वतः परिच्छेदकत्वेन तासां न प्राप्तिरित्यर्थः । ननु मा भूत्परिच्छेदकत्वेन प्राप्तः । श्वन्तभावमानेण प्राप्तिरस्ति द्वादशसु । निष्कृष्टानां केषां चित्परिच्छेदकत्वेन।पि प्राप्तिरस्ति यथा शतं ब्राह्मणाः सेममान् भवन्यन्तीत्यन शतमध्ये निष्कृष्टानां केषां चित्परिच्छेदकत्वेन दशसंख्यायाः प्राप्तः। श्वतः पव दश दशैकेषं चमसमनुसपंन्तीति तदनुवाद इति चेदुच्यते । यथा कथं चित्प्राप्तिमानमिह न पर्याप्तं विद्वं तु कपालसाध्यपुरीडाशद्व्यसंस्कार्थाः तत्परिच्छेदकत्वेन प्राप्तिमानमिह न पर्याप्तं विद्वार्थोत्तरपदसमाहारे चेति सूचेण रार्थेतया तत्परिच्छेदकत्वेन प्राप्तः । तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे चेति सूचेण

^{*} अनेकिनिशम् ब्रङ्गावबद्वाधिकरणं पूर्णम् १

तिद्धिताधे संस्कृते विषयभूते अष्टादिशब्दानां कपालशब्दस्य च समासे पश्चादष्टुकपालप्रातिपदिकाद्वष्टुस् कपालेषु संस्कृतिमत्यर्थे ऽग्प्रत्यये तस्य द्विगोर्लुगनपत्ये इति लुकि सत्यष्टाकपालादिशब्दिनिष्यते: । न च द्वादशसंख्यावदष्टुत्वादिसंख्यानां पुरे।डाशसंस्काराङ्गतया प्राप्तियेदष्टुाकपाले। भवतीत्यादिवास्वप्रवृत्ते: प्रागस्ति । तस्मातेष्वष्टुत्वादिसंख्यानां संस्काराङ्गतया विधिरिति
गुग्वविधिपच एवाष्ययग्रीय: । न चेत्पितिशिष्टद्वादशसंख्याविरोधात् तद्विसद्वाष्ट्रत्वादिसंख्याविधिनं घटतद्दित शङ्कनीयम् । एकं हीदं वाक्यं वैश्वानरं
द्वादशकपालिमत्यादि पशुमान् भवतीत्यन्तम् । न चेकस्मिन्वाक्ये विधेयेषु
संख्याविशेषेषूत्यन्युत्पन्नशिष्टुविवेको ऽस्ति । तस्मादेकेन वाक्येन विहितानां
विसद्धसंख्याविशेषागां वैकल्पिकाङ्गत्वेन विधिषु न का चिद्रनुपपितिरिति
भाव: ।

उत्पत्तिशिष्टेति । उपक्रमापसंहारैकरूय्येगैकवाक्यत्वे ऽपि वैश्वान- ४७३ । १० रमष्ट्राक्रपालं नवक्रपालं दशकपालमेकादशक्रपालं द्वादशक्रपालं निर्वपेदित्याम्ना-नामावाद् द्वादशक्रपालं निवंपेदित्येतावता विधिवाक्यसमाप्रेः द्वादशसंख्येवाः त्पतिशिष्टा न तु प्रथमान्ताष्ट्राकपालादिशब्दे। ता श्रष्टत्वादिसंख्या इति तेषां विध्यन्तरसमर्पितानामन्वया वाच्यः । न तु त्र्यं संभवति । उत्पतिशिष्टु-गुणावरोधादित्यर्थः । विध्यन्तरसमाययग्रे विध्यर्थवादभावेनान्वय इवापक्र-मापसंहारैकरूप्यावगतम् एकवाक्यत्वं न सर्वितं स्यादित्याह स्रिप चेति। बस्तुतः प्राप्तानीति । संज्ञामाचेण प्राप्नानीत्यर्थः । एवं चाष्ट्राक्षपालादिश-ब्दानाम् ष्रष्टत्वादिसंख्यापरिच्छित्तकपालसंस्कृतवाचिना द्वादशकपालसंस्कृ-तपुराडाषावयवेष्वष्टुकपालादिस्थितेषु लचगाया वृत्तिरेष्ट्रव्येति भावः । स्तु-त्यर्थमिति । गजाश्वादिस्तुतिद्वारा सेनाया इव नेषा दस्तुतिद्वारा शरीरस्ये-ष चाष्ट्रत्वादिमंख्यास्तुत्या तत्संख्येयक्रपाननिष्ठपुरे।डाशावयवस्तुत्या च द्वाद-श्रमंख्यायास्तत्संख्येयकपालनिष्ठपुरोडाशावयविनश्च स्तुत्यथैमित्यथै: । किं च यदाष्ट्राकपालादिषु विधयः स्रूयेरन् तदोपक्रमोपषंहारावगतमेकवाक्यत्वमङ्गप्र-धानविधिद्धपानेकावान्तरवाक्यघटितमहावाक्येकद्धपतया कथं चित्समर्थ्येत न तु तदस्तींत्याह वर्तमानापदेशानामिति । उपक्रमापसंहारयारे-कविद्याविषयत्वेनेति । ननु भूमविद्याप्रकरणोपक्रमोपसंहारयारात्मवि-

वेदान्तकल्पतहपरिमले [श्रः ३ पाः ३ श्रधिः ३२-३६ द्याविषयत्वे ऽपि मध्ये नामाद्युपासनतत्फलमवणात् तद्विधयो ऽप्यङ्गी-कृता:* तथेह किं न स्याद् वैषम्यात् । इह हि व्यस्तोपासनासु निन्दा श्रूयते ∖न चारव्थसमस्तोपासनाः पुम्बविषयास्तविन्दाः । श्रविज्ञातसम-स्तोपासनानामपि प्राचीनशालादीनां व्यस्तोपासनाभिनिन्दितत्वात्। किं च। मूर्द्धा त्वेष चात्मिति होवाचेत्यादिवाक्येषु द्युप्रभृतीनां स्वतन्त्रोपास्यत्वव्यव-च्छेदः कृतः । एते वै खलु पूर्यं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वांसे ज्ञमत्येती-वकारेगा व्यस्तोपासनानां भ्रममूलत्वमुद्घाटितम् । गवं वैषम्यान्नाष भूमवि-द्यान्यायंगङ्कावकागः 🕆 ॥

8981 =

नानाशब्दादिभेदात्॥ ५८॥

अपूर्वसाधनमिति । अपूर्वसाधनमूता या पुरुषप्रवृत्तिः सा भावने-त्यर्थः: । तत्र हेतुर्गुणानां गुणिनश्च ब्रह्मणः सिद्धत्वादिति । उपासनानां स्वते। यागदानहोमवद् भेदाभावाद् वेदास्य ब्रह्मण एकत्वेन विषयीकृतस्यापि भेदस्याभावाद् ब्रह्मगुगानां सिद्धतया सिद्धब्रह्मविश्वेषगतया च स्वतः परता वा कार्यत्वाभानेन कार्यविशेषग्रवाजिनादिगुग्रवद्गेदकत्वा-भावाच्च न विद्याभेद इत्यर्थ: । एवं च यथा सत्यविद्यायां सत्यस्य ब्रह्मणी वेदास्यैकस्याच्यादित्यस्यानयारहरहनीमभेदेन पृथगनुचिन्तने ऽप्येकविदात्वं यथा वा संवर्गविद्यायां वायुत्वस्य वेद्यस्येत्रस्य बाह्याध्यात्मित्रभेदेन वागाः द्यान्यादिषंहर्तृत्वगुग्रमेदेन च पृथगनुचिन्तने ऽप्येकविद्यात्वं तथे।पक्षेामल-विद्यान्तरादित्यविद्यादहरविद्यादीनां स्थानभेदेन शाग्डिल्यविद्यावैश्वानरवि-द्यादीनामगुत्वमहत्वादिगुणभेदेनान्यासामि विद्यानां तत्तत्प्रकरणास्नातगु-गाविशेषेश्च पृथगनुचिन्तने ऽप्येकविद्यात्वमिति पूर्वपचाशय: । किमुपासना-वाक्येषूपासनाभावनाहृपकार्यप्रतिपादनं नास्तीति गुग्रभेदेन तद्वेदे। नास्ती-त्युच्यते श्रय वा गुणानां कार्यविशेषणत्वाऽभावेनाकार्यतया तद्वेदाद्वेदो नास्तीति उत तेषां कार्यान्वये ऽपि गुणिन एकत्वेन गुणभेदान्न भेद इति ।

^{*} तिहवययोरप्यङ्गीकता इति ५ पुः पाः।

[†] अत्र द्वातिंशं भूमज्यायस्त्वाधिकरसं पूर्णम् ।

[‡] सा भावनेत्यादिवाकोषु द्युवसतीत्यर्थः । इति पाठः २ पुः ।

[§] चिक्तत्विमितीति २ पुः पाः। ॥ गुणभेदात्तकोददत्ति २ पुः पाः।

नादा इस्याह यदि वस्तुनिष्ठानीति। उपासनावाक्यानां भावनारूपकार्य-परत्वाभावे प्रवर्तकविध्यभावादेकविद्यात्वपचे ऽपि तदनुष्ठानं न स्यादिति भावः । द्वितीयपचमाशङ्क्य परिहरतीत्यवतारयति उपासनाप्रवृत्तेरिति । ब्रह्मविशेषगानामपि गुणानामस्योकहायनीन्यायादुपासनामावनारूपकार्याः न्वया ऽस्तीति भाव: । तृतीयमाशङ्क्य निराकरे।तीत्यवतारयति ननु सत्य-कामत्वादिगुणानाभिति । दशद्रच्याणाभिति । दशसंख्यायुक्तद्रच्या-णामिति मध्यमपदले।पी समासः । दशद्रव्याणि पये।दध्याच्यतगडुलै।दनय-षाग्रमांससामजलतेलानि ॥

विकल्पे। विशिष्टफलत्वात् ॥ ५९ ॥

89म । द

अहं प्रहोपास्यदेवा भूत्वेति । त्वं वा अहमस्मि भगवा डेवते श्रष्टं वे त्वनमीत्यभेदध्यानदाळीन तज्जन्यमाचात्कारे। ऽप्युपास्यदेवीहम-स्मीति जायते तं लब्ध्वेबाणस्यदेवतामायुक्यं वामोतीत्यर्थः †॥

काम्यास्तु यथाकामं समुच्चीयेरज्ञ वा पूर्वहित्वभावात्॥ ६०॥ ‡

99 1 9€

श्रङ्गेषु यथाश्रयभावः ॥ ६१ ॥

अविधेयत्वात्कामनाया इति । अनेन ग्रन्थेन प्रयोगिवध्येन्। प्यतया कामनानियमस्यासंभव उक्तः। न तु सर्वया तदसंभवः । तदाया ऽऽम्रे फलायें निमितेच्छेया गन्ध इत्यनूत्यदीते एवं धमे चर्यमाणम् अर्था श्रनूत्पदान्ते इत्यापस्तम्बातन्यायात् स्वगादार्थमनुष्ठीयमानेषु ऋतुषु तत्य-यागमध्ये समुच्चित्यानुष्ठेये: कैश्चन पदार्थैरयन्नेन नान्तरीयकतया सिद्धात्सु फलेषु कामबहुलानां कर्मणां स्वत एव कामनाऽसंभवात् । ऋन्यया प्रस्तर-प्रहरगप्रभृत्यङ्गफलेषु का गति: । ऋपापश्लोकयवगाद्यार्थवादिकमेवाङ्गफलं न विविवितम् । त्रायुराशास्तद्दत्यादिमन्त्रक्षर्यो प्रकाश्यमायुरादिह्रपं प्रस्तर-प्रहरगप्रभृत्यङ्गपनं तु विविचितमेव । करगमन्त्रस्य पदैः सर्वेरप्यनुष्ठेयस्येव

अत्र त्रयस्त्रियं शब्दादिभेदाधिकारणं पूर्णम् ।

[†] श्रत्र चतुंस्त्रिंशं विकल्पाधिकरणं पूर्णम्।

[‡] पञ्चित्रिशं काम्याधिकर्णमेतिहिशेषव्याख्यानानपेत्रणाद् न व्याख्यातम् ।

[🐧] इदं सूत्रं परिमलपुस्तकेषु न प्रतीकते। ग्रहीतं दृश्यते। पूर्वसूत्रं काम्यास्तु इत्येतायत्त्र-तीक रुपेण ए हीते दृश्यते तथापि कल्पतस्युस्तकेषु एतत्सूत्रस्य प्रतीकतीः प्रहृणादस्य चाधिकरण-त्वेन यन्यकारशैन्यनुसारियात्र प्रदर्शनं कम्।

चाचात्स्वन्धिद्वयप्रकाश्यत्वनियमेन प्रस्तरयामकरग्रमन्त्रप्रकाश्यानामायुराः दोनां तत्फलतयेव तत्सम्बन्धस्य निर्वहणीयत्वात् । स्वमेव नवमाध्याये स्यापितत्वात् ।

ननु सिद्धान्तभाष्यव्याख्यानानन्तरं समाहारादिति पूर्वपचसूनभाष्यं 899। ८ व्याख्यायते । इदं व्यत्यस्तमित्याशङ्काह एवमधिकरण्स्यार्थ∗मुह्नेति । बुद्धिसै।कर्यार्थमधिकरगाशरीरं सङ्कल्पितम्।इदानीं पूर्वपचभाष्यव्याख्येयांश्रमु-पादाय व्याख्यायतइत्यघै: । तच यदाश्रयतन्त्रत्वादुपासनानां पुरुषाधीना-मपि समुच्चयः तदा गादोहनादीनामपि स्याद् श्रविशेषादित्याशङ्क्य तते। बिशेषप्रदर्शनाथं सूचं शिष्टेश्चेति । गोदोह्दनादयः चमसादिस्थानापन्नतयोपदि-श्यन्ते तेषां समुच्चये चमसादीनां निवृत्या चमसेनापः प्रवायेदित्यादिशास्त्रा-गामप्रामाण्यं स्यादिति गोदोहनादीनां न समुच्यः । नैवमुपासनानां किं चित्स्यानापन्योपदेशा ऽस्ति किं तु तत्स्यानापत्तिराहित्येनाद्गीयाद्युपदेशा-विधिष्ठ एव तेषामुपदेश इति । एवमस्य सूचस्यार्थे। भाष्यएव स्पष्ट इत्यर्थे: । समुचयलिङ्गदर्शनत्वघटकं भाष्यमिति । क्वान्द्रोग्ये य उद्गीयः स प्र-गवा यः प्रणवः स उद्गीय इत्युद्गातुः प्रगवाद्गीयैक्यापासनाविधेरर्थवादे। होतृषद्नादित्यादिः । उद्गातृवेदविह्नित्रप्रावोद्गीयैकत्वविज्ञानस्य ऋवे-दे।दितप्रणवसंबन्धनियमे। दृष्टः । ऋयं वेदान्तरोदितोपासनासंबन्धनियमे।पि तस्यास्तीत्यच लिङ्गम् । वेदान्तरे।दितप्रणवस्वपदार्थमंबन्धेन सह वेदान्तरे।-दिततया सादृश्यात् सादृश्यमवलम्ब्याप्यस्ति लिङ्गापन्यासः। यथा विधिश्चात-थंकः क चित्तस्मात्स्तुतिः प्रतीयेत तत्सामान्यादितरेषु तथात्व मिति जैमि-निमूचे। तच ह्याँदुम्बरा यूपा भवतीत्यूर्या उदुम्बर जर्क् पणव जर्जैवास्मादूजे पश्चनाप्रात्यूजीवस्द्धाः इत्यचार्गवराधशब्दोकान्नप्राप्रिह्पफलाय उदुम्बरतागुणा विधीयतइति प्रापय्य वैकृतसे।मापै।व्यापशुप्रकरणे चे।दक्पा-प्यस्य यूपस्याप्रकृतत्वेन प्रकरणादाश्रयसंबन्धाऽलाभाद् वाक्येनैवाश्रयसंब-न्थस्य फलसंबन्थस्य च बोधने वाक्यभेदप्रसङ्गाच गुगाफलविधिने संभवती-त्येवंजातीयका ऋषेवादा इति सिद्धान्तं कृत्वा क्व चिदप्युयोनिवी ऋश्व इत्यादावप्सुयानिरस्वः कर्तव्य इत्येवमादिविधिरशक्यत्वात् संभवति ।

^{*} अधिकरणसारार्थिमिति ५ पुंगाः। † जैम् सून् अरु ९ पान् २ सून् २३।

बायुँवे चेपिष्ठा देवतेत्यादै। वायुः चेपिष्ठः कार्यः इत्यादिविधिः सिद्धत्वाच्च संभवतीति तत्र स्तुत्यथैत्वमेत्र वाच्यं तत्सामान्याद्विध्यसंभवह्रपतत्सादृ-श्यादितरेषूदुम्बरादिष्विष तथात्विमिति सादृश्यमवलम्ब्यः स्तुत्यथैत्वमुण्णा-दितम् । एवमिहापि योजनीयम् । एवं समाहारादिति सूत्रे समाहारणब्दोत्तं देशसमाधानं हेतुत्वेन न विविचितं कि त्वानन्दमया ऽभ्यासादित्यवान-न्दमयशब्दश्व समाहारणब्दः स्थलप्रदर्शनाथे इति द्रष्ट्व्यम् ।

श्राश्रयसाधारययइति । अवेदं वक्तव्यम् । यदोङ्कारस्यात्रयस्य ४९९ । १८ बेदचये माधारक्येन तदामितोषासनायास्तयात्ममुपासनानां समुच्चये लिङ्गमुत्तं भाव्ये तद्युक्तम् । ऋमित्येतद्वरमुद्गीयमुपाधीतेत्यच स्वेदव्यापिन ऋक्कारः माषस्योपासनाश्रयत्वं मा भूदित्येतदर्थमुद्गीयावयवत्वेन विशेषग्रमिति व्या-क्रेश्च समञ्जसमित्यधिकरणे निर्ह्णतत्वेने।पासनात्रयत्वेन प्रकृतस्योङ्कारस्य* पर्ववेदसाधारग्याभावात् तेनेयं चर्यो विद्यति प्रकृतपराम्शितच्छच्देनापासना-श्रयन्वेन प्रकृतस्ये।ङ्कारस्य परामर्थ इति तस्य वेदचयमाधारण्यविद्धा तद्द्वाराः सदनु चाचरं यद्धि कि चिदनु जानात्ये। मित्येव तदाहिति प्राचीनवाक्यगततः च्छब्दस्याय्युणसनाश्रयोङ्कारपरामर्शित्वेने।पासनानां लेकसाधारस्यस्यापि सिन द्विप्रसङ्गात्।कथं विदाययसाधाराय्येने।पासनानां वेदनयसाधाराय्यसिद्धाविष तेन सर्वेषु क्रतुप्रये।गेषु नियमेनानुष्ठेयत्वलज्ञणस्य समुचयस्यासिद्धेश्च । यच्चा-न्वयस्य व्यतिरेकेण दृढीकरणमाचार्येक्तं तदप्ययुक्तम् । वेदवयमाधारएय-ह्रपस्यान्वयस्य तद्विलद्दयेन आश्रयस्य सर्वप्रयोगसाधारक्याभावे तदाश्रित-स्योपासनस्य सर्वप्रयोगसाधारक्याभाव इति व्यतिरेकेण वद्मभावे धूमाभावः इति व्यतिरेक्षेणेव दृढीकरणाऽसिद्धेः । त्रात्रयतन्त्रत्वे सत्यप्यात्रयस्य सर्वेः प्रयोगसाधारस्याभावात् तदात्रितापासनानामयामाञ्च । तस्माद् गुगसाधारः रायसूचस्य वृतिकारकृतव्याख्यानमुण्हासार्धमनूदाः भाष्यकारैरय वेत्यादिनाः स्वयं व्याख्यानान्तरं कृतमिति तात्पर्येक्रयनं युक्तम् ।

चमसं चेरितीयेति । यदापि ग्रहणस्ताचणस्त्राणामिव सहभावग्रहः १९ । २० गस्याभावः समुद्यमाने व हेतुः सदभावे ऽपि प्रयाजादीनां तद्वर्भाणां च

[🙏] उपासनायये।ङ्कारस्येति २ षु 📆 🕬

वेदान्तकल्पतरुपरिमले [ग्र. ३ पा. ३ ग्रधि. ३६

समुद्रयदर्शनात्तथापि तद्वदिह पुरुषार्थानां प्रयोगवचनपरिहारासंभवात् सह-भावश्रुतिरस्तीति चेत् तद्वशात्समुद्रयसिद्धरन्वेषणीया सा ऽपि नास्तीति न समुद्रय इति भावः । कान्द्राग्ये यदि चहत्तो रिष्येद्* भूः स्वाहेति गाईपत्ये जुहुयाद् यदि यजुष्ठो रिष्येद् भुवः स्वाहेति दविणाग्ने। जुहुयाद् यदि सामतो रिष्येत् स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयादित्युपदिश्याम्बायते एवं विदु वा इत्यादि । तच यज्ञस्य रचाङ्गवेषात्त्यप्रयुत्तदोषपरिहारः यज्ञमानस्य रचाफ-लवत्वार्मणा कर्मफलाऽप्रतिबन्धः च्हत्विनां रचामन्वे।चारणेषु स्वरादिभ्रंगप्र-युत्तदोषपरिहारः ।

> श्रवहीने। दहेदाष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विनः । श्रात्मानं दिवणाहीने। नास्ति यच्चममे। रिपुः ॥

इति मन्त्रहीने कित्वजां देषस्मरणात् । एवं च यद्युद्गीयाद्यु-पामना नित्याः स्युः तदा तत्फलतया कर्मफलाप्रतिबन्धसिद्धेः प्रणवाद्गीयेक-त्वे।पासनाफलतयाद्गातुः स्वरभंगादिदे।षपरिहारादिसिद्धेश्च यज्ञमानस्य सर्वे षामृत्विजां च ब्रह्मणा परिपाल्यत्वं नाच्येत तदुच्यमानमुपासनानामनित्यत्वं चापयतीति लिङ्गदर्शनमुक्तम् । तचोदाष्ट्रतयुतावेवंविच्छब्दः प्रकृतप्रायश्चिता-भिच्चपर इत्यर्थः ॥

इति श्रीमद्भरद्वाजकुलजलधिकीस्तुभश्रीमदद्वेतविद्याचार्यशीविश्वजिद्याजि-श्रीरङ्गराजाध्वरिवरसूनोरणयदीचितस्य कृती वेदान्तकल्पतरु-परिमले तृतीयाच्यायस्य तृतीयः पादः ॥



^{*} बद्दलो रिष्येदिति ५ पु॰ पा॰ । † मन्त्रष्टानाविति २ पु॰ पा॰ । इत्रज्ञ षद्जियं यद्यात्रयभावाधिकरर्या पूर्णम् ।

श्रय दतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः।

पुरुषाचे उतःशब्दादिति बादरायगः॥१॥ 89519 पूर्वेपादेनावसरसंगति दर्शयन् पादार्थमाह अपूर्वमिति । ब्रह्मवि-द्यानां स्वातन्चेण फल बाधनत्वनिह्नपणं तदितिकतेव्यतानिह्नपणं च न पादार्थः अर्थभेदेन पादभेदप्रसङ्गात् किंतु तदितिकर्तव्यतानिह्यग्यमेव फलकरणस्य सत इतिकर्तत्र्यताकाङ्क्षीत तदाकाङ्कासिद्धार्थमुपाद्चातत्वेन प्रथमाधिकरणे तामां स्वातन्चेण फलकरणत्वस्य निर्ह्वपणीमिति द्रष्टव्यम् । कम्मीनपेचाणामिति । स्वयं कर्माङ्गभावेन कर्मापेचारहितानां स्वयमेव फलकरणानामित्यर्थः । का नामेतिकर्त्तव्यतेति । उपकासलविद्यादिषु कासु चित्सगुणविद्यागिनविद्याद्यारादुपकारकाङ्गापदेशे सत्यपि निर्गुणवि-ऋविद्यानिवृतिरूपदृष्टुफलीत्पादने आरादुपक्रारकाऽनपेचायामपि सर्वासां विद्यानां चित्रशृद्धिचितेकाय्यद्वारा सन्निपत्यापकारकेषु चेयापास्यब्र-ह्मस्वद्वपञ्चानाथै प्रमागाभावेन च सन्निपातिष्वाकाङ्का उस्तीति तात्पर्यार्थः । ननु फलभेदा भेदावन्तरे ऐति। यदापि फलाऽभेदे ऽपि गुणभेदेन ब्रह्मला-क्रप्राप्तिफलकविद्यानां भेदो भवति विद्याभेदे ऽपि हृदयायतनत्वादिना सगुग्र-निर्गुणविद्ययाः सत्यकामत्वादिगुणापसंहारा भवति विद्येश्ये ऽपि सत्यविद्याः यामन्यादित्यस्थानभेदेनाहमहनीमक्रत्वनचग्राग्रानुपमंहारा भवति तथापि प्रायाऽभिप्रायेणैतदुक्तम् । न प्रकरणादिति । प्रकरणादात्मज्ञानं कर्माङ्गं न भवति प्रकरणस्याभावादित्यर्थः । न वाक्यादिति । अनारभ्यवादः शब्दस- ४९६ । २१ मर्पितऋत्वङ्गतां लिङ्गापस्यापितऋत्वङ्गतां वा वाक्यप्रमाग्रेन विधते । तद्यया । श्रयाते। ऽग्निमग्निष्टोमेनानुयजन्तीत्यनारभ्यवादे। ऽग्निष्टे।मशब्दसमपितक्र-त्वङ्गतां चित्याग्नेरग्निष्टामादिपदसमभिव्याहारहृपेण वास्वप्रमाणेन विधत्ते यस्य पर्यमयी जुहूर्भवतीत्यनारभ्यवादे। जुहूनिङ्गापस्यापितजुहूपदनिवतः क्रत्वङ्गता पर्यातायाः पर्यामयीजुहूपदादिसमभिन्याहारहृपेण वाक्यप्रमायोन

^{*} तान्पर्यमिति २ पुः पाः।

विधते न वा ऽऽत्मज्ञानवाक्येषु क्रतुसमर्पकः शब्दे। ऽस्ति न च तदुप-स्थापकं लिङ्गमस्ति त्रात्मने। ऽव्यभिचारित्वेनातिल्लङ्गत्वादित्यर्थेमनुस्मार-यन् वर्त्तेत इत्यर्थे इति टीकायामनुस्मारयद्मित्येतदनन्तरं जुद्दादिवद्वाक्ये-नेव तज्ज्ञानं पर्णतावत्क्रत्वर्धतामापाद्यतहति पाठं दृष्ट्रा अनुस्मारयज्ञित्य-स्यापादात इत्यनेनान्वयाद्वर्तत इत्यथ्याहारः कृतः । क्रत्वर्धतामापादयतीति णाठे तु नाध्याहारापेचा । नन् देहातिरिक्तात्मनि सत्यप्यव्यभिचरितक्रतु-संबन्धे नास्ति तद्वाने सति ऋतुसमृतिनियमः कारणे सति कार्येनियमा-भावात् । निह धूमस्य दशेने सित विह्स्मृतिनियता तथा च यस्यात्मा द्रष्ट्रव्य इत्यादिवाक्यश्रवणकाले क्रतुस्मृतिः तस्य लचणया वाक्येनात्मदर्श-नस्य क्रत्वर्थेताप्रतिपत्तिः यस्य न तत्स्मृतिः तस्य नेत्यव्यवस्थिता वाक्या-र्थेथीः स्यादित्याशङ्क परिहरित यद्यपीति । कापि प्रवृत्तिभेवतीति । सर्वानुभविषद्धमेर्तादति भाव:। व्याप्यव्यतिरेकविज्ञान शमिति । देहाति-रिक्तात्मज्ञानं पारलै।किकपलसाधनविषयेच्छादिजनकक्रतुस्मृतिनियतमित्य-र्थः । एवमपीह क्रतुस्मृतिनियमे।पपादनं संभवतीत्येतदुक्तं न सार्वेचिक पर्णतादिविध्यव्यापनात्तत्फलकल्पनार्थवादिकफलविवरिणामादिदे।वपरिहाराय स्वत एव पर्यातादीनां फलवदन्वयाकाङ्गया वाक्यात्प्रकरणाद्वा तदलाभाद् लिङ्गात् फलवत्क्रतुस्मृतिनियम इति सार्विचित्रं तद्वपपादनम् ।

\$9€ 1 9E

श्राचाराचन्यार्थद्श्नमिति । नन्वेतदुपोद्वलनार्थमिति टीका-ग्रन्थः स्वयमस्वतन्त्रस्याचारोदेः पर्णमयीन्यायप्रापक्षमपेक्योन्मेषपरत्वेन व्या-स्थातुं न युक्तः किं तु देहातिरिक्तस्य वेदान्तप्रतिपाद्यस्यात्मनः परार्थत्वा-भावादव्यभिचारक्षतुसंबन्धाञ्च इह पर्णमयीन्यायस्यानुन्मेषप्राप्रावाचारादिकम-पेक्य तदुन्मेषपरत्वेन व्याख्यातुं युक्तः श्रसकृदावेदितं ह्यधस्ताद् वेदान्ता-नामक्वनन्यार्थात्मपरत्वम् । न च तस्येहोषमदे ऽस्ति पूर्वपचे न वा सि-द्धान्ते तस्यात्मनः परार्थत्वाभावे न्यायान्तरोपन्यासा ऽस्ति प्राक्सिद्धन्याय-जातमेव हि इहापि सिद्धान्ते स्मारितं देहातिरिक्तस्य च कर्तुनीव्यभिचरित-क्रतुसंबन्धा ऽस्ति दानादिभिरपि तस्य सम्बन्धात्। न वा ऽच क्रतुशब्दो विहितक्रमेमाचेपलचक इति वाच्यम्। निषिद्धक्रमेभिरपि संबन्धात् तान्यपि

^{*} चार्नामति **३ पुः पाः**।

हि स्वफलभागायै देहातिरिक्तात्मसापेचाणि । यदि त्वच क्रतुशब्द: पारली-किकफलसाथनविह्नितनिषिद्धसाधारग्यकम्मेमानोपलचकः स्यात तदा यथा-त्मदर्शनसंस्कृतेनैव क्रषा उनुष्ठितं विहितं कर्म स्वर्ग।दिसाधनं यथा तेनैवा-नुष्ठितं निषिद्धं क्रमे नरकषाधनमिति पामरानुष्ठितनिषिद्धकर्मणां नरकजन-कत्वं न स्यात् । तदाया पुष्करपलाशे आपो न क्लिब्यन्तइति येषामात्म-दर्भनवतां पापा श्लेष: श्रुतः तेषामेव तन्नरकजनकं स्यात् । ननु निषेध-वाक्येषु प्रत्यवायफलकं निषद्धानुष्ठानं न शास्त्रार्थः किं तु प्रत्यवायपरिहारफलकं निषिद्धाननुष्ठानं प्रत्यवायपरिहाराय भवतीति शास्त्राधाङ्गीकारे ने।कदोष: । निषिद्धानुष्ठानेन प्रत्यवायजनने देहातिरिक्षात्मज्ञानानपेचगादिति चेन्मैत्रम्। यवं सति वेदान्तजन्यात्मज्ञानरहितानां निषिद्धाननुष्ठाने ऽपि प्रत्यवायाऽप-रिहारादवश्यंभावी प्रत्यवाया निषिद्धानुष्ठानेनैवास्त्वित प्रतिसंधानेन तेषां तदनुष्ठानप्रसङ्गे दुवीरः । किं चाच क्रत्वव्यभिचारस्तेनाग्निसाध्यक्रमाव्यभि-चार एव पूर्वपित्रणा विवित्तित इति वक्तव्यम् । अन्यथार्ध्वरेतस्यु च शब्दे होति सूचे। तस्य विद्यास्वातन्त्यहेतारनन्वयापते: । पारलै। किकपलकर्माव्यमि-चारविवचायां नैष्ठिकादीनामि स्वात्रयधर्महृपकर्मसन्वाद् विद्यायास्तदङ्ग-त्वोपपत्या स्वातन्त्यं न मिध्येत् । तस्माद्वेदान्तप्रतिपाद्यस्यात्मनः पारार्थ्यक्र-त्वव्यभिचारये।रभावादिहः पर्णमयीन्यायाऽनुन्मेषेण तदुर्ज्जीवनार्थमियमयुति-लिङ्गादिवर्णनमित्येव व्याख्यातुं युक्तम् । न चान्यार्थदर्शनं स्वयंप्रापकसापे-चम् इह तद्रहितं कथमन्ये।पोद्वलकं स्यादिति शङ्कनीयम्। त्राचारदः र्शनमेव हि वैश्वानरविद्यादिप्रशंसार्धत्वाद् अन्यार्थदर्शनम् । यदेवेति श्रुति-रेव तच यदेव करोतीति सर्वनामावधारणाभ्यां व्याप्रिगमकाभ्यां सर्वे कमानूदा तत्साधनत्वेन विद्या तृतीयायुत्या विधीयतइति स्पष्टमेव प्रती-यते । न च तेने।भा कुस्त इति विद्याविहीनस्यापि कर्मात्या किच-द्वीष: | तावता हि षे।डिशिग्रहगावद् वैकल्पिकाङ्गत्वं पिथ्यति न त्वनङ्ग-त्वम् । अत एव तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति विद्यापचे उङ्गभूयस्त्वप्रयुक्तं फल् भूयस्वमनूदाते समन्वारम्भणं तु सिद्धान्ते उप्यङ्गीक्रियते तद्वते। विधानमः प्यविचले। हेत्रधीत्येति ह्यध्ययनकर्गाकार्थेज्ञानफलपर्यन्ता भावनाच्यते फलापवर्गित्याद् भावनायाः । ऋत् एव वाजपेयेनेष्ट्रा बृहस्पतिमवेन यजेते-

त्यव वाजपेये प्रधानयागानुष्ठानानन्तरमेव बृहस्पतिसवयागप्राप्रा फनापवर्गिणी भावना फलाऽपूर्वपर्यन्तेति तन्निष्यन्यर्थादीचाङ्गपहितवाजपेयप्रयागसमा-प्यनन्तरमेव बृहस्पतिसव इति मीमांसकैरङ्गीक्रियते अध्ययनं च स्वस्ववे-दस्य काल्झेन विहितम् । तथा च ऋधीतस्य कृत्स्त्रस्य वेदस्याथीवबीध-फलपर्यन्तस्याधीत्येति गृहस्यात्रमकर्मसु विनियोगात् कर्मभागज्ञानस्येष कथमै।पनिषदात्मज्ञानस्यापि कमानुष्ठाने।पयागितया तच विनियोगे। न षिध्येत्। एवं नियमा ऽप्यविकलः पूर्वपचहेतुः। ईशावास्यमिदं सर्वमित्या-त्मे।पदेशपूर्वकं हि कुर्वन्नेवेति श्रवणमात्मविदे। जीवनस्य कर्मसु विनियागं बाधयदात्मविद्याया एव विधिविभन्या क्रमाङ्गत्वं बाधयेत् । एवं च श्राचारदर्शनमन्यार्थेदर्शनमिष विद्याक्रमेंगीः समप्राधान्येन कर्मगी विद्याङ्ग-त्वेनापपद्यमानमपि यदेव विद्ययेत्याद्यनुगृहीतं विद्यायाः क्रमाङ्गत्वे पर्यव-स्यातिङ्गं भवेदेव । तस्मात्पर्यमयीन्यायोज्जीवनायं स्रुतिलिङ्गापन्यास इत्येव युन्तम् । एवं हि सति देहातिरित्तस्य कर्तुः क्रत्वव्य भचारे। उस्तु वा मा वा श्रात्मा द्रष्ट्रव्य इत्यादिना विधीयमानात्मविद्यायास्त्रव्यप्रत्ययेन तावदात्म-संस्काराचित्वमवगतं यदेव विद्ययेति मुत्या तस्याक्रत्वचैत्वमध्यवगतं य श्राचार्यकुलाद्वेदमधीत्येत्यध्ययनफलापनिषदात्मावबाधस्य ऽपि विद्यायाः क्रमार्थेन्व†मवगतं विद्यायाः स्वातन्चे विद्यानुष्ठाने।पयागि-नस्तस्य कर्मार्थत्वायागात् । श्रेषिनवदात्मसंस्कारस्ववद्यायाः क्रत्वर्थः त्वमै।पनिषदात्मनः क्रत्वर्थत्वे सत्येवापपदाते यचमानस्य क्रत्वर्थत्वे सत्येव हि यजमानसंस्कारस्याञ्जनादेः क्रत्वर्थत्विमिति पर्यमयीन्याया ऽच लब्यप्रसरी भवतीति चेदुच्यते । विद्यायाः ऋत्वर्थेत्वषाधनांशेन पर्णमधीन्यायानुसाह-क्रमपि पदं यदेव विद्ययेत्यादिकं केवलक्रत्वर्थत्वसाधनाय पर्यमयीन्यायसा-पेचम् । त्रम्यया दथ्यादिबद्विद्यायाः पुरुषार्थेत्वमप्यस्तु , फलस्यापि स्वनगा-दिति शङ्काया निवारणं न भवेत् तस्मात्यर्णमयीन्यायानुसाहकत्वं यदेव विद्ययेत्याद्वेरेतदुपे।द्वलनार्थमिति येन टीकाग्रन्थेनाक्तं तेनैव तस्य केवलपुरु-षार्धत्वसाधनांशे न स्वातन्चमिति तदंशे पर्यमयीन्यायसापेचत्वमपि दर्शि-

^{*} दर्भमधीति २ पुः पाः।

[†] क्रत्यर्थत्वमिति ३ पुः पाः।

तमित्यभिप्रायेण तथा ऽवतारितम् । तथा च वनसिंहन्यायेन प्रमाणतर्क-न्यायेन वाभयारप्यंशभेदेन परस्परापेचायामपि न परस्पराश्रयदे। ।

त क्यतेरित्यादिस्त्राणीति । यद्यपि तच्छ्तेरिति सूचं यदेव वि-द्ययेति युतिप्रदर्शकं तथापि तृतीयायुत्यवगतक्रत्वङ्गत्वलिङ्गेन यार्थवादिकफ-लविवद्यया केवलक्रत्वङ्गत्वमवगन्तव्यमिति तदंशाभिप्रायान च्छतेरिति सूचस्य लिङ्गपरत्वेक्तिः । एति ब्रिङ्गद्शेनिमिति । क्वाचित्कीयमन्ययामिद्ध्वितिने सा-वेचिको निर्गुणविद्याप्रकरणे ऽपि तच तच गृहस्यक्रमानुबन्ध्युपाख्यानदर्शना-दित्याशयेनैतदित्युक्तम् ।

सर्वविषयत्वराङ्गामिति। यश्चैवं बेदेति पूर्ववाक्यगतेवंश- ४८०। ६ ब्दमामर्थ्याद्वि यागब्दस्य प्रकृतं विद्यामाचिषयत्वमवश्यंभावीति भाव: । विभाग: शतव शदिति सूचं विद्वदविद्वत्यु रूपमेदेन विद्याक्रमेगीरनुव्रज-नव्यवस्थापक्रमयुक्तम् । निर्गुणविद्यावत उत्क्रमणगमनयारभावेन विद्या-यास्तदनुव्रजनाभाषात् । सगुणविद्यायाः फलभूयस्त्वाये कर्मपापेवत्वेन विद्याकमें थोरेकस्मिन् पुरुषे साहित्यापपत्या विभागाऽनपेचणात् । तस्मा-च्छतन्यायेन विभागे। न सूचगोय इति न वेदसमन्वारम्भणमित्यादिभाष्येण दर्शितमित्येतदविभागे ऽपि न दे। ष इत्यादिटीकायन्येने। त्रम् । त्रमं स्पष्ट-त्वाच व्याख्यात इत्यस्तु श्रध्ययनमाचवत इति सूचस्य तु भाष्यटीकायन्या विचारणोया । भाष्ये तावत्स्वातन्चेण प्रयाजनवद्यदात्मदर्शनं तन्माचयह-ग्रीन व्यावर्त्यते न त्वध्ययनफलमधीवबोधनं न चैतावतीपनिषद्यीवबोध-नस्यापि कम्माङ्गत्वप्रसङ्गः । क्रत्वन्तरज्ञानस्य क्रत्वन्तरस्व तस्य कर्ममाचे अनङ्गत्वे।पपतेरित्युताम् । अनेन भाष्येगार्थाववे।धपलकाध्ययनेतिकर्तव्यः तारूपेण स्नानात् प्राचीनेन विचारेण कृत्स्ववेदार्थावबे।धमङ्गीकृत्य तचापनि-षदंशार्थावबेायस्य कर्मसूर्ययागमाचं व्यावतितमिति प्रतिभाति । तदयुक्तम्‡ । डपनिषद्विचारस्य साधनचतुष्ट्रयसंपन्नाधिकारिकत्वेनाधीतवेदमाचाधिकारिक-त्वाभावात् । टीकायां तु माचग्रहणेने।पनिषदंशस्याध्ययनमेव व्यावर्त्यत-षत्युत्तम् । षदमप्ययुत्तम् । ऋथ्ययनविधेः कृत्स्त्रस्वशाखाविषयत्वात् । तस्मा-

^{*} व्याः सूः ग्रन्३ वाः ४ सूः १**०** ।

[🕽] एतदपुक्तमिति २ पुः पाः ।

[†] श्रवबोधस्यापीति २ पुः पाः।

दिदं भाष्यदीकायन्यद्वयं स्फुटविराधं विचारगीयं कथमाचार्येस्त्यक्तमिति चेदुच्यते । भाष्यकारैरात्मचानस्य कर्मानङ्गत्वान्या दारपरिग्रहप्रभृत्यवश्या-नुष्ठेयिनरन्तरसंतन्यमानं कर्मानुष्ठाना "पयागितया कर्मभागविचार एव स्ना-नात्पवे न तूपनिषद्विचारैः ऽपीत्येतत्युचितमिति स्पष्टमेव । त्राचार्यकुनाद्वेदः मधीत्येत्यव त्वधीत्येत्यध्ययननिवृतिमाचमुतः न तु फलभावनापर्यन्ता ऽध्ययननिवृत्तिः। वाज्ययेयेनेष्टेत्यच तृतीयाश्रत्यवगतफलभावनाकरगात्वनिर्वा-हाय तत्पर्यन्तयागनिवृत्त्यर्थेत्वाभ्यूपगमे उप्यच तादवस्थ्यस्यानङ्गीकनेव्य-त्वात् । अधीत्य वेदं न विज्ञानाति ये। ऽर्थेमिति मुत्यन्तरे अधीत्येत्यस्या-ध्ययननिवृत्तिमात्राधेत्वदर्शनाच्च । न चैवं सत्यधीत्यभिसमावृत्येति सुता-वध्ययनानन्तरमेव । समावनेनप्रसङ्गः । ऋतिनहावाद्यनुष्ठाने।पयागितया समा-बर्ननात्पूर्वे कर्मविचारप्राष्टेः । श्रीमहोत्रादिकर्मसंबन्धे सति कर्मविचारतदर्थ-गुरुकुलवासयारवकाणाभावात् । तस्माद् भाष्ये न का चिदनुपपत्तिः । टीकायां माचग्रहणस्योपनिषद्ध्ययनव्यावनेकत्वेक्तिविचारसाध्यत्वाववे।धपर्यन्ताध्य-यनव्यावर्तकत्वाभिप्राया । सा च विशेष्यव्यावर्तनाऽसंभवाद् विशेषग्रामाच-व्यावर्तनाथा पर्यवस्यति । सर्वेमिदं प्रथमसूचप्रतिपादिताथेपयालेखनया ऽव-गन्तुं शकामित्याचार्य्येस्त्यतम् ।

बहुद्चिणेन विश्वजिदादिनेति । विश्वजिति द्वादशशताधिकं 850 1 5 यस्य यावद् भूमिपुरुषाश्वरजतवज्जे स्वमस्ति तत्सवे दीयतइति तस्य बहुद-विगात्वमुक्तम् । त्रादिशब्देन बहुदचिगात्वेन प्रसिद्धस्याश्वमेधस्य समदशे। ऽग्निष्टोमस्तस्य दीचणीयायामिष्टी द्वादशमानं हिरण्यं ददाति चतुर्वेशति-मानं प्रायणीयायां द्वे चतुर्विशितमाने त्रातिष्यायामित्यादि त्रपृष्ठिशित-शतमष्ट्राविशतिशतमानानि वशाया वराया ‡मित्यन्तेन बहुदविग्रतयातस्य च ग्रहगम् । तच हि दीचगोयाप्रायगोयातिच्याषडुपसदम्नीषे।मीयपशुसवनी-यपशुमवनचयोदयनीयानुबन्ध्यपशुषु द्वादशमानमारभ्योत्तरीतरिद्वगुणा दिन-गाता। कुर्वत्रेव कर्माणि वर्त्तेतेति । कर्मसंक्रान्तिविधिकल्पनं कर्मा-शुभमित्यशुभत्वाध्याहार:। यावच्चीवं संतन्यमानस्कर्ममहिस्सा उन्तरान्तराः

^{*} कर्मान्तरानुष्ठानेति २ पुः। † युतो ध्ययनावन्तरमेवेति २ पुः पाः। ‡ सानानिवाद्यायोवपायामिति ७ पुः पाः। :

कातं पापं कर्म नश्यतीत्यथेः । इदं व्याख्यानं नाविशेषादिति सूचानुसारेण विद्वद्विषयत्वमात्रित्य । स्तुतये उनुमितिवेति सूचानुसारेण विद्वद्विषयत्वे तु भाष्यकारैः श्रुत्यभिप्राये। दर्शित इति न व्याख्यातम् । तस्मिन् पचे श्रामन्त्र-णणब्दोक्ते कामचारणे* लिङ् यथाकामं कर्म करोतु नामेत्यर्थः । नान्यथेते। उस्तीत्यस्य इते। विद्यासामर्थ्याद् श्रन्यथा संसारनिवृत्तिनीस्तीत्यर्थः ।

श्चरं लोकः प्रत्यत्तं फलिमिति । त्रनेन यथा यदाङ्के चतुरेव भ्रातृष्यस्य वृङ्के इत्यादिकर्मविशेषार्थवादिनिर्देष्ठफलस्योभयवापि वर्नमानिर्देशेन प्रतीयमानं तात्कालिकत्वं प्रत्यचिषद्धिमिति तत्यिरिहाराय व्यवधारणकल्पनापेचणात् ततः क्रतु†फलेन फलवन्वकल्पना बलीयमीति तत्यिद्धये
क्रात्वन्वयाकाङ्का नैविमिह तदाकाङ्का ऽस्ति ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवतीति विद्याथेवाद‡निर्देष्ठफलस्य विद्यासमानकालतायाः प्रत्यचिकसद्धत्वाभावात् । लोके
ऽपि भ्रान्तिनिवर्तके तत्वसाचात्कारप्रयुक्ताधिष्ठानस्वस्वपाविभावस्य तात्कालिकत्वदर्शनाच्चेति प्रकृते पर्शमयीन्यायवैषम्यं सूचितम् । इदं भाष्यालाचनया स्पष्टिमिति नेक्तम्
।

परामर्शं जैमिनिरचादना चापवदित हि॥ १८॥

850 198

श्राचेपलच्णामिति । ननु श्राचेपस्य समाधानं कथमनेनाधिकरणेन लभ्यते तव हि वया धर्मस्कन्धा इति विषयवाक्याद् धर्मशब्देन ब्रह्मचा-रिवानप्रस्थयोर्दशितमभ्युदयसाधनकमीस्तित्वं तथैवाङ्गीकृतं संन्यासिना ऽप्य-धिकशोषाष्ट्रग्रासिन्यमशमदमादिह्पं कमीङ्गीकृतं तस्य तपःशब्दवाच्यत्व-माचं परं प्रतिक्रम् । उच्यते । संन्यासिना विद्यां प्रति प्राधान्ययोग्यं किमिष कर्मानङ्गीकृतम् । समधिकशोचादेरानथैक्यमिति चेन्नं तदयेचत्वादिति॥ सूषोक्तन्यायेन (सर्वेकमीपेचितत्वादाचारान्तर्गतस्य तस्य विद्यार्थत्वश्रवणाच्च शुद्धित्वसंपादकत्या शमदमादेः शमदमाद्यपेतः स्यादिति सूषोक्तन्यायेन चितेकाय्यसंपादकत्या च विद्यापयोगित्वात् स्वातन्च्येणाभ्यदयसाधनस्य) १

^{*} कामकारकरणे इति ३ पु॰ पा॰। कामकरणे इति २ पु॰ पा॰।

[†] सस्क्रित्विति ९ पु॰ पा॰। ‡ विध्यर्थवादेति २ पु॰ पा॰।

[🖇] अन्न प्रथमं पुरुषार्थाधिकरसं पूर्णम् । 🖐 इति चेव । सर्वापेचा चेति ९ पुः पाः ।

[¶] यतदन्तर्गता यन्यो नास्ति २-५ वुः याः ।

सर्वस्य कर्मगः संन्यासिना त्यकत्वात् । श्रतस्त्रयाभूतसंन्यासाश्रमास्तित्व-प्रमाधनेन कृताचेषं समाधानं लभ्यते । प्रण्वारूथब्रह्मणः प्रस्तुतत्वा-दिति । ननु ह्यान्दाग्ये चये। धर्मस्कन्धा इत्युपक्रान्तस्य खगडस्याङ्कार ग्वेदं मर्वमिति समापनात् तस्मिन् प्रणवः प्रस्तुत इत्युपपदातां (मध्विद्यायां गुह्या एवादेशा मधुकृता ब्रह्मेव पुष्पमिति प्रणवे ब्रह्मशब्ददर्शनात् प्रणवाख्यं ब्रह्मेत्युपपदाते *) । ब्रह्मषंस्य इत्यच् ब्रह्मशब्दस्य प्रणवपरत्वं तु ने।पप-दाते तदुगासनेनामृतत्वानुपपते: । नान्यः पन्या इति युतिविरोधात् । न चेहामृतत्वमापेचिकं वर्तुं शक्यम् । तथा सति पुग्यलेकिमाजामाश्रमान्तरा-गामपि तत्यन्वेन तदपेचया ब्रह्मसंस्थस्योत्कषीलाभापतेरिति चेत् । उच्छते । प्रश्ने।पनिषदि विमाचप्रणवप्रतीका या ब्रह्मापासनाक्ता सैवाचापि विविचिता तस्याश्च ब्रह्मलेकि तत्त्वसाचात्कारीत्यादनद्वारा ऽऽत्यन्तिकाऽमृ-तत्वफलत्वमुक्तमित्यचापि तदुक्तिरूपपदाते इति तात्पर्यम् । प्रश्ववप्रकरणान-नुरे। घे तु ब्रह्मसंस्थपदं स्वातन् चेण परब्रह्मनिष्ठापरं न तु प्रणवप्रतीक-८८१ । र ब्रह्मोपासनापरमिति द्रष्ट्रव्यम् । स्रप्राप्तार्थद्यप्रतिभानादिति । गृहस्या-श्रमस्य प्रत्यच्रश्रुतिप्राप्रत्वात् चिषु धर्मस्कन्धेषु नैष्ठिकवानप्रस्यक्रुपमेवाप्राप्र-मिति भावः । महापितृयज्ञइति । शाखान्तरं दृष्ट्वीतां प्रताग्निहोचग्रवाथ-स्तात् समिधमिति विधिप्रसिद्धे। ऽनुवाद इत्यव हेतु: वर्तमानापदेशाद् विधियब्दायवगात् हियब्दयुतेश्चेति । त्रप्राप्रस्यानुवादे। न संभवतीति बाधकवारकाथैमुपरि समिधः प्राप्निरित्युक्तम् । प्राप्नुपपादकं हविषा उभ्यः हितद्रव्यत्वादित्यादि । वाक्यान्तरप्राप्ता समिन्नियम्यतइति । तेनैव वाक्यान्तरेगेति शेष: । हविषः प्राग्देश इति । सुग्दगड एव हविराधार-बिलस्थानापरभागरूप: प्राग्देशशब्देन विविचित: यदापि परामर्थ एवाय-मिति माध्येग स्तुतिसामर्थ्यात् ब्रह्मसंस्थत्वे विधिरभ्युपेय इति प्रसाधितं तत्प्रसाधनीय प्रकृतसंन्यासाश्रमसिद्धाः नापयागि, गृहस्थादीनामेवामृतत्व-फलकब्रह्मसंस्थाविधिसंभवादित्याशङ्क्य एतच्छङ्कानिराकरग्रफलं विचारान्तरं भाष्यकारैरारभ्यतइत्यवतारयतीत्याह ब्रह्मसंस्थताविधावपीति । यदावि

^{* ()} स्तदन्तर्गती यन्यो नास्ति २-५ पुः पाः । † प्राप्तं तत्मसाद्येति २ पुः पाः ।

नेपन्यस्तगङ्कानिराकरणाणे विचारान्तरमारभ्यते किं तु तपः शब्देन संन्या-साम्मस्यापि ग्रहणं चतुर्णामप्यात्रमाणां ब्रह्मसंस्थता ऽमृतत्वफलोच्यते इति वृत्तिकारमतिनराकरणाणे तथापि तिव्वराकरणाणेनेव गृहस्थादात्रमेषु ब्रह्म-संस्थपदस्यावयवाणे।संभवप्रदर्शकेन वद्यमाणन्यायेनोपन्यस्तगङ्कानिराकर-णमप्यनुषङ्गता लभ्यतइति तात्पर्यम् । किं च गृहस्थादिष्वमृतत्वफलक-ब्रह्मसंस्थाविध्यभ्युपगमे ऽपि विद्यायाः स्वातन्त्र्यं सिध्यत्येव । कर्माङ्गत्वे फलार्थत्वासंभवादित्यपि द्रष्ट्रव्यम् । प्रथममाग्नेयाद्या मन्त्रा इति । प्रय-मगब्दादये पुनराग्नेय्याग्नीश्रमिति पुनः शब्दाच्च ग्रकस्मिन्नेव वेदे मन्त्रास्ना-स्रतोविविनियोगे।पस्थानविनियोगाः क्रमिका इति प्रतीयते । चन्ये तु मन्त्रा-स्नानस्तोविविनयोगे। सामवेदे उपस्थानिविनयोगस्तु यजुर्वेदइत्याहः ।

अप्रकृताग्नेयीग्रहण्इति । अयमर्थः । आग्नीभ्रापस्थानस्य द्वे ४८२ । १६ रूपे आग्नीश्रोपस्थानत्वं ज्यातिष्ठामाऽपूर्वसिद्धौ।पियकव्यापारत्वं चेामयमि विधातव्यं केवलाग्नी छे। पस्थानत्वविधाने हि नैय्मल्यं स्यात् (फलं वा कल्येत तदादावकृत। ग्नेयी गृह्येत तदा रूपद्वयमप्यनेनैव वाक्येन विधातव्यमिति गै।रवं भवेत् । प्रकृताग्नेयीयहर्षे तु तस्याः)* करणाम्बानाज् ज्येतिष्टेषामगते। व्यापारः कर्तव्यत्वेनावधारितस्य व्यापारस्याग्नीभ्रोपस्यानात्मक्रविशेषह्रप-त्वमविधेयं य श्राग्नेय्या च्येतिष्ट्रोमे व्यापार: कर्तव्य: स श्राग्नीध्रोपस्थाना-त्मक इति विधेयलायवं लभ्यते । ऋता लायवाये प्रकृतेव ग्राह्मित । न तस्याः पारार्थ्यमिति । यदि पारार्थ्यमपि विनियोगान्तरे ऽनुप्रविशेत् तदा विनियुक्तिनियागविरोधदेषः स्याद् यया पुरोडाशकपालेन तुषानुपवपती-त्यचाधिष्ठानलचणानङ्गीकारे तदा हि कपाले पुरोडाशशेषत्वविशेषणम् भन्यशेषत्वव्यवच्छेदकं स्याद्,विशेषणानां स्वविरोधिव्यावनेकस्वभावत्वात् तथा चानुवाद्यपुरोडाश्रशेषत्विविधेयतुषे।पवापशेषत्वया: परस्परविरोधाद वाक्यार्थेप्रतीतिर्ने निष्पद्येतेति तच विनियुक्तविनियागविरोधा देषः । तत्प-रिहाराय च पुरे। डाशशेषत्वरूपविशेषणांशमपहाय वस्तुतस्तद्धिष्ठानकपाल-स्वद्भगमाचे पुरोडाशकपालशब्दस्य लचगा ऽङ्गीकृता । न चेहाग्नेय्या: स्तावशे-षत्वरूपविशेषग्रयवग्रमस्ति येन विनियुक्तविनियोगविरोधगङ्का स्यादित्यर्थः ।

^{* ()} स्तदन्तर्गता यन्या बहिर्निखतः २ पुः । 📑 तथा होति १ पुः पाः ।

नन् यथा त्रीही ग्राचतीत्यव व्रीहिषु क्रतुशेषत्वविशेषणायवणे ऽपि प्राक्-क्रतुशेषत्वेन विनियुक्तत्वात क्रतुशेषाणामेव तेषां ग्रहणुम् एविमिहाप्याग्नेय्याः प्राक् स्ते विशयनत्वेन विनियुक्तत्वात् तथाभूताया एव तस्या यहणं भवेत् स्ताचशेषत्वेन।पाताया उपस्यानशेषत्ववेषयने विनियुक्तविनिये।गदे।ष: स्यादि-त्यागङ्क्याह यदि पुनरिति । ब्रीहयः क्ष चित्कार्ये न विधीयन्ते किं तु ब्रीहीनुद्धिश्य प्रोचणमं स्कारी विधीयते तथाप्रतीतमेवे।द्रेश्यं क चिद्रपयक्तमेव च पंस्कार्यमिति क्रत्वपूर्वार्थत्वेनैव ब्रोहीगां ग्रहणमिति युज्यते न तथेहा-ग्नेगीमुद्धिश्य तत्संस्कारत्वेनापस्थानं विधीयते किं त्वाग्नेय्येव तृतीयाश्रुत्या-पस्थाने साधनत्वेन विधीयते । न च यच वाक्ये यद्विधीयते तस्य तचा-द्वेशे उप्यस्ति तथा सति हि तदुद्वेशेनान्यदपि विधेयमिति वाक्यमेदः स्याद् त्रतो ऽत्र नाग्नेय्युट्टेश्येति न ब्रीहिन्यायेन तस्यां पारार्थ्याविवचा प्रस-च्यतद्त्यर्थः । ननु संनिहितव्यक्तिपरत्वमेवेत्ययुक्तं सिविधिना स्थानप्रमधीना-८८२ । २६ विशेषप्रवृत्तश्रुतिसंके। चाऽये।ग दित्याशङ्क्याह अग्निदेवतेति । न सामान्य-मात्रेति । यदाप्याकृत्यधिकरणन्यायेन जातिरर्थः प्राम्नोति तथाप्य गतदेव-ताप्रकाशकत्वहृपावयवार्थस्य जातावनन्वयाद् त्राग्नेयीशब्दस्य व्यक्तिरेवार्थः। श्रता न जातिद्वारेणामनिहितव्यत्यनुप्रवेशा भवतीत्यर्थः । नन्विग्नदेवत्याना-मृवं नानाच्छन्दस्त्वाद् नानास्कृषत्वाच्च न तास्ववयवार्थातिरिक्तमनुगतं जातिहरं सामान्यमस्ति अतः सामान्ये ये।गा न घटतइत्युक्तिने युक्तेति चेत् । सत्यम् । त्रितिरिक्तमामान्याभ्युपगमे ऽपि इह व्यक्तिवाचित्वमेव वक्त-व्यमित्यभ्युपगमवादे।यम् । त्रस्तु व्यक्तिव।चित्वं तथाप्यविशेषप्रवृतस्रत्यनु-ग्रहायामित्रिहितव्यितिपरत्वमप्यस्तीत्याशङ्क्याह तिस्तान्तर्वेतीति । ग्रनि-र्दे अता ऽस्या इति विग्रहवाक्यगतसर्वनामाथीन्तभीवात् सर्वनाम्बः सिन्न-हितपरामार्थत्वस्वाभाव्यात् सर्वनामसृत्यपेवाकृतः सन्निधिना संकोचा न दोषायेति भावः । ननु व्यक्तयपेच् त्वे ऽपीति । यदाप्ययं व्यक्तिशब्दः तथापि सिन्नहितव्यक्तिपरत्वमयुक्तम् । तस्याः स्ताविविनयुक्तत्वेन गतर-पत्वात् किं त्वपन्निहितव्यक्तिपरत्वमेव हि युक्तमित्यर्थः । व्यतिरेकमुखेन विवृणेतिति । न त्वसाधारणाभ्यामुपक्रमसमाप्ती श्लिघोते इत्येतद्यातिरेक-मुखेन विवरणम् । अधिकमप्याहेति । समधिकशेषं तव इति पूर्वे

शङ्कितम् रदानीं शमादिकमपि तप रति शङ्कनीयान्तरमपि निरमितुमाहे-त्यर्थः । यद्वा ग्रास्थीाचनियमयोस्तपस्त्वाभावे गृहस्यसाधारण्यादिति हेतु-रुतः स तु शमादेरिय तपस्त्वाभावे साधारिया हेतुः । श्रात्मनि सर्वेन्द्रि-याणि संप्रतिष्ठाप्येति गृहस्यस्यापि तदुवितवाह्यान्तरेन्द्रियनिग्रहविधानात् । इदानीं शै।चनियमस्य श्रमादेश्च तपस्त्वाभावे हेन्वन्तरमाहेत्यर्थः । शै।च-संते। षेति पातञ्जलसूचे शे।चं तावत्पृथग् गृहीतमिति स्पष्टं संते। षशब्देन शमदमादिकमपि तपम: पृथग् गृहीतं तदहितस्येन्द्रियवश्यस्य सर्वदेवा-संते।षादिदं पृथग्यहणं हेत्वन्तरम् । एवं च भाष्यमपीति । ब्रह्मसंस्थ इति श्रतेगृहस्यादिविषये यदा तदेत्यध्याहारेण भिन्नुविषये उनध्याहारेण च ये।जने उत्तदे।षं* वाक्यवैद्ध्यालवर्षां हृदि कृत्वा स्पष्टत्वान्मनस्येव निधाय यथामृतार्थापादाने यदातदेत्यध्याहाराऽनध्याहारी विहाय यथामू-तार्थयहरो फलमेदव्यपदेशं पूर्वपचिनरासहेतुं व्यपदेशमेदा उच भवतीति भाष्यं वदतीत्येवं तद्वाष्यं टीकाकारैक्यांख्यातं भवतीत्यर्थः । तपः शब्देन भिचोरग्रहग्रमङ्गीकृत्याविरे।धोषपादने प्रागुक्तदोषं स्मारयति यदा तदेति ४८४ । १८ वैरूप्यादेवेति । तेन तद्गृहणमङ्गीकृत्याऽविरोधोषपादने देाषमाह न च संन्यासस्येति । अग्नेयीन्यायेन दृढीकृतः पूर्वपद्यः कथमाभास इत्याशङ्क्य कृिं सिद्धान्तिन इष्ट्रेत्यारोपाभिप्रायेयमाभासत्वे। किरित्याह सिद्धान्तिन इति । कथं त्रयाणां ब्रह्मसंस्थत्वासंभव इति । जाग्नेयीन्यायेन प्रकृ तेषु चिषु वर्तमानः श्रीतब्रह्मसंस्यगब्द एव कर्मच्छिद्रेषु ब्रह्मनिष्ठा ब्रह्मसं-स्थेति तेषां ब्रह्मसंस्थासंभवमुपपादयतीति भावः । ब्रह्मसंस्थयब्दस्य गृह-स्यादिसाधाराये वैद्धयापतेः तत्साधारायासंभवाञ्च प्रकृतविषयत्वानुपपतेर-प्रकृतविषयत्वं युज्यते प्रकृतार्थनामे ह्यप्रकृतपरामर्थित्वं परिहरणीयं न तद-लाभे ऽपि । अत एवाग्नेयसूक्तेन संवत्सरमुग्दधानमाधीत सूक्तेनाविच्छेदा-येति यावन्ति दाशतयोष्ट्राग्नेयानि सूक्तानि तावतामिष्टकीपधाने ब्रिनियागे तेषां सूक्तानां तचाप्रकृतत्वे । यदि तु ब्रह्मणि मंस्या ऽस्येति सप्रमीसमासं विहाय स्यः क चेति सूचेण स्याधाताः कर्तरि विहितं कप्रत्ययमात्रित्य ब्रह्मणि संस्य इति सप्रमीतत्पुरुष स्राद्रियते

[•] उक्तमित्येव पाठः ९ पुः।

[†] श्रपाकतत्वे अपीति २ पुः याः।

तदा वर्वनामान्तभावा *दाग्नेथीन्यायेन प्रकृतपरामणित्वणङ्काया एव नावकाण इत्यपि द्रष्ट्रव्यम् । ब्रह्मसाचात्कारकामस्य तद्धिकारिणः सत्त्वा-दिति । ब्रह्मसाचात्कारका चिवायागादिकलवदामुध्यिकसाथारणं कलमिति जन्मान्तरसंपन्नसंन्यामाऽपूर्वस्य गार्हस्थ्यद्रशायां कृतत्रवर्णादिकस्यापि भवति अत एव वामदेवस्य गर्भस्थस्य प्रागकृतसंन्यासस्यैव साचात्कारोदयः स्रूयते । देवादीनामप्यकृतसंन्यासनामेव साचात्कारस्तेन मुक्तिश्च स्रूयते तदो। देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवदित्यादौ । घटिकास्थानानि पुग्यचेवविशेषा गोदावरीतटादिषु प्रसिद्धाः । स्राथविणीं स्रुतिम् स्रथास्य पुरुषस्य चत्वारि स्थानानि भवन्तीत्युपक्रम्य ब्रह्मोपनिषदिति प्रसिद्धाम् ।

8८५ । ११

न चात्र सशिखमिति। सेानरीयमत्रं भुञ्जीतेतिवत्कतृत्रिशे-षणमाहित्ये मिणखमिति शब्दः न तु मघृतमत्रं मुञ्जीतेतिवत्कर्म-साहित्यहति भावः । एतदुपनचग्रम् । बहिः सूत्रमित्येतद्प्यपपरिबह्दिर-ञ्चवः पञ्चम्या इति पञ्चम्यन्तेन कृताऽव्ययीभावसमासं सूचाद्वहिर्भूतस्यापि सर्वस्यापि त्यागप्रतिपादनाथै न तु यत्त्वोपवीतस्येति यतेषां मतं तदप्यत्र विविति निरासकहेतुसाम्यात् । बाह्यशिखां व्यावर्स्येति । एतद्वा-ह्मयद्वीपवीतव्यावर्तनस्याप्युपनचग्रम् । ज्ञानयज्ञोपवीतिन इत्यपि वाक्य-शेषाम्बानविशेषयोदाहरयाद् ले।काचगृह्यवचनं चाऽयात: परमहंसपारिव्रा-च्यविधिं व्याख्यास्याम इत्युपक्रम्य प्रवृत्तं स शिखान् केशान्निकृत्य विसुच्य यच्चोपवीतमित्यादिकमचोपबृंहगं द्रष्ट्रव्यम् । ग्रतेन कुर्वन्नेवेह कमीणि जिजीविषेच्छतं समा इति ज्ञानस्तुत्यर्थेकमीनुमितिरिति स्तुत्रयेनु-मितवें कि मूचोितान्यायेन ज्ञानस्तुत्यधैमेव शिखायज्ञोपवीतत्यागानुमितिरि-त्यपि तेषां मतं निरस्तम् । शिखावपनादिविधायकापवृंहगाऽनुगृहीतसिंग-खवपनयचोपवीतत्यागविधिस्तावकत्वस्यैव वाक्यशेषस्य वक्तव्यत्वेन चान-स्तावकत्वोत्त्ययोगात् । न हि परिधीन् परिदर्धाति रचसामपहत्ये न पुरस्तात्परिदधातीति प्राग्देशपरिधानपर्युदासशेषस्यादित्ये। ह्येवाद्यन् पुर-स्ताद् रचांस्यपद्दन्तीत्यर्थेवादस्य तत्स्तावकत्वमपद्दायादित्यस्तावकत्वक-ल्पना युक्ता। ननु —

^{*} अपन्तर्भावादिति २ पु∵षा∗।

र्कव्याः सूः श्रः ३ पाः ४ सुः १४।

चानदर्गे। धृता येन एकदर्गी स उच्यते। काष्ट्रदरखो धृते। येन सर्वाशी चानवार्जत: । स याति नरकान् घारान्महारीरवसंचकान्॥

परमश्वंसापनिषदि यतीनां ज्ञानमेव दगडो न काष्ठ-मवगस्य चानस्तुत्यर्थत्वमेव वक्तव्यं न काष्ट्रदर्श्वयावनेकत्वं दग्डधारणस्य सिद्धान्ते ऽप्यभ्युपगतत्वात् । दग्डधारणा रीरवादि-प्राप्ने: केनाप्यनभ्युगगतत्वाच्च । तद्वदिहापि किं न स्यादिति चेदुच्यते । सच सर्वान् कामान् परित्यच्याद्वेते परमे स्थितिरिति ब्रह्मनिष्ठायाः प्रकृतत्वेन स्तुत्यर्थन्व "मुषपद्यते यः संन्यस्यापि ब्रह्मनिष्ठां विद्याय केयलमञ्जलाभाय यतिलिङ्गकाष्ठं धृत्वा अभिशस्तपतितपर्यन्तानां सर्वेवामज्ञमः रनन् पर्य्यटित तस्य राैरवादिप्राप्तिरित्यप्युपपदाते । इह तु शिखायचोपवीः तत्यागविधिशेषस्य तत्स्तावकत्वमेव वक्तव्यं न तु चानस्तावकत्वमिति वैष-म्यम् । एतेन यज्ञोपवीतत्यागविधिः पुराग्ययज्ञोपवीतविषयः गृहस्यथार्यद्वि-तीययचोपवीतविषया वेति यत्केषां चिन्मतं तत् शिखावपनविधावपि पुरा-गणिखाविषयत्वेन सञ्चारियतुं शक्यं तदिप प्रत्युक्तम् । ज्ञानशिखिना ज्ञान-यचोपवीतिन इति अमेरिव शिखा नान्या यस्य चानमयी शिखेति च वा-क्यविशेषे सर्वेष्ठेव बाह्यशिखाववीतव्यावर्ननात् परमहंसे।पनिषदाद्वयानन्दवि-चानघन एशस्मि तदेव मम परमं धाम तदेव शिखा तदेवीपवीतं चेत्येव-मेव बाह्यणिखापवीतव्यावर्तनात् । त्राहरण्युपनिषदि दराडमाच्छादनं के। पीनं परियहेत् शेषं विन्नजेदिति सवै त्यक्षा दगडके। पीनाच्छादनमानस्यैव परिग्राह्मते। क्रेट्यच्युतिविरोधेन नूतने।पवीतादिग्रहगार्थेऋयुतिस्मृति-षाल्पनानुपपतेश्च । तादृग्वचनसद्भावे कुटीचकादिविषयत्वोपपतेश्च ।

शिखायचोपवीतत्यागविधेकतानबुद्धिभिक्त्रीतां विषयान्तरकल्पनां निरस्यति न चैतद् बिन्निदिनेति। सिद्धं प्रति तद्वैयर्थ्यादिति। उत्यन्नन- ४८५ । २२ स्मषाचात्कारं प्रति ध्यानविधिवैष्यर्थादित्यर्थः । एतदुपलचणम् उनीर्णेषवेवि-धिकातं प्रति वचनादि‡विधिवैयर्थ्याच्चेत्यपि द्रष्ट्रव्यम् । सर्वेत्थागाद्स्ति

प्रस्रतेन तत्स्तुत्यर्थत्विमिति ९ पुः पाः ।

[ा] भारययोपनिषदीति ३ पु॰ पा॰ । ‡ वचनानीत्यसंगतः पाठः ३ पु॰ ।

संभव इति । सर्वे त्यत्तवत स्वावासस्त्यं संभवति विदर्गं क्रमण्डलं शिक्यं पार्च जलपविचं मेखलां यचोपवीतमित्येतद् भूः स्वाहेत्यप्पु परित्यच्यातमा-नमन्त्रिच्छेद् यथाजातस्प्रथर इति जाबाले।पनिषदि सर्वे त्यक्तवत एव यथाजातसूपधर इत्यवासस्त्वोत्तेः। परमहंसे।पनिषदि सामान्यतः परमहंसः य दण्डकीपीनाच्छादनमाचयहणमुक्ता तच्च न मुख्योस्ति के। उयं मुख्य इति तदयं मुख्यो न दर्गं न शिखां न यज्ञोपवीतं नाच्छादनं चरति परमहं न र्सत मुख्यपरमहंसस्यावासस्त्वोत्तेश्व । वैश्वानरसूचे परमहंसानां वृत्तमूले शून्यागारे श्मशाने वासिन: साम्बरा दिगम्बरा वा न तेषां धर्माधर्माव-त्यादिनेदाहृते।पनिषदुपबृंहगाद्य । तस्माद्यमस्मृताववासस्त्वोन्तिन्तत्सहनि-यततया श्रुतिसिद्धं शिखायचोपवीतत्यागमपि स्मर्तुराशयस्यम् स्राविष्क-४८६ । २ रोतीति भावः । हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिता इति प्राण्पक्रमा∗दिति। ष्ट्रदि प्राग्रस्य च्योतिश्चेति प्राग्रापक्रमादित्युदाहरगोयम् । बहुत्रचनान्तप्राग्रगः ब्दस्य चतुरादिपरत्वेन हिरण्यगर्भपरत्वाऽभावात् । सादृश्यरूपेति । यदापि संशिखं वपनं कृत्वा बहि:सूचं त्यजेद्वच इत्येतस्योतराद्धे यदवरं परं ब्रह्म तत्सूर्वमिति धारयेदित्यस्मिन् पठितस्य ब्रह्मपरस्य सूर्वशब्दस्य सूरमादृश्यमूला गाँगी वृत्तिवाच्या ।

येन सर्वेमिदं प्रोतं सूचे मिणगणा इव । तत्सूचं धारयेद्योगी यागिवनत्वदर्षिवान् ॥

इत्यनन्तरमन्त्रानुरोधात् । तथापि बहिः सूचिमत्यच सा न वाच्या विकारविकारिभावहृपसाचात्संबन्धमूलक्रसन्निकृष्टार्थलचिणापपतेः । ज्ञानिश-खिना ज्ञानयचोपवीतिनः शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्मयमिति वाक्यशेषेण त्याच्यसूचस्योपवीतत्वावधारणाच्चेति तात्पर्य्यम् । हृच्छव्देा-क्तमिति ।

हृदिस्या देवताः सवी हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः । हृदि प्राणश्च ज्योतिश्च चिवृत्सूचं च तद्विदुः ॥ इति श्लोको हृच्छब्दोत्तं ब्रस्म तच्छब्देन परामृश्य तस्य चिवृच्छब्देन चिवृत्कृतप्रपञ्चातमत्वपरेण चिसूचत्वसंपादनादित्यर्थः । यज्ञोपवीतसाध्ये-

^{*} प्राणीपक्रमादिति १-५ पुः पाः ।

मूचपुरीषकर्मभाजनादिप्रयुक्तं प्रायत्यमुक्तिष्ठृत्वं स्वापादिनिमितं तदश्चित्वम् उभयमपि यज्ञोपवीतं विना कृते प्रयाचमने नापैति । विना यचोपवीतेन त्राचान्तो ऽप्यश्विभवेदित्यादिस्मरणात् । त्रत उच्छिष्टाऽशुचि-त्विनवृतिर्यज्ञोपवीतमाध्येत्यर्थः । एतेनेति । यज्ञोपवीतकार्योऽशुवित्विन- ४८६ । १९ वृत्तिकरत्वेनेत्यर्थः । एकार्थत्वादिति । तथा च बहिः मूचं त्यनेदित्यते। ऽपि संन्यासस्य प्रकृतत्वं वतुं शक्यमित्यर्थः । श्रपरमहंस इति । परमहं पविषययचो पवीतादित्यागवचनस्य पर्युदासवृत्या नित्यादकी नित्ययचोपवीतीत्यादिकम्काग्डगतयचोपवीतादिविध्यन्वयेन सदेकवात्र्यतेति भावः । नित्यविधिभिरिति । पुरुषार्थतया सर्वकर्मार्थ-तया च मदोपबीतादिथारणविथया नित्यविधयः ते तद्धारणनिवृत्तितः। प्रत्यवायं बल्पियत्वा पुरुषं सदा तद्वार्यो प्रवर्तयन्ति तेषु सत्सु निषेधः कथं प्रत्यवायापादिकां निवृत्तिं कारयेद् ऋता निषेधा उभ्यवगन्तुं‡ न युक्त इत्यर्थः । ननु निषेधः प्रवृत्तौ प्रत्यवायं कल्पयित्वा निवर्त्तयतु न च प्रवर्ते-कशास्त्रेण विरोधस्तस्य सामान्यशास्त्रस्य निषेधशास्त्रविषयपरमहंसातिरिक-विषयत्वेन व्यवस्थोपपनेरित्याशङ्काह न च प्रवृत्ताविति । परमहंसवि-षये ऽप्युपवीतादिधारणविधयः प्रवर्तन्ते न वा§ । प्रवर्तन्ते । चेन्कयमुपवीः तादि निषेद्धुं शक्यम् । न हि शास्त्रप्राप्रस्य रागप्राप्रवत् सर्वेषा निषेधा उस्ति प्रापक्रशास्त्रस्याप्रामाण्यप्रसङ्गात् । विकल्पाऽभ्युपगतावष्टदाषदुष्टः ¶ स गव दोष: । न प्रवर्तन्ते चेतचाह तथा सतीति । निषेध्यग्राप्यभावे निषेध: सर्वेथैव नात्मानमासादयेदित्यर्थ: । प्रवर्तन्तइति पचे निषेधस्य विकल्पेन वान्मेषा ऽस्ति से।ऽपि नास्त्यस्मिन् पचहत्याशयेन सर्वनाशप्रसङ्गा-दित्युक्तम् । तस्मात्पर्युदास इति । न च पर्युदासपचे प्रकरणान्तरगतवा- ,, । २४ क्यशेषत्वमङ्गीकर्नव्यं तता वरं विकल्प ग्वास्त्वित वाच्यम् । श्रयमेका दे।षः पर्युदासे विकल्पे ऽष्टी दे।षा इति तस्यैव परिहरगीयत्वात् । दीविता न जुहोति. न ते। पशे। करोतीत्यनयोर्विकल्पपरिहारार्थे पर्युदासवृत्या

^{*} साम्येतीतिः पा॰ २ पु॰ ।ः

[🛊] श्रभ्युपगन्तुमित्सुचितम् ।

[∥] पवर्ततेः इति २ षुः पा∙ । स्वसग्रेपि ।

[🛧] निवृत्ताविति १ पुः पाः।

[§] विषयः प्रवर्तते न वेति २ पुः पाः।

प देशबद्ध स्ति १ पुः पाः ।

उग्निहोचादिवाक्यपाणुकप्रकृतिवत् शब्दशेषत्ययोर्भट्टाचार्येर्ग्रहिभरिष अङ्गीकृ-तत्वाच्च । व्यवह्रियमाणेति । पराशरस्मृतिहि श्लोकरूपा द्वादशाध्यायी सर्वेषु देशेषु व्यवह्रियते तचैतद्वाक्यं दृश्यतहत्यर्थः ।

४८६ । ३०

कल्पने चेति । यदि सामान्यतः संन्यासिविषये कल्यते तदा कुटी-चकादिषु चारिताच्ये स्पष्टं विशेषतः परमहंसविषये तु कल्पनैव नानमञ्जति प्रत्यश्चम्तिविरोधात्। सिशिखमिति ब्रह्मोपनिषद्वचनं हि परमहंसविषयं ये।ग-मुतममास्थित इति श्रवणात् । सम्यग्त्वानसाधनानां संन्यासानां मध्ये पारमहं-स्यमेव ह्युत्रमं साधनं सर्वकर्मत्यागेनानन्यव्यापारतया दृढिचितैकारयसंभवात् । दण्डमाच्छादनं की।पीनं परिग्रहेत् शेषं विस्रजेदित्याहण्युपनिषद्वचनमपि परम-हंसविषयम्। त्राकृषाः प्रजापतेर्लेकं जगाम तं गत्वोवाच केन भगवन् कर्माएय-घेषता विस्रजानीति सर्वकर्मत्यागापक्रमात् कुटीचकादिषु तदभावात् । अग्रे च तस्यामुपनिषदि श्रयातः परमहंसपरित्राजकानामिति परमहंसमुपक्रम्य त्यजेत् पितरं पुचम् श्रान्युपवीतं कर्म कलचं यञ्चान्यदपीहेत्याम्बानात् विद्याः क्रमण्डलुमित्यादिजाबालोपनिषद्वचनमपि परमहंसविषयम् । तत्र पर-महंसा नाम संवर्तकारियाखेतकेत्वित्याद्युपक्रमात् संन्यासेन देहत्यागं करोती-त्यन्तेन संन्यासवृतिकथनानन्तरं स परमहंसे। नामेत्युपसंहाराच्च न दग्रखं न शिखामित्यादिपरमहंसे।पनिषद्वचनमप्यये।गिनां परमहंसानां के। ऽयं मार्ग इति परमापन्नमादेव परमञ्चंचिषयमिति स्पष्टम्। श्रय परिव्राखेक्या-टीपरिहिता मुग्डे।दरपाच्यरग्यनित्या भिचाय गामं प्रविशेदासायं प्रदक्षिणे-नाऽविचिकित्सन् सार्ववर्णिकं भैत्तचर्यम् श्राभणस्तर्गततवर्ष्नमयज्ञोपवीती श्रीचिनष्ठः काममेकं वैग्रवदग्डमाददीतेति मेचायग्रोपनिषद्वचनमपि परमहं-सविषयमेव । मुगडेकदगडत्वलिङ्गात् । ग्वंमूताभिः प्रत्यचश्रुतिभिर्विसद्धाः भूयमाणाः स्मृतयः सन्ति चेदप्रमाणा ह्येव यथा संन्यासविधायकप्रत्यचमु-तिविषद्धास्तिविराकरणस्त्रतयः । त्रापस्तम्बसूचे ह्यर्ध्वरेतसामात्रमाणां देव-यानपथम्बवादनुग्रहमाचेण वृष्ट्यानयनापत्यदानादिशक्तिसद्वावाच स्त्यमस्तीति पूर्वपद्यं कृत्वा पर्योविद्यवृद्धानां तु वेदाः प्रमाणमिति निष्ठाः त्तव यानि मूयन्ते वीहियवपश्वाच्यपयःक्रवालप्रवीसंयुक्तान्युचेनेचिः कार्य-

^{*} विम्रजानीति च पुः याः।

मिति चयीविसद्ध श्राचारे। ऽप्रमाणमिति मन्यतद्ति तेषामप्रामाणिकत्वेन निराक्षरणं कृतम्। गृहस्थधमेषु वर्तमानानामेष ब्रह्मलोक श्राप्रमान्तरं प्रशंस-चि प्रत्यवेतीत्यस्मिचर्थे ब्रह्मधचनमप्युदाहृतम्। चयीविद्यां ब्रह्मचय्ये प्रजाति श्रद्धान्तये। यच्चमनुप्रदानं ययतानि कुर्वते तेरिहत्यह स्म धारचा भूत्वा ध्यंसते ऽन्यत्प्रशंसचिति । तथा महाभारते कर्यादिवधनिर्विण्णं प्रव्रजनोद्युत्तं युधि-श्रिरं प्रति भ्रातृणां द्रौपद्याः ऋषीणां भगवतश्य वचनानि संन्यासनिन्दा-पराणि बहूनि श्रूयन्ते ।

काषायधारगं मे।गडां चिविष्टच्यं कमगडलुम् । निङ्गान्यन्नार्थमेतानि न माचायेति मे मति: ॥

दत्यादीनि । यदि प्रत्यचयुतिविद्युन्यिष स्मृतिवद्यनान्यपेद्येरन्
तदा षंन्यास यव प्रत्याख्यायेत क्व तचोपवीतादिसदसद्वाविच्ता । यद्युच्येत कर्मठानापातविरत्या प्रव्रचनोद्युक्तांस्ततो निवर्त्य कर्मस्वेव नितरां कर्तुमापस्तम्बसूचे संन्यासनिराकरणं युचिष्ठिरं राच्यपरिपालने प्रवर्त्तयितुं तिव्वराक्षरणमित्येवं प्रत्यचसंन्यासविध्यविरोधेन तादृग्वचनजातं नीयतद्दिति तदा
पारमहंस्योपयुक्ततीव्रवेराग्यराहित्ये ऽपि तत्स्वीकरणप्रवृतान् कुटीच्कादीन्
यथापूचे स्वस्ववृत्ताववस्थापयितुं परमहंसानामिष शिखायचोपवीतादिकमस्ति
न कश्चिद्विशेष इति तत्तदृत्तिप्रशंसार्थत्वेन तान्यपि वचनानि नीयन्तां प्रत्यस्युतिविरोधस्य परिहरणीयत्वाऽविशेषात् ।

कर्मण्यिधकृता ये तु वैदिके ब्राह्मणादयः । गमिद्धार्य्यमिदं सूचं क्रियाङ्गं तद्धि तैः स्मृतम् ॥

दित ब्रह्मोपनिषद्वचने। प्रवृह्णार्थे व्यासस्मरणं यद्योपवीतं कर्माङ्गमिन्यादि । यद्यपि परमहंसस्यापि श्रवणमननध्यानप्रणवनपभाननावमनादि कर्मास्त्रीति सर्वकर्मार्थतया विहितमुपवीतं तस्मात्प्राग्नोति तथापि तस्यात्म- ह्याने। पर्वति तनेव तिव्वविहः । तथेव की। षीतिकव्राह्मणे प्रश्नोत्तराभ्या- मुपपादितम्। तत्र हि किमस्य यद्योपवीतं का वा उस्य शिखा कयं वे। पर्यानमिति प्रश्नः । इदमेवास्य तद्यद्योपवीतं यदात्मद्यानं विद्या शिखेत्याद्यत्त- स्म । अवोपस्पर्यनग्रहणं श्रवणादीनामप्युपलद्यणं द्यानशिखिना द्यानयद्योप- वीतिन इत्यादिप्रागुदाहृतवचनते। ऽपि संन्यासिकमंबाह्यशिखायद्योपवीता-

वेदान्तकल्पतहपरिमले [ऋ ३ पा ४ ऋधि २ नपेचमित्यवधृतम् । ऋतस्तदितराश्रमकर्माङ्गत्वमेव बाह्ययचोपवीतस्य परि-शिष्यते तद्यभावात् परमहंसस्य न तदपेन्नेति भावः ।

के चन प्रात्तनमुपबीतं त्यह्मा नूतनं ग्राह्यं नखानि निकृत्य पुरागा-वस्त्रं यद्वीपवीतं क्रमगडलुं त्यक्षा नवानि गृहीत्वा ग्रामं प्रविशेदिति स्मर-णादिति मन्यन्ते तन्मतिनरासाय वैयासिकं तचत्यदृष्टान्तवचनमप्युदाहरति अग्निहोत्रेति । अग्निहोचविनाशे। यजमानपातित्यादिना अग्निविनाशः। इष्ट्यन्तः चरमेष्ट्रान्तः । एवं च नूतनग्रहणस्मृतिबेहूदकादिविषयेति भावः ।

1 628

एकद्र्या त्रिद्र्याति । (प्रव शिखी चिद्र्यदीति) वहू-दकादिविषयं मुग्डित एकदग्डोति परमहंचविषयं काषायमाचधारिया इति ये। मुख्यपरमहंसे। दग्डमप्यनिच्छन् पामरजनसंकोचपरिहाराय कै।पीनाच्छादनः मारं धारयति तद्विषयम् । न च परमहं सस्यापि चिदण्डित्वं शङ्कनीयम् । जाञाले।पनिषदि पारमहंस्यप्रवेशे विदग्डं क्रमग्डलुमित्यादिना विदग्डपरि-त्यागस्यातत्वात् । श्रारुण्यपनिषदि कुटीचका ब्रह्मचारी कुटुम्बं विस्रजेत् (पाचं विस्रजेद् दराडान् विस्रजेदिति)‡ क्रुटीचकस्य पारमहंस्यप्रवेशे दराडा-निति बहुवचनेन चिद्राडपरित्यागमुक्षा श्रनन्तरं सखा मा गोपायेत्यादिकमेतं से। ऽश्मानमृच्छित्वत्यन्तं मन्त्रमुणदायान्तेन मन्त्रेग कृत्वोध्ये वैगावं दगडं क्री।पीनं परियहेदिति तेन मन्त्रेण एकदग्डपरियहस्योक्तत्वाद्य । स्कन्दपुराणे च

कै। पीनाच्छादनं वस्त्रं अन्यां घीतनिवारिणीम्। श्रवमालां च गृह्हीयाद्वेणवं दग्डमव्रणम् ॥ परमहंस∮स्त्रिदग्डं च रञ्जुं गोवाल∥निर्मिताम् । शिखां यद्वीपवीतं च नित्यकर्म च संत्यजेत् ॥

इति परमहंसस्य विदग्डत्यागैकदग्डग्रहग्योक्ततत्वाच्च । श्रथ पर-मपरित्राजकालिङ्गं सर्वतः परिमाचमेके सत्यानृते सुखदुः खे वेदानिमं लेकि-. ममुं च परित्यच्यात्मानमन्त्रिच्छेत् शिखायचोपवीतचिदग्डकमग्रडलुकपालानां त्यागीति विश्वामिषेग तदूध्वै यज्ञोपवीतं मन्त्रमाच्छादनं यष्टिं शिक्यं जल-

^{*} त्रिवगडी वेति ९ पुः पाः। † () एतन्मध्यमा ग्रन्था नास्ति १ पु.।

^{‡ ()} यतवन्तर्गतयन्यस्थाने-दयहान् विस्कोविति पाठः ९ पुः । § परहंस इति २ ए∙ पा∙। ∥ गापालेति २ पु॰ पा॰। ¶ न स्थजेविति २ पुः पाः ।

पविषं कमगडलुं पार्चामत्येतानि वर्ज्ञायत्वा ऽयेकदगडकमगडलुकपालाना-दत्ते* सखा मा गेपायेति बे।धायनेन च परमहंसस्य विदग्डत्यागैकद-गडग्रहग्ये।हत्तत्वात् । गतेन परमहंसस्य विदग्डालाभे ग्रवदगडग्रहग्यं कार्य्यमिति तथामुख्याऽमुख्यत्या विकल्पं कल्पयन्तौ

> नष्टे जलपविचे च चिद्रगाडे वा प्रमादत: । एकं तु वैगावं दग्रडं पालाघं बैल्वमेव वा । गृष्टीत्वा विचरेतावद्यावल्लभ्यं चिद्रगडकम् ॥

इति स्मृतिवचनमुदाहरन्ते। निरस्ताः। जावाने।पनिषदि पारमहंस्य-प्रवेशे चिदग्रहत्यागस्योक्तत्वात्। अनन्तरं यथाजातसूपधरा निष्परिग्रह् इत्युक्तत्वेन पुनस्त्रिदग्रहान्तरपरिग्रहानुमतेरनाशङ्कनीयत्वाञ्च। आरुग्युपनि-षदि चिदग्रहत्यागपूर्वकमेकदग्रहग्रहग्रस्योक्तत्वाञ्च।

> चिद्रग्डस्य परित्याग एकदग्डस्य धारग्रम् । एकस्मिन् दृश्यते वाक्ये तस्मादस्य प्रधानता ॥

इति व्यासस्मृतावास्य्युपनिषद्वचनावलम्बनेनेव प्रमहंसानामेकद्वर्ण्यस्यामुख्यत्वशङ्काया निराकृतत्वाच्च । तस्मादमुख्यत्वस्मणं कुटीचकाटिविषयं योज्यम् । तथा सित पालाशं बैल्वमादुम्बरं दर्ग्यस्मिज्नं मेखलां यज्ञोप्योतं च त्यक्षेत्र्यास्य्युपनिषदुपमंहारवचनमपि धृतामुख्येकदर्ग्यकुटीचका-दिपारमहंस्यप्रवेशविषयत्योपपद्यते । नन्वस्तु शिखायज्ञोपवीतरहितेकदर्ग्यादिकं परमहंस्य्य मुख्यं तत्स्विहितं † विदर्ग्यादिकमपि तस्य विकल्पेन मुख्यं भवन्न निवारियतुं शक्यम् । श्रन्यथा परमहंसविषयचिदर्ग्यादिवचनानां निराल्यम्बनत्वापतेः । इन्द्रस्य वज्रोसीति वैग्यवान् दर्ग्यात् दिच्यो पाणी धारयेद् एकं षा यद्येकं तदा सिशखं वपनं कृत्वा यज्ञोपवीतं त्यनेदिति मेवायणीयश्रुतान्वकदर्ग्यी विदर्ग्ये वा मुग्रवः शिखो वेत्यादिस्पृतिषु च विकल्पस्मरग्रात् । कामनेमकं त्ववैग्यं दर्ग्यसाददीतिति मेवायणीयश्रुतावकदर्ग्यविद्यां कामग्रव्दोत्त्या यश्राजातम्वर्गयः प्राचीमुदीचीं वा दिश्यं प्रव्रजीतिष्ठ भगवन् दग्रवं गृहाग्येन्यध्यप्र्यां दत्तं मस्तकप्रमागं सन्नतमृजुं साम्यमेकं वेग्यं दर्ग्यविनन्दस्य वज्ञो ऽसि सखा मा गापायेति यदीच्छेद् दर्थीतिति लोकाचगृद्ये यदीच्छेन्यस्य

^{*} यक्तवयस्मादते दक्ति ९ पुः याः। 💎 🕇 त

[†] तत्स्रवितसिति ९ पुः पाः।

दिति शब्देन वैगवदग्रहस्य पाचिकतास्मुटीकरगाञ्च । विद्यहपरित्यागादि-वचनानामेकदग्रहादिपचिवयतयोपपतेश्च । तस्मात्पारमहंस्ये पाचिकत्या ऽपि प्रविशेत् विद्यहादिकं न प्रत्याख्यातुं शक्यमितीदं पारमहंस्ये यथा कथं विविद्दग्हादिषद्वावं व्यवस्थापियतुं धृतव्यसनानां ब्रह्मास्त्रमिति चेदुच्यते । विकल्प ग्वाष्टदेषदुष्टुः सित गत्यन्तरे न युक्तः । नतरां विद्यहेकदग्रहा-दिकयोर्गुहलघुनाः समविकल्पः । नतमामेकदग्रहादासंभवे विद्यहादिकमिप मुख्यामुख्यविकल्पः । तस्मात्केनापि प्रकारेण व्यवस्थितविकल्पासंभवाद् वाशब्दयुक्तान्यदाहृतश्वतिस्मृतिवचनानि प्रागुदाहृतबहुश्वतिस्मृत्यनुसारेण कु-दीचकादिविषये परमहंस्विषये च व्यवस्थितविकल्पानि योज्यानि । मेचा-यगीयश्वती कामशब्दस्य लोकाचगृह्ये यदीच्छेदिति शब्दस्य चायहणेन विकल्पार्थतेव स्वरसतः प्रतीयते तच चायहणपचा मुख्यविद्वत्परमहंस्विष-यं पचान्तरं मुख्यविविदुषुपरमहंस्विषयमिति वचनानुसारेण व्यवतिष्ठते । पर-महंस्विषये विद्यहवचनं यदि क्व चित्का वित्स्यात् तत्सवे वायदग्रहादिवि-षयम् । तथाह मनुः ॥

वाग्दराखे उथ मनादराखः कर्मदराखश्च ते चयः । यस्मैते नियता बुद्धैा चिदराखीति स उच्यते ॥ इति । दचश्चेमं श्लोकं पठित्वा वाग्दराखादिलचरामाह वाग्दराखे मीनमातिष्ठेत्कर्मदराखस्त्वनीहता । मानसस्य तु दराखन्य प्राणायामा विधीयते ॥ इति ।

एवं च चतुर्था भिचवो विद्राः सर्वे चैव चिटाएडन इति विद्राण्डस्य सर्वेमंन्याममाधाराग्यवचनान्यपि वाग्द्राण्डादिविषयत्वेन व्याख्यातानि । युधिष्ठिरधनञ्जययोः परिव्राजकवेषयहणे यद्योपवीतादिसद्वावो राजगृहेषु चिरनिवामार्थितया कुटीचकादानुकरणाद् यद्योपवीतादात्यागेन कुटीचकादानुकरणे सम्भवति स्वाश्रमित्रसद्धेन तत्त्यागेन परमहंसानुकरणाऽनीचित्यात् ।
एवं द्रणाननस्यापि कुटीचकादानुकरणादेव यद्योपवीतादिसद्वावो राजधमेप्रश्रंमार्थमिति राजधमेप्रशंसया युधिष्ठिरं राज्ये प्रवर्तयितुं संन्यासाश्रमितन्दायां
मुण्डा निस्तन्तव इति शिखायद्योपवीतराहित्येन संन्यासाश्रमपरामर्थः
कृतः । तेन तादुम्यं तस्यात्रमस्यावसीयते । यथा ।

श्रानिहोषं षया वेदास्तिपुग्दं भस्मकुग्डनम्*। बुद्धिपै। स्वहीनानां जीविकेति वृहस्पति: ॥

इति बृहस्पतिमतं प्रशंधितुं वैदिकनिन्दायामग्निहोपादिपराम-र्येन वेदिकमार्गस्य तादुम्यंमिति भाव: ।

सतामप्यविरोधि योदिति । यन्तः ब्रह्मसाद्यत्कारवन्तः। श्रस्ति ४८८ । ३ मस्रोति चेद्वेद सन्तमेनं तता विदुरिति श्रुतेस्तेषामद्वितीयब्रह्मसाद्यात्कार-निरस्त्रसमस्तकर्तृकर्मक्रियादिमेदप्रषञ्चानामप्यविरोधि नैष्कर्म्यादिति भाव:। अस्तामप्यविरोधीति क्ष चित्पाठः । तचासन्तः पापिनः ये‡ तेषामप्य-विरोधि सक्तलपापचयहेत्त्वादिति भावः। यजुःशाखायाम् । यजुः शाखा-ख्यवेदशाखाविशेषे। परब्रह्मे।दितं न्यास इति ब्रह्मेत्यादिश्रुते।। तत्तदाग-मेति । त्रागमयन्त्यथानित्यागमाः प्रमाणानि ते तु प्रतिवाक्यादय आग-मास्तेषां कर्माणि तानि तत्तदागमानि तान्याचरन्तीति तत्तदागमाचाराः कम्मेर्ग्यणिति कर्मग्युपपढे धातारग्प्रत्यपः । यज्ञदानतपःप्रभृतिबहुविधकमी-नुष्ठानशुद्धान्तः करणास्तैश्वेष्टितमनुष्टितमित्ययैः । चेष्टितमित्यनेन बहवा ऽच प्रवृता इति सूच्यते । ब्रह्माराधनमुख्यानां परब्रह्मापासनाप्रभृतीनां तीव्रतेज्यां महाफलानां व्रतानां परमं तेभ्यः येष्ठमित्यन्वयः । दग्रडहस्तास्तु धंज्ञाता हस्तगतदराखेनैव लिङ्गेन परमहंचा इति ज्ञायमाना: पुरा देहान्तरे मया चीण न तु तस्मिन् देहे गृहीतं पारमहंस्यत्यागेन पुनराश्रमान्तरपरि-यहासंभवात् शिखायचापवीते न त्यत्ते तत्कयमसै। द्विज इति मूर्खैदेवली-केषु देवदानवैः पूजिते। ऽपि स निन्दातइत्यन्वयः । मूर्वेरित्यध्याहर्तः व्यम् । ननु जाबाले।पनिषदि परमहंसानां संवर्तास्याप्र तकेतुदुवीसक्रभुनि-दाचजडभरतदनाचेयरैवर्तकप्रभृतय इति दुवीषषः परमहंसेषु परिगणनं कृतं तस्य च हंपडिम्भकोपाख्याने ताभ्यां छिन्नाः शिक्यादया वर्णिताः। चतः शिक्यतत्पहचरितचिदग्डपविचादिकं परमहंषस्याप्यस्तीत्यवसीयते इत्यायङ्क्याह पराकान्तं चेति। अयमाशयः । तस्मिन्नुपाख्याने हंसाः ४८६। २

* त्रिवयदं भस्मगुषठनमिति पाठान्तरम् ।

[🕇] सूने ऽविरोधयदिति प्रमादान्मुद्रितं तदेवं शोध्यम् ।

[‡] में इति नास्ति १ पुरा § यज्ञधाखायाति २ पु. पा.।

परमहंसाश्चेति दुवीससम्वत्तमाना हंसादया ऽपि यतया वांगेताः तदीय-शिक्यादिविषयं भविष्यति शिक्यच्छेदादिवचनम् । किंच श्वेतकेतुप्रभृतया ऽपि तव परमहंसेषु परिगणिताः । न च तेषामात्रमेण पारमहंस्यमस्ति ब्रह्मच-य्यादिश्ववणात् । श्वतस्तत्वसाचात्कारवन्वेन वृत्याः पारमहंस्यम्पणदनीयम् । एवमेव दुवीससा ऽपि भविष्यति । श्वत एव तस्य तच तच राजगृहादिषु चिरनिवासा ऽपि प्राणेषु प्रतिपादाते इत्यादिपरिहार हन्नेय इति* ॥

४८६ । ३ स्तुतिमात्रमुपादानादिति चेन्नापूर्वत्वात् ॥ २१ ॥

नन् ब्रह्मविद्याषाधनिवसरे उद्गीयविद्याविषयविवास्य न पाद-सङ्गितनीपि शास्त्राध्यायसङ्गितस्तदभावे षूर्वीधिकरणसंगितमात्रमप्रयोजक-मित्याशङ्क्य क्रमितिकन्यायेन पुरुषाधौधिकरणाधेदृढीकरणोपयोगमाह यदा रसतमत्वादीनामिति । विद्याङ्गकर्मवीयेवसरत्वेषयुक्तत्वाद्विद्यापेचितिवि-तेकाय्यशिखरारीहणसोपानत्वाद् उपनिषदाम्नातत्वेन प्रत्यासद्वत्वात् शास्त्रा-न्तरेष्वविचारितत्वाद्यात्र विचार इति प्राणविद्यादिसाधारणायां संगते। स्थितायामियमस्याधिकरणस्य वैशेषिको सङ्गितिहका।

चित्पतिस्त्वेति । च्योतिष्ट्रोमे चित्यतिस्त्वेत्यादयस्त्रये। मन्त्रा यजमानपावनाधा त्राम्नाताः । तचाच्छिद्रेगित्यादिः शेषः किमव्यविहतेनैव तृतीयमन्त्रेग् संबध्यते उत पर्वेतित संदेहे मन्त्रागां स्वता निराकाङ्कृत्वा-दिच्छद्रेगित्यादेः क्रियारिहतस्य साकाङ्कृत्वे प्रध्यव्यविहतान्वयेन निर्वृत्तेस्तेनैव संबध्यतदित प्राप्य्य राद्धान्तितं भेदनच्यो । च्योतिष्ट्रामप्रकरणान्नानात्तदपूर्व-साधनपवनिक्रयान्वयद्वारा तदपूर्वान्वयो वाच्यः । पवनिक्रयान्वयश्च तस्या-चिद्देगीत्यादितृतीयान्तपदापात्ततत्करणप्रकाशनद्वारा निर्वाह्यः । पवनिक्रया त्वेत्वेव विभिः पवयतीति श्रुतिवनात् परं विक्रत्याहीणामपि तत्प्रकाशकम् न्त्राणां समुच्चयस्त्रया च मन्त्रभेदे प्रणि शेषिण्याः पवनिक्रयाया एकत्वात् करणद्वारा तत्प्रकाशनार्थः शेषः सर्वचानुष्वयते । प्रधानानुसारित्वाद् गुण-स्यति । श्रुचिद्धद्वेणेत्येषो प्रथवाद् इति । मन्त्रेकदेशत्वे प्रधाश्वनीवाहु-भ्यामितिवदसमवेतार्थवादतीत्का । वैश्वदेव इति । वैश्वदेववक्षप्रध्यास-साक्रमेथसुनासीरीयाख्ये पर्वचतुष्ठययुक्ते चातुर्मास्ये वैश्वदेविकानामान्त्रयदीनां साक्रमेथसुनासीरीयाख्ये पर्वचतुष्ठययुक्ते चातुर्मास्ये वैश्वदेविकानामान्त्रयादीनां

[•] बन दितीयं परामर्थाधिकरणं पूर्णम् ।

पञ्चानां हविषां यद् ब्राह्मणं तस्य वाक्णप्रधािषकेष्वाग्नेणादिपञ्चसु ऋतिदेशार्थे प्रवृत्तमेतद् ब्राह्मणान्येवीत व वनं वार्षधािन वा एतािन हवींषीत्यादि तदर्थवा-दानां नव प्रयाचा हत्यादितदङ्गविधीनां चाितदेशिकमिति सप्रमे निर्णोतम् । सित्रिहितविध्यभावाङ्गीकारेणेति । एतेन रसतमत्वाद्याक्तिः सित्रिहिता-पासनविधिस्तुत्यर्थेति पूर्वपचे कतुं शक्ये किमिति व्यवहिताद्गीणःदिस्तुत्यः र्थित सूचभाष्ययोः पूर्वपचः कृत हत्याशङ्कायाः सिन्नहितविध्यभावे ऽपि स्तुत्यर्थतयोगपादियतुं शक्यतहित न्यायव्युत्पादनाथे कृत्वाचिन्तया तथा पूर्वपचः कृत हति परिहारे यदाच सिन्नहितोणासनाविधिनीस्तीति टीकायन्येन कृत्वाचिन्तात्वप्रदर्शकेन सूचितः स्फुटीकृतः । भावशब्दाच्चेति सूचं च कृत्वाचिन्ताद्यादर्शकेन सूचितः स्फुटीकृतः । भावशब्दाच्चेति सूचं च कृत्वाचिन्ताद्यादर्शकेन सूचितः स्फुटीकृतः । भावशब्दाच्चेति सूचं च कृत्वाचिन्तोद्यादनाथैमिति दृष्टव्यम् । श्रस्ति तु तदित्यितरेके परिहार इति गुह्यन्यस्याथै तञ्चाख्येयभाष्यतात्पर्यक्षयनपूर्वकं विशदयित विधिनैवेति ।

यथा लोकइति । ननु लोके पटे। भवतीति पदद्वयानवगता ४६०। इ रितामगुणरूपः कश्चन विशेषा रत्तपदेन बाध्यते तद्बोधश्च रत्तपटिदृद्वाः पादित्सावतां प्रवृत्ते। तिन्नहासावतां निवृत्ते। चे।पयुन्यतइति युक्ता तचा-काङ्घा इह तु स्तुतिनिन्दापदै बैं।ध्यं कं चिट्टिशेषं न पश्याम: । प्राशस्त्या-प्राशस्त्र्यमिति चेत् तदेव किमिति विशिष्य न जानीमः । न च तद्वोधः प्रवृतिनिवृत्युपयागी । विधिनिषेधलभ्येष्टानिष्टुसाधनताबे।धादेव तदुभये।प-पते: । न च तदुभयानुपयागि शास्त्रं भवनीति चेत् । ऋचाहु: । बलवदिन-ष्ट्राननुबन्धित्वं प्रारास्त्यं तदपि प्रवृत्युपयोगि । सत्यपीष्ट्रसाधनताचाने बलव-दिनिष्टानुबन्धित्वेनावगते सविषाच्चभाजनादावप्रवृतेः बलवदिनष्टाननुबन्धि-त्वप्रायस्त्यं तदपि प्रवृत्युपयोगि सत्यप्यनिष्टसाधनताचाने बलवदनिष्टाननु-बन्धित्वेनावगते यागादै। प्रवृते: । तदुभयं यदापि त्रिधिनिषेधाभ्यामाचेप्रं शंक्यम् अन्यया तयाः प्रवत्केत्विनवर्तकत्वानुपपतेः तयापि विधिनिषेधै। षत्मु स्तुतिनिन्दापदेषु तत एव तल्लाभा भविष्यतीत्थाचेपगै।रवमम-हमाने। तत्सिन्निधानात्थापिताकाङ्मया तदेकवाक्यतामनुभवतः । यद वस-न्तादिवाक्ये तेषामभावः तत्र स्वयमेव तदाचिपत इति । ऋन्ये तु विधिनिषेधवाक्ये: कर्मणामिष्टानिष्ट्रसाधनत्वबे।धनं तद्योग्यताज्ञानमपे-चते तद्येवादाश्च विधेयनिष्ध्यकर्मसंबन्धिगुगदोषान् कीर्तयन्तस्तेषां

मर्मगामिष्टानिष्ट्रमाधत्वयोग्यताबोधं जनयित । द्रष्ट्रमाधनत्वयोग्यत्वमेव प्रायस्त्यम् प्रानिष्ट्रमाधनत्वयोग्यत्वमेव च निन्दा । यदापि योग्यन्ताचानं चानकारणं यदापि च वेदप्रामाण्यदृढावधारणाद् न्यायलभ्ये स्वस्वार्थे सर्वाणि वैदिकवाक्यानि योग्यान्येवेति सामान्यता योग्यतानिष्ट्यः सम्भवति तथापि सत्स्वर्थवादेषु तज्जन्ये। योग्यतानिष्ट्यो विधिनिषेधवाक्यार्थवेधकारणमिति कल्यतद्ति वदन्ति । स्रथेयादस्य साकाङ्च्तवादिति । गुणस्य प्रधानानुवर्तनाकाङ्वासन्वादिति भावः ।

8€0 1 €

न त्विह रसतमत्वादेरिति । ननु रसतमत्वादेरुद्गीयविध्य-नपेचायामप्युद्गीयादिविधे: स्तुतिप्रकर्षलाभाय रसतमत्वाद्ययेचया तद-न्वयः स्याद् चत एव सुकृतदुष्कृतयोद्दीनीपायने यच युते केवलीपायनं वा यच युतं तचोपायनस्य तद्विद्यान्वयेन निर्पेद्यत्वे ऽपि यच निर्मुणवि-द्यायां केवलहानं भुतम् अध्व इव रामाणि विष्य पार्वमिति तचापि स्तुतिप्रकर्षनाभाय विद्यापेत्रयोषायनगब्दस्यान्वयो भाष्यकारैस्तः सत्य-कामत्वादीनां च दहरोपासनायामुपास्यगुणतया उन्वयेन निराकाङ्घाणां निगुंगविद्यायामपि स्तुतिप्रकर्षनाभायान्वया उङ्गीकृत इति चेत् । उच्यते । हानापायनाधिकरणे * स्तुतिप्रकर्षे भाष्यकारैरानुविङ्गकप्रयोजनतयातः । न तूपायनशब्दान्वये प्रमागतया प्रमागं तचावश्यकं कुतिश्चद्वीनं किं विदुपै-तीति हानस्यापायनापेचा कुतश्चिद्धीनमपि सुकृतदुष्कृतं फलजननाय कञ्चिदाश्रयमपेचतइति तदपेचा चेत्युभयमेव कामादाधिकरणे हृदयायत-नत्वादिषाम्येन विद्याद्वयामानगुग्धामध्येन चापस्यापितीर्वद्यान्तरगुगै: स्वत एव भवतः स्तुतिप्रकर्षस्य त्यागा न कार्य इति सा उङ्गीकृतः तथेहापि कर्मकाग्रङगताद्गीयादिविधिषु स्वत एव रसतमत्वाद्युपस्थितिवी रसतमत्वा-दिम्बबोषूद्गीयादिविध्युपस्थितिवी भवति चेदस्तु रसतमत्वादिनोद्गीयादिस्तु-तिरपि । न चैवं सिद्धान्तस्य पूर्वपचाभेदः । रसतमत्वादीनां केवलस्तुत्यर्थे-त्वेन पूर्वपद्यः उपास्यत्वसद्वावेन सिद्धान्त इति भेदात् । ऋत एव सूचे पूर्व-

^{*} व्यान्सून्त्राः ३ पाः ३ सून् २६। † व्यान्सून् श्रन् ३ पाः ३ सून् ३६।

पचप्रदर्थेने स्तुतिमाचमिति माचयाच्येन कोवलस्तुत्यर्थतया पूर्वपच इति टर्शितम् । पूर्वपचितराकरणार्थेन च नजा न स्तुनिमाचित्येतदर्थकेनापूर्वत्वा-दुपास्यस्य सतः स्तुत्यर्थत्वमपि भवति चेद् भवत्वित्यङ्गीकृतम् । ऋत एव च सिन्नहितोपासनाविधिसद्भावे ऽपि व्यवहिताद्गीयादिविधिस्तुत्यर्थतया पूर्वपत्तः सूचभाष्ययादेशितः । तथा पूर्वपत्तः कामादाधिकरणन्यायेनाद्गी-थाटिविधिस्तावकत्विसिद्धौ सिन्निहितापासनाविध्यन्वयस्यापि क्रुयेन स्तावकः त्वेनैवापपत्तेः सत्यकामादिष्वेताश्च सत्यान् कामानितिवदुपास्यगुणतया उप्यन्वये विशेषवचनाभावात् केवलस्तुत्यर्थत्वमेवेति पूर्वपद्यः सुदृढाे भवति। मित्रिहितापामनाविधिस्तुत्यर्थतयैव पूर्वपचकरणे तु न तथा पूर्वपचः सुदृढः स्यात् । श्रन्यत्र स्तुत्यर्थत्वेन क्रृष्णभावे उपाप्तनाविधिपत्तिधानादुपास्यगुणः त्रयेवान्वयोवित्यात् । वेदान्तेषु हि निर्गुणप्रकरणाभावे गुणाम्बानस्योपासनार्थ-त्वमेवै।त्सर्गिन्नम् । श्रतं ग्वानारभ्याधीतानां सम्भूत्यादिगुगानामुगसनावि-धिमित्रिधिरहितानामप्युगामनार्थत्वं सिद्धवत्कृत्य किं तेषां क्रृप्रशागिडल्यवि-दादान्वयः उत तरेव कल्येन विद्यान्तरेषान्वय इति विशेषविन्ता सम्भूत्य-धिकरणे कृता । इह क्रुग्रेगपासनाविधिश्ववणे तदुपास्यगुणतया उन्वयः कथं प्रत्याख्यायेत यदोषामेव रसतमत्वादीनामन्यत्र स्तावकतया उन्वयक्षृप्ति-रूत्सर्गबाधकतया नापेच्येत । यदोवं पूर्वपचः कथं तर्ष्टं सिद्धान्तः । सतारपि द्यपूर्वत्वं भावशब्दमाः/ सत्यकामादिगुणानामन्यव स्तुत्यधादीनां सिन्नहित-विधावुपास्यगुणतयान्वये प्रतिप्रसवापेचा दृष्टा नैवमिह प्रतिप्रसवीक्तिः । तद-भावे कथमेकस्य सिव्वहितविधावुगास्त्यर्थत्वमन्यत्र स्तुत्यर्थत्वं च स्यात्। नेष देाष: । स एव प्रतिप्रसव एकस्य तथे।भयार्थत्वसम्भवे लिङ्गदर्शनतया प्रकृतिसद्धान्ते।पयागी भविष्यति । श्रस्मिन् पर्वे न कृत्वाचिन्तेति न तदु-द्घाटनाथै यूचं कि तु यदाच चित्रहितापाचनाविधिने श्रूयते तदा उन्यच केवलस्तुत्यर्थत्वं शङ्कोतापि न तदश्रवणमस्तीति प्रदर्शनार्थमिति द्रष्टव्यम् ।

न हि घात्वर्थभेदइति । कृभ्वस्तिहृपधात्वर्थभेदे कुर्यात् क्रिये- ४६० । १५ तेति लकारार्थकर्तृकर्महृषकारकभेदे वा विधिलवर्ण न भिदाते विधिनिमन्त्र-गादिषूचेषु लिङादार्थेतये।तस्य विधेस्तद्वेदे ऽपि सर्वेचेकरूप्यस्य वत्तव्यत्वादिः त्यथे: । न्यायवित्सारणमयुक्तमितीदमुपलचणं भाष्यकारैहणाचीतेत्यादये।

विधिशब्दा इत्युक्षा तत्र संमितत्वेन कुर्यात् क्रियेतेत्यादिविधित्वप्रतिषा-४६० । १६ दक्कवचने।दाहरणमप्ययुक्तमिति शङ्कान्तरमपि द्रष्टव्यम् । विधिलच्णं तावदाहेति । इष्ट्रमाधनत्वं विधिः । तच्च लिङादाकारेगाख्यातवा-च्यमाख्यातसामान्याकारेण तद्वाच्यायां पुरुषप्रयत्नहृपायां भावनायामन्त्रे-तीति । यथा पशुना यजेतेत्यच सुब्विभिक्षिपेण तृतीयावाच्ये करणकारके एकवचनरूपेण तद्वाच्यमेकत्वमिति भावः। इष्ट्रसाधनत्वं विधिरिति स्वमतमुक्तम् । के चितु प्रवर्तकः खलु विधिः। स तु वैदिको लिङादिशब्द इति स एव विधिरित्याहु: । श्रन्ये तु लिङादिशब्दमाषस्य प्रवर्तकत्वे अन्धग-ताथेस्यापि प्रवर्तकत्वप्रसङ्गात् तदर्था नियागः प्रवर्तकः स विधिरिति चद-न्ति । अपरे तु कल्यापूर्वेह्रपस्य नियोगस्य निङादिवाच्यत्वाभावातद्वाच्या गुब्दभावना प्रवितेका साविधिरिति भगन्ति । गब्दभावना हि गब्दव्यापार-ह्या ऽभिमताचा न तावदभिधाव्यापारहृषा घटादिशब्दाभिधावदर्थवेषायानु-कूलगब्दव्यापारहृपायाः स्वयं तदर्थत्वाभावात् । नापि शब्दभावनापरपर्यायं लिङादिवाच्यं शब्दस्यैव व्यापारान्तरं कल्पनीयं तत्कल्पनायां प्रमाणाभावात्। प्रवर्तकतया लेकानुभविषदुस्यष्ट्रमाधनत्वस्यैव लिङाद्यर्थत्वे। पपतेरित्यमुमर्थे १८/ शङ्कोद्घाटनपूर्वकं सूचयित ननु शब्द एवेति । कृत्र् चेत्यनुक्रियमाग्राह्ण-परिज्ञानपरिहाराथे सकारान्तादेव विभित्तः कृता । उदाहृतवानिति । कुर्णात् क्रियेतेति श्ले।ककृदिति शेष: । नन् धन्तु कृभ्वस्तया भावनासामान्यवचनाः े तथापि भावनागतेष्ट्रसाधनत्वह्रपर्णरज्ञानाथै सर्वधात्वथानुगतभावनायामु-दाहर्तव्यायां क्रिमिति कृभ्वस्तीनामेवादाहरणिमत्याशङ्कानिराकरणाय प्रवृत्तं मामान्योत्तार्वित यन्यं व्याच्छे यद्यपि धातव इति । सर्वेत्र व्याप्यार्थ-मिति। पचत्यादानन्ताख्यातपदे।दाहरणासम्भवात् सामान्यादाहरणे तत सव सर्वविशेषानुगतिरवगन्तुं शक्यतइति लाघवाथै सामान्यादाहरगामित्यथै:। श्रता ऽस्मच्छ्रोकस्यादाहरणं भाष्यकारीयमपि न प्रकृते ऽसङ्गतमिति भावः । ननु कृभ्वस्तया यदि भावनावाचिनः तदा कुर्यादित्याख्यातैः किर्माभधी-୬୬ । २५ यतइत्याकाङ्घायामाह एतदातुगतेति । तच लिङादायोकारवाच्यमिष्टमा-धनत्वमेव भावनान्वितमाख्याताभिधेयमित्यर्थः । ऋष्याताकारेग तु प्रकृत्य-र्थभूतेव भावना प्रत्ययेनाप्यनूदाते द्वावित्य्च द्वित्वसंख्येव । न तु प्रतिधा- त्विति । कृभ्वस्तिषु धातुभेदेन वा कर्तृकर्भलकारकृदूपप्रत्ययभेदेन वा भावनाभेदो नास्तीत्यर्थः ।

कृद्नतत्वेन द्रव्याभिधायित्वादिति । त्राख्यातानि न द्रव्य ४६० । २७ पर्यन्तानि किं तु भावनाम।चनिष्ठानि।तच कुर्य।दित्यादी कर्नरि प्रयोगे भाव-नाविष्रस्य कर्नुरन्वयः स्वर्गकामः कुर्यादिति । क्रियेतेत्यादै। कर्मणि प्रयोगे तदाविप्रस्य कर्मेगी उन्वयः पाकः क्रियेतेति । ननु कर्तृकर्मेगी लकारवाच्ये। तयोस्तिङा उनिर्माहतत्वे उपि तत्संख्यायास्तिङा उमिहितत्वाद् यदनमिहि-ताधिकारविहिते द्वितीयातृतीये न भवत इति स्वर्गवास इति पाक इति च प्रातिपदिकार्थमाचविहिता प्रथमा।कृत्यत्ययास्तु कर्तृक्रमादिषु विहिताः॥न केवलं भावनावाचिनः किं तु भावनापयर्ज्जनकर्तृक्रमीदिका एकपर्यन्ताः । न चाख्यातानामपि तत्पर्य्यन्तत्वं स्यात्,पत्ता चैचः पत्तव्य ग्रादन इतिवत् पचित चैतः पच्यते त्रे।दन इति कर्तृकर्मकारकाधिष्ठानवाचिनां सामानाधि-करण्याविशेषादिति शङ्कनीयम् । भावप्रधानमाख्यातमिति स्मृत्यनुसारेण माख्यातानां भावनाप्राधान्याङ्गीकारात्रधात्वे ऽव्याख्यातार्थभावनायाः कर्त्र-कर्माचेपकतया तदाचिप्रकर्न।दि(सामानाधिकरगयेन पदति चैच इत्यादिप्र-योगः । वार्तिककारास्तु यथाख्यातेषु भावनया कर्तृक्रमीत्वेपः ग्वं कृदन्तेषु कर्नादि) * कारकैर्भावनाचेप इति मन्यन्ते । यथाहु: । यथैव भावनाप्रधान-त्वादाख्यातेषु तत्सँबन्धादेव गुग्रभूतकारकप्रतीतिचिद्धेने कर्तृकर्मग्रीरभिधानं भविष्यति एवं कर्नाद्यभिषानादेव तदन्ययानुपपत्या भावनासिद्धेरनभिषानं। गम्यमानापेचयेव च सामानाधिकरग्यमिति ।

ननु भवनभावने प्रयोज्यप्रयोजकव्यापारै। घटे। भवति तं कुलाले।
भावयतीति विवरणाद् ऋतः कृभ्यस्तये। भावनावाचिन इत्ययुक्तमित्याशङ्क्य
निराक्षरोति यद्यपीति । ऋस्ति तावदस्तिभवत्योरिष भावना सा क चिद्ववितृनिष्ठा क चिद्वन्यनिष्ठा दण्डी भवेदित्यच भवितृनिष्ठा तस्मात्यायणीयस्याहा ,, । २६
च्छित्वजा भवितव्यमित्यच कर्मसंबन्धनिमितच्चित्विभावनास्रुपवरणिक्रयाकर्तृयज्ञमानिष्ठा। तथा च ऋस्तिभवत्योरिष भावनासद्वावमाचेण करोतिवद्वावना-

^{* ()} एतन्मध्यस्ये। यन्यस्तुद्तिः ९ पुः ।

षाचित्वमुक्तम् । तदाहेति । कर्तृकर्मकारकभेदे ऽपि भावनैक्यमाहेत्यर्थः । ४६९ । ४ भ्वादेशादिरिति । आर्थधातुकविषये अस्तेर्भूरित्ययमादेशे। विह्नितः । श्रता भवितव्यं भूयेतेत्युदाहरगद्वयमस्तिधातुषाधारग्रिनव्यर्थः । सार्वधा-तुकविषये स्यादित्युदाहरणं श्लोके उस्तीति तन्नोदाहृतिर्गित भावः । श्रान्ति-प्रकम्मिका भावनेति । यद्यपि भवतेरस्तेश्च।कर्मकन्वाद् भावतव्यमिति भावे तव्यप्रत्ययः भूयेतेति च भावे लकारः तथापि यदथै भवनिक्रयाचिमा भावना सक्तिमिका तस्याश्च दरिङनेनि तृतीयापात्तो भवनिक्रयाक्रतैव कर्मा तस्य स्वरूपेण पिद्धत्वे ऽपि दिष्डित्वाकारेण माध्यत्वात्। भवतिरस्तिश्चेति। तथा च पर्यायत्वाद् भवत्युदाहरखेनैव चारितार्थ्यमत्यस्त्युदाहरखं न कार्य-मिति शङ्कार्थः । भूतानां पृथित्र्यापितानां पृथित्री रसः उत्कृष्टा पृथित्र्या ऋष्-स्वातप्राताया त्रापा रसः त्रपां तत्कार्यभूता त्राषधय त्राषधीनां तत्परिगामः पुरुषः पुरुषस्य वाक्षप्रधानस्य वाग्रवः वाच ऋग् रवः वाङ्मध्ये सारभूत-त्बदृष: साम रस: तत्परिष्कारकत्वात् साम्न उद्गीय उद्गीयावयव डँकार चादिभूते। रस इत्येवं पृष्टिक्याद्युत्कवेतारतम्यपर्यवसानभूमित्वं रस-तमत्वम् । परमात्मप्रतीकत्वादिति । प्रणवे प्रतीके परमात्मदृष्ट्यायासनं शैव्यप्रश्नप्रसिद्धम् । अद्धे स्थानमिति । अय ह गीतमे। राज्ञे।धंमेयाये-त्यादिश्वतिषु ऋषेशब्द: स्थाने प्रसिद्ध: । तदर्हतीति यत्प्रत्यये ब्रह्मस्थानार्ह इत्यस्य ब्रह्मतुल्य इत्यर्थपर्यवसाने सति केनाकारेग तील्यमित्याकाङ्गायाः 🤧 । ९६ माह ब्रह्मवदुपास्य इति । ब्रह्मनामत्वाच्च ब्रह्मवदुपास्यता । ननु परमः पराध्य इत्येतत् तेनेयं चर्यो विद्या वर्तते ग्रेमित्याश्रावयत्ये।मिति शंस-त्योमित्युद्गायत्येतस्यैत्राचरस्यापचित्याइत्येतच्च स्तुत्यर्थेमिति संप्रतिपन्नं तथा रसतमत्वमपि क्रिंन स्यात् । न ह्याप्रिसमृद्धिगुषायोर्वेदने यथा त्रापियता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानचरमुद्गीयमुपास्ते इति फलवचनं नैवं रषतमत्वस्य वेदने किं चित्फलवचनमस्तीति चेदुच्यते । परमत्वं पराद्धीत्वं षयीविद्यासाध्यसामयागाङ्गस्तोत्रशस्त्राश्रवग्रप्रवर्त्तमत्वं चेङ्कारसामान्यस्य गुगः तित्वहोषास्यस्ये।द्गीयावयवोङ्कारस्यैव गुगाः त्रात्रवग्रावर्तकत्वादेस्तवाभावा-त्तस्मादतद्गगत्वादुपास्यगुगतया उन्वया न संभवति । स्तुतिद्वारतया त्वन्वयः संभवति । भ्रान्यदीयगुणकीतेनस्यापि परंपरासंबन्धेन स्तावकत्वे।पपते: ।

दृष्टं हि वेतसगाख्या चावकाभिश्च विकर्षत्यापा वै शान्ताः शान्ताभिरेवास्य शुचं शमयतीत्यच अपां शान्तत्वगुणकीर्तनस्य तत्प्रभववेतसशाखास्तुति। पर्यवसानम् । रसतमत्वं चात्तिसपृद्विवदुद्गीयात्रयवे।ङ्कारगुणत्वेन कीर्तित-मिति तत्कीर्तनस्यो।पास्यसमपेकत्वे संभवति न स्तुतिमाचार्यकत्वं कल्पनीयमिति विशेषः † ॥

पारिप्नवार्था इति चेत्र विशेषितत्वात् ॥ २३ ॥

868 1 62

स्तुत्यर्थत्वात्सकाशादिति। स्तुत्यर्थत्वावेद्ययेत्यर्थः । आश्वि-नग्रहरांसिन इति । ऋध्विनस्तोवशंसिन इत्यर्थः । यहं वा गृहीत्वा चमसं वे। त्रीय स्तोचमुणाकुर्यादिति यहग्रहणस्तोचोपाकरणयो: पै। त्रीपर्यस-म्बन्धयवगाद् ग्रहशब्देन स्ते। चं लिबतम् । ननु यस्य मन्त्रस्य ग्रीता विनियागस्तद्विनियागं सर्वयुति: सहतां यस्य लिङ्गादिभिविनियागस्तं नियेगं क्रषं सहेतेत्याशङ्क्याह के चित्सामान्यं चेति । क्व चिद्विनियागे समानस्य तद्विनियोजक्रप्रमायोन तुल्यबलस्यात यव विनियोगान्तरं सेडि-वतः सर्वशब्दस्य लिङ्गादिभिदुंबंलैरन्यचापि ये। विनियोगस्तिद्वयातकात्वं नास्ति तत्र हेतुः सकृत्प्रवृत्तस्यावकुण्ठनाभावादिति । एकत्र त्यता-नियमस्य सर्वशब्दस्यान्यवापि नियमत्यागविरे थिनियन्त्रणासम्भवादित्यर्थः। नन्वेवं सित च्योतिष्टोमे स्तोचविनियुक्तानामृचां मध्ये कस्याश्चिदाग्नेय्या श्राग्नीधोपस्थाने श्रीतविनियोगेन स्तोचविनियोगनियमभङ्गो जात इति स्तोवविनियुक्तानां सर्वासामपि ऋवां निङ्गात् तव तव विनियागः प्रसच्येत श्रीतविनियोगेन नेराकाङ्क्यात्र तासां लैङ्गिको विनियोगः । श्राकाङ्कामूलत्वा-लिङ्गेन विनियागकन्यनाया इति चेतिहि दाशतयीनामपि श्रीतविनियागनि-राकाङ्काणां नास्ति लैङ्गिका विनियाग इति लिङ्गादिभिर्मन्त्रविनियागिः तिरियं निरालम्बनेति चेत् । उच्यते । यामां त्रीतविनियोगेन निराकाङ्घाणामपि दाशतयोनामवश्यभावी लैङ्गिको विनियागस्तद्विषयमिदमाचार्यवचनं यथा यचैकविंगतिमनुबूयात् प्रतिष्ठाकामस्येत्यादै। सामिधेनीविवृद्धिः युता तच प्रवेशवाजीयाद्यभ्यासेन संख्यापूरणं न भवति किं तु ऋगन्तरागमेनेत्यभ्यासेन

अत्र वृतीयं स्तुतिमात्राधिकरणं पूर्णम् ।

[†] सामान्यस्येतीति १ पुः पाः। .

संख्यापूरणं सामिधेनीष्वभ्यासप्रकृतित्वा*दिति दाशमिकाधिकरणे स्थितम् । तच गम्यमानानामृचाम् त्राग्निप्रकाशनिक्ष्णादेवागमानदागमाभावे सामिधेन्नीपरिच्छेदकैकविशितसंख्यानुषपतेः त्रागमे चाग्निप्रकाशनिक्ष्णव शरणी-करणीयत्वात् । न च जपपारायणादिविनियुक्तानामपि विधिवाक्यानां यया विधायकत्वं तथा परिप्रविविनियुक्तानामप्युपाख्यानानां स्तावकत्वं स्यादिति वाच्यम्। त्राग्निहोचादिविधी प्रवृत्तिविशेषो उस्तीति जपपारायणादिविधिव-द्रिधायकत्वाभ्यपगमे ऽपि स्तुती प्रवृत्तिविशेषालाभेन शंसनविनियोगनिराक्षा-क्ष्राणां सिविधिमाचेण स्तुत्यर्थत्वकल्पनायोगादिति भावः ।

86₹18

उपलच्णार्थत्वेन व्याख्यायतामिति । विशेषप्रवृत्तोषक्रमानुसारेगीपसंहारिकविशेषश्रवग्रस्य यथा कथं विद् व्याख्यान†मेकस्तोमे वा क्रतुसंयोगा‡दिति पाञ्चमिकाधिकरग्रे स्थितम् । तच ह्रोष वाव प्रथमा यच्चे। यच्चानां
यच् च्योतिष्टोमा य ग्रतेनानिष्टा ऽयान्येन यचते गर्तपान्यमेव तत् कुरुते
इत्यचान्यशब्दस्य यो हि तृवृद्दन्यं यच क्रतुमापाद्यते स तं दीपयति यः पञ्चदशः स तं यः समदशः स तं य ग्रक्षविशः स तमिति वाक्यशेषगततृवृदादिस्तोमकक्षतुसंक्षीतेनानुसारेण तावन्माचे संकुचितवृत्तित्वं पूर्वपचीकृत्य राद्धानिततम् । श्रविशेषप्रवृत्तोपक्रमगतचादनानुसारेण वाक्यशेष विशेषान्नानृवृदादिस्तोमप्रशंसार्थत्वेन कथं चिन्नेतव्यमिति । तथेहापि स्यादिति शङ्कार्थः ।
श्रवच्छेदकविधिषुनःश्रत्यवैयर्थ्यायोपक्रमगतस्यापि सर्वशब्दस्याच सङ्काच
इति परिहारे। मूनगव स्पष्टः । किं च । श्रनन्तशाखाम्नातासंकुचितसर्वाख्यानशंपनासम्भवात् सर्वशब्दस्य स्वत एव किञ्चिदवच्छेदेन सङ्कोचाकाङ्घायां तत्सङ्कोचकवाक्यशेषानुसरग्रमुपपद्यतद्दत्थि दृष्ट्व्यम् । कथापरे। यन्थः पञ्चतन्त्यादिः॥॥

99 1 QE

श्रत एव चारनीन्धनाद्मनपेता॥ २५॥

भाष्यटीकयोरस्फुटमधिकरणश्रीरं दर्शयित ब्रह्मविद्येति । ब्रह्म-विद्या माचे जननीये कर्मणीतिकर्तव्यतारूपेणापेच्यते न वेति संशय: ।

^{*} जै॰ मृ॰ श्र॰ ए० पा॰ ५ मृ॰ ३०।

[‡] जै. मूं. श्र. ५ पा. ३ सू. ४३।

[॥] अत्र चतुर्थे पारिप्रवाधिकरसं पूर्णम्।

[†] श्रव्याख्यानमिति १ पुः पाः। § मात्रेणेति १ पुः पाः।

तदये यचादीनां कि विद्याप्तले माचे उन्वय उत विविदिषायामिति संशयः। पूर्ववाख्यातानां विद्यासितिथिना विद्याशेषत्वमुक्तम् स्वमेव प्रकर्शन यचा-दीनां माचपलकब्रह्मविद्याशेषत्वमिति संगितिः। तच पूर्वपचे हेतुमाह यज्ञेनिति। यचेन विविदिषन्तीत्याद्यन्वयाद् यचादीनां तृतीयाश्वत्या विविदिषायां साधनत्वेनान्वयः प्रतीयते स च न संभवति विषयमान्द्र्यंलभ्याया-स्तस्या यचादिभिरसाधनीयत्वात्। त्रती विविदिषाप्रकृत्यर्थभूतायां विद्यायां तदन्वयः। तस्यामिष प्रमाणाधीनजननायां तेषां स्वद्ध्वित्वंत्तंकत्वाऽसंभवात्व्ययः। तस्यामिष प्रमाणाधीनजननायां तेषां स्वद्ध्वितंत्तंकत्वाऽसंभवात्व्ययः। तस्यामिष प्रमाणाधीनजननायां तेषां स्वद्धवित्वंत्तंकत्वाऽसंभवात्वयः स्ति। तस्यामित्र प्रतीविदिषायां यचादीनां करणत्वं प्रतीयते। न च तदसंभवः। त्रविशुद्धानेन्तःकरणानां ब्रह्मविद्यायां विषयमैन्द्र्यम्पत्रेत्तं स्वात्वद्धान संभवतीति तद्विशुद्धसंपादनद्वारा तस्यां करणत्वोप्यते। त्रते। विविदिषायामेव यचाद्यन्वय इति न मोचे कर्मापेचा ऽस्ति। श्रविद्यास्तमयद्वये मोचे विद्यातिरिक्तसाधनाऽनुपयोगादित्यर्थः। ॥

सर्वापेचा च यज्ञादिश्रुतेरस्ववत् ॥ २ई ॥

e 1 \$38

तिह सा स्वात्पत्तावपीति । पूर्वाधिकरणे यद्यानां यद्विनिविषामाधनत्वमृतं तिद्विद्यामाधनत्वपर्यवसायि विविद्यामाः स्वतः पुरुषाः धंत्वाभावेनानन्दसाचात्कारहृपब्रह्मविद्यापयागेनैव पुरुषार्थता वक्तव्यति तद्भावात्पूर्वाधिकरणेनाचेषिकी संगतिरुक्ता । स्रपि चानेन वाक्येनेति । ननु विविद्येषे द्वेषेन यद्यादिविधाने प्रागुक्तम् । स्रते। विविद्येषाविधानादिविक्षेणे उस्थानविचृत्भित इति चेत् । उच्यते । विविद्येषोद्वेषेन विधानमेव न संभवति तस्याः पलत्वायागात् । पलत्वं हि विद्याह्रपफलजनकत्वोषाधिकं वाच्यं तस्याः स्वतः पलत्वाभावात् । तथा च विविद्येषके विद्यायां प्रागेवच्छासन्व सेव विविद्येति तस्याः सिद्धत्वात् तदसन्वे तस्यां पलजन-कत्वोषाधिकपुरुषार्थत्वाऽप्रतीतेः । एवं विविद्यायाः पलत्वेनान्वयाऽसंभ-ष्यूर्वपेवो यथा सुन्दरे ऽपि गुडादावित्यादितत्यरिहारार्थसिद्धान्तग्रन्थेन

^{*} जन्यायामिति ९ पुः पाः। 🕴 🕇 विश्वद्धेति ९ पुः पाः।

[🗜] अत्र पञ्चमम् ज्ञानीत्धनाद्यधिकरणं पूर्णम् ।

सूचित: । एवमुक्ते यदीच्छादिविधानं यचादिवाक्यार्थे के चन केनापि मन्दमतय: शङ्कोरन् तिविराक्षरणाधी इमे विकल्पा इति न देषः । एवं च प्रकारेण यचादिवाक्यस्य विधायकत्वाऽयोगाद् विद्यास्तुन्यर्थमेव तद्वाक्य-मिति पूर्वपचः स्थितः । यथा सुन्दरे ऽपि गुडादावित्यादि सिद्धान्त-पन्यस्यार्थः प्रथमसूचे ऽस्मामिः स्कुटीकृतः तचैत्र द्रष्टव्यः । प्रत्यक्पा-वर्णं कर्मफलं दृष्ट्विति । तदुक्तं सुरेश्वराचार्यः ।

प्रत्यक्प्रवणतां बुद्धेः कर्माण्यापादा शुद्धितः । कृताधीन्यस्तमायान्ति प्रावृडन्ते घना इव ॥ इति ।

भास्तरोक्तमिति । विद्याविविदिषये।रिव मेाचस्यापि प्रतिबन्ध-कानि कमाणि चन्ति तिवराषाये यमादिवत्कमेणामनुवृत्तिरिति यङ्का। भिद्यते ष्ट्रदयगन्धिरित्यादियास्त्राद् विद्ययेवार्यशिष्टमकलकमेनिवृतिभेवतीति परिहा-रामिप्राय: । शास्त्रकृतत्वादश्रद्धाया इति । लेशिकप्रमाणमूलिमय्या-त्वबुद्धिप्रभवेषद्ध्या स्वप्रारव्यमेशम्यागादिकस्य मध्ये प्रबुद्धस्य पुरुषस्य कमेशेषत्यागे ऽिष् किल न प्रत्यवाय: शास्त्रमूलिम्थ्यात्वबुद्धिप्रभवारम्य-द्ध्या स्वत एव कमेणामस्तमये नास्ति प्रत्यवाय इति किम् वक्तव्यमिति भाव: ‡॥

868 I do

सर्वाज्ञानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात्॥ २०॥

यस्मिन्नत्कान्ते इदं शरीरं पतेतन्त श्रेष्ठिमिति यस्मिन्नत्कान्ते शरीरं पाणिष्ठतरमिव दृश्यते स च श्रेष्ठ इति श्रुतो प्रजाणितवाक्यं तद्रथे। ऽच भङ्गान्तरेण दर्शितः । प्राणात्कान्ते। त्वपतिदिति प्राण उन्निक्रमिष्यन् सयया सुद्द्यः षित्रं शश्कुन् समिवदिवेवमितरान् प्राणान् समिवदित् तं हामिस-मित्योचः भगवन्नेचि त्वं नः श्रेष्ठोसि मे।त्क्रमीरिति श्रुतिवाक्यं तद्रथं इहापि भङ्गान्तरेण दर्शितः । प्रवृत्तिविशेषला मे प्रयोजनइति । श्रनेन लाभ-इति निमितस्मिमी चर्माण द्वीपिनं हन्तीतिवत्प्रयाजनस्य निमितत्वपचे विविचितिति व्याख्यातं भवति । याम्यव्याणारगतचेष्ठादिषु हिङ्कारादिदृष्टिविहिन्तिनिहिन्नारादिषु ग्राम्यव्याणारगतचेष्ठादृष्टिविहितत्येदं स्मम्यर्थस्य हिङ्कारा-

^{*} नैष्कर्म्यसिद्धियन्थे।

[†] त्यागाःपीति ९ पुः पाः । । अत्र ष्षृष्टं सर्वापेताधि करतां पूर्णम् ।

दिषु योजनेन* व्यवधारगाकल्पना कार्या। एवमेव हि लोकेषु पञ्चविधं सामा-पामीतित्यादिश्वतिवाक्येषु मप्रमीद्वितीयये।व्यत्यस्य योजनया व्यवधारणक-ल्पना स्थास्यति तां श्रुतिशैलीमन् सत्याचार्ये हक्तम् । अशक्तेरिति श्लोक-प्रीक्रमादाय श्लोकं व्याच्छे सर्वान्नस्येति । करभ उद्द इति । उष्ट्रिश-शुरित्यर्थः । अडादेरअवणादिति । लेटे। उडाटाविति अडागम बाडाग- ५९४ । ११ मश्च लेटा विह्निः तदश्रवणादित्यथैः । श्रूपर्वत्वादिभाषादित्येतद् विधियोग्यार्थरहितत्वादित्येतदर्थेकम् ऋभिप्रेत्य तदर्थस्य विधियोग्यतां चेया विभन्य दर्शयित सर्वमन्नं भवतीत्यस्येति । नन्वनुवादत्वमिद्धं स्वरूपते। भवणस्य प्राप्रत्वे ऽपि प्राणविद्याङ्गत्वेन तत्प्राप्रभावाद् अनदनी-यत्वं न देषः । कृष्णलवददनीयस्यापि किं चिद्वचग्रीपपतेः । कलञ्जादै। निषिद्धत्वमपि न दोष:। विधिनिषेधयो: क्रत्वर्थपुरुषार्थतया व्यवस्योपपतेः रित्याशङ्कानिराकरणार्थे न च सत्यां गतावित्यादिग्रन्थमवतार्थे व्याचिष्टे शास्त्रान्तरेति । ऋृप्तत्वादिति । अनेन क्रृप्रशास्त्रविरोधिशास्त्रान्तरकः ल्पनैव न प्रवर्तते येनाप्राप्याद्यपपादनेनानुवादत्वाविद्धादिकमुच्येतेति भावः। सुरावर्ज्जमिति । पैष्टीवर्ज्जमित्यर्थः । गैाडीमाध्व्योर्मरणान्तप्रायश्चिताभा-वात् । सुरावस्य ब्राह्मग्रस्योग्गाम। विञ्चेयुः सुरामास्ये मृतः शुद्धोदिति गै।तम-स्पृतिः मरग्राप्रसङ्गे ऽपि सा न पेयेति । के चित्त्वनन्यसाध्यव्याध्यप्रामार्थे पेयैव तच मरणान्तिकप्रायश्चिताभावाद् एत। न्येवातुरस्य भिषक्क्रियायां प्रति-षिद्धानि भवन्ति यानि चान्यान्येवं अकाराणि तेष्वप्यदेष इति सुमन्तोस्त्व-दे।षत्वस्मरणस्य प्रायश्चित्तलाचवसूचनार्यत्वात् ।

> गाडीं मार्ध्यों सुरां पैष्टीं पीत्वा विष्रः समाचरेत् । तप्रकृच्छं पराकं च चान्द्रायगमनुक्रमात् ॥

इति बाईस्पत्यनघुप्रायश्चितविधानस्य तादृग्विषयताया वत्तव्य-त्वाच्चेत्याहुः । वर्ज्जयेदिति शेष इति । मटां नित्यं ब्राह्मण इति ४६६ । ३ भाष्योदाहृता गातमस्मृतिः । तच वर्ज्जयेद् मधुमांसगन्धमाल्येत्यादि-पूर्ववाक्याद् वर्ज्जयेदित्यनुवर्तते स शेष इत्युक्तः ।

^{*} प्रयोजनेनेति ९ पुर पार । . † अत्र धप्तमं सर्वाचानुमत्यधिकरणं पूर्णम् ।

8६€ । ४

विहितत्वाञ्चाश्रमकर्मापि ॥ ३२॥

विविद्षन्तीत्यस्येति । यज्ञादिवाक्ये वर्तमानापदेशात् कर्म-काग्रह इवेतिकतंत्र्यतास्त्रानाभावाञ्च तस्यैव स्तुत्यर्थत्वमध्यवसीयतइति भावः । वास्तवविरोधेनेति । षोडिशिग्रहणाऽग्रहणन्यायसञ्चारणे तथैव विरोधपरिहाराय विक्रल्यौ ऽभ्युपगन्तव्य इति काम्यप्रयोगे नित्याननुष्ठानात् प्रत्यवायः स्यान्नित्याऽनित्यसंयागे वास्तवविरे।धानङ्गीकारे च पूर्वतन्त्रे नि-त्याऽनिन्यसंयागिबराथस्य दे।षत्वक्षयेवास्तिमयादिति भावः । श्रावश्य-कत्वाऽनाचरयकत्वप्रतीतेरिति । जीवननिमिनकतया विद्यार्थितया उनावश्यकत्वमिति विषयभेदादिह न नित्याऽनित्यसंयागवि-रोधः । यच तु नित्यस्यानित्यमेव द्वारं तच परं नित्याऽनित्यसंयोगे। विस्थ्य-तहित सदोष:। यथा भिन्ने जुहोतीति । श्रन हि होमे। भिन्नाधिकरणक: तत्संस्कार इति पूर्वपचे भिन्ने इत्यस्य संस्कार्य्यपरतया निमितपरत्वाभावेन होमा नित्यः स्याद् द्वारं तु भिन्नमनित्यं दर्शपूर्णमासमध्ये पाचादिमेदस्य कादाचित्कत्वात् । चता होमा न नित्यं दर्शपूर्णमासयास्यकुर्णात् । चनि-त्य*भिन्नद्वारेति वाक्यार्थेबोधे। न निष्यदाते श्रनित्यद्वारकत्वमस्याप्यनित्यत्व-प्रमङ्गादिति विरोधपरिहाराय भिन्ने इत्यस्य निमित्तपरत्वं सिद्धान्ते ऽङ्गीकृ-तम् । त्रतस्तादृग्विषयो नित्यानित्यसंयागिवराधा दे। व इति प्रथेति भाव: । न चेन्नित्यप्रयोगस्यैवेति । साध्यविषये प्रयोगैक्ये विरोधपरिहारे। न संभवति विकल्पेन विरोधपरिहारे च कदा चिद्नित्याननुष्ठानेन प्रत्यवाय: स्यात् । त्रता नित्यप्रयोगाे ऽपि पृथक्क्तेव्य इति भावः । विकृत्येत्यस्य से।पपतिकं व्याख्यानं प्रयोगस्येत्यादि । बाधित्वेत्यन्तेनापि तत्सिद्धेरिति ग्रन्थं 🥠 । २५ व्याच्छे काम्यनैमित्तिकाम्यां नित्यकार्यसि हेरिति । उक्तमर्थमुपपा-दयित यादृशो हीति। कर्तन्यस्येत्यर्थे इति । सिद्धक्रपस्यैवैकस्य साध्यस्य नित्याऽनित्यात्मविरोधे। नास्तीत्यर्थः । कर्मसु सत्स्वति । ननु कर्मगां विद्यार्थत्वपचे विद्योत्पत्तिपर्यन्तं कर्मणां फलापवर्गाणा मनुवृत्तिरित्यस्तु। विविदिषार्थानि क्रमाणीत्याचार्यपचे न तेषां विद्योत्पत्तिपर्यन्तमनुवृतिरस्ति।

^{*} नित्येति ९ पु∙ घा∙।

[†] फलापवर्गिणामिति २ पुः गाः।

षत्यम् । विद्यार्थेत्वपचमाग्रित्य सित्स्विति वर्तमानताता । विविदिषार्थेत्वपचे तु ऋालविशेषाऽनादरेग सद्वावमाचं विविद्यतिमत्यदेग्यः ।

एका हि प्रतिपत्तिरिति । अङ्गाध्ययनवते। वेदान्तवाक्ययवण- ५६९ । ११ माचजन्याऽद्वैनिषयापातदर्शनरूपा प्रतिपत्तिरेका श्रवणाख्या शास्त्रनिरूपि-तन्यायविन्तानुगृहीतवेदान्तवाक्यजन्यतिद्वषयनिर्णयहृपा मननाख्येत्यर्थः । डतां हि सर्वापेवाधिकरणटीकायां प्रथमा तावदुपनिषद्वास्यप्रवणमाचाद् भवित यां किलाचवते श्रवणमिति द्वितीया चिन्तासहितात् तस्मादेवीप-निषद्वाश्याद्यामाचवते मननमितीति । सर्वया ऽपि तस्वाभयलिङ्गादिति मूचमधिकरणान्तरपरत्वेन योजयितुं शक्यं प्रकरणान्तराधिकरणन्यायेन ूर्वपद्यान्तरात्यानात् तस्य च टीकायां प्रदर्शनात् । ननु यावज्जीवमग्नि---हे।चं जहुयादित्याद्याचार्यग्रन्थस्यायं दृष्टान्तवैषम्येण पूर्वाधिकरणस्थितनि-त्यविद्यार्थयचादिप्रयोगैक्याचेपह्रपत्वेन तस्यैवाचेपस्य पूर्वाधिकरणसङ्गत्य-र्थत्वे।पपत्तेश्च तथापि खादिरादिषु नित्याऽनित्यविरे।धपरिहारस्य पूर्वतन्त्रे चुग्णतया फल्गुस्तदवलम्बनः पूर्वपचः । ऋतः पूर्वसूचद्वयं प्रकरणान्तर-न्यायालम्बनपूर्वपद्यात्यापक्रतया तच्छेषत्वेन प्रवृत्तमित्यभिप्रेत्य न्यायनि-् णेये विवरगाचार्यै: कृतमैकाधिकरग्यमाचार्यैरनुसृतम् । नन्वच सिद्धान्ते प्रकर-यान्तराधिकरणन्यायवैषयं किमुक्तं कि मासानिहोत्रस्येवात यज्ञादेविधा-नमेव नास्तीति किं वा धातुने।पादाय विधानं नास्तीति । नादाः । विवि-दिषोद्वेशेन यचादिविधानाङ्गीकारात् । यद्यच्येत प्रसिद्धस्य यचादेः प्राप्नत्वेन तस्याप्राप्तं विद्याफलसंबन्धमाचं विधीयतइति इदं तचापि वक्तुं शक्यं प्रविद्धस्यैवाग्निहोषस्य मासगुगापंबन्थमाषं विधेयमिति । यदि तष काले कर्म विधीयतइति विहितस्य विधानाऽयागात् कर्मान्तरं तहींहापि काले कर्मविधानमिति तत एव न्यायात्कामीन्तरत्वं वर्ज्जनीयम् । नापि द्वितीय: । इह यज्ञादेविधाने विहितस्य पुनर्विधानं न सम्भवतीति न्याय-तै।ल्ये च जाग्रति घातुने।पाद।य विधानं नास्तीति वैषम्यस्याप्रये।जक-त्वात् । धातुनेापादाने साध्यतया प्रतीते: क्रमीन्तरता मवति न तु नाम्बोपादाने ततः सिद्धतया प्रतीतिरिति चेत् । यदि सिद्धतया प्रतीतिः कथं तर्हि विधेयत्वं यदि नाम्बापातस्याविधेयत्वं कथं न कर्मान्तरत्वं

विहितस्य विधान।ये।गात् । तस्यदिह प्रकरणान्तरन्यायवैषम्यं न स्फुटमिति चेदुच्यते । इह यद्यादिशब्दोणातं कर्म यद्यादेरन्यच्चेतित्कंह्रपं कर्मेत्यवगन्तुं न शक्यते इष्ट्रिपशुसे।मादिह्रपाणां यद्यादीनां मध्ये कैयेद्यादिमिः
सादृश्यमवलम्ब्य प्रवृत्तया गै।एया वृत्त्या यद्यादिशब्दप्रवृत्तिरित्यप्यवगन्तुं
न शक्यते यद्यादिनामा द्रव्य देवताद्यतिदेशे सति देवते।द्वेश्यद्रव्यत्यागत्यादिह्रप्यद्यादिशब्दप्रवृत्तिनिमित्तप्राप्रेरिनवार्यत्वेन यद्यादिभिन्नत्वमिषि विधेयस्य कर्मणः समर्थितितुं न शक्यते । तस्मादिह यद्यादिभाग्रत्वमिष्
यस्य कर्मणः समर्थितितुं न शक्यते । तस्मादिह यद्यादिभाग्रत्वमिष
यस्य कर्मणः समर्थितितुं न शक्यते । तस्मादिह यद्यादिमाधारणशब्दानां
यद्यो ऽध्ययनं दानिर्मित प्रथम इत्यादिग्रतिष्वत्र प्रसिद्धयद्यादिपरत्वमेत्र
युक्तं न मासानिहोचनामवदप्रसिद्धपरत्विमिति प्रकरणान्तरन्यायवैषम्यमिह
विविवितम् । तदिदं यद्याद्यस्त्वन्यचेवोत्यन्ना श्राख्यातपरतन्त्वैर्यचादिशब्दैरनूद्यत्तविति ग्रन्थेन सून्तिम् ।

तत्राप्यमावास्यादिकालइति । एवं च यदाग्नेयवाक्यममावास्यायामेकस्याग्नेययागस्य पै। र्णमान्य न्य च विश्वायकतया वाक्यद्वयता मापदातहित भावः । सायं जुहोतीत्यादाविति । यदाय्यग्निहोचं जुहु-यात्स्वगकाम इत्यव प्राप्रस्यैव होमस्य फले विश्विरित्तविद्वह काले विश्विरिति वक्तुं शक्यं तथाय्यभ्यपेत्य परिहारं दर्शयितुमियं शङ्का ॥

86515

अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः ॥ ३६ ॥

यदि नित्यानामेव यद्वादीनां विनियागभेदेन विद्यार्थत्वं तर्हि तद्वहितानां विधुरादीनां न विद्याधिकार इति संगति:। ते विद्यायामधिक्रियन्ते
न वेति तेषां जपयद्वदानादिकमेसद्वावादनायमित्वनिन्दनाञ्च संशय:।
तेषामायमकम्।भावादनायमिकमभ्यो । वि ब्रह्मविद्यासभवे बहुायाससध्याननामायमकमेणां ब्रह्मविद्यार्थत्वेन विधानस्य वैष्य्यंप्रसङ्गञ्च ते नाधिक्रियन्तइति पूर्व: पद्य:। तद्भावादनुष्ठितसाधनस्येति । यदि जन्मान्तरानुष्ठितसाधन: प्रारब्धवशादात्यन्तिकहीनद्यते। जातस्तस्यापि प्रतिबन्धामावे
विद्यात्यदातद्वत्यर्थ: ।

श्रताष्ट्रमम् ग्रात्रमकर्माधिकरणं ,पूर्णम् ।

[†] अन्न नवमं विधुराधिकरणं पूर्णम् ।

तद्भूतस्य तु नातद्भावा जैमिनेरिप नियमात्तद्रपभावेभ्यः ॥ ४० ॥

8६८ । **१**६

किमु वक्तव्यमिति । अनाश्रमवर्तित्वादाश्रमवर्तित्वं च्याय इति पूर्वेषूचेण कथितत्वादिति भाव: । अरण्यमियादिति पटमिति श्रुतिं व्यवहि-तान्वयेन पटग्रब्दार्थकथनेन व्याव्धे अरण्यमिति यत्पद्मिति ॥ *

न चाधिकारिकमपि पतनानुमानात्तदंयागात्॥ ४१॥ ४६६। १

भवकं। विषयक्षिकरणसूचे तद्वदित्यति देशं विवरीत्मुपनयन् होमा-धिकरणं दर्शवित उपनयनहोमा इति । त्राहवनीये कार्या इति । न च चौमे वसानाविनमादधीयातामित्याधाने पत्नीसन्वश्रवणादुपनयना-त्याग् दारपरिग्रहाभावाद् ऋाधानाऽपंभवेन ऋाहवनीया न संभवतीति शङ्कनीयम् । तादर्थ्येनापनयनात्यागेत्र दारपरिग्रहसंभवात् । स्नात्वा भाया-मधिगच्छेडिति वचनस्यापत्यार्थदारपरिग्रहविषयत्वे।पपतिरिति भाव: । जात-पुत्र आद्धीतेति वचनादिति । जायामवाय्य दशमे ऽहन्यानीनादधीत-त्याचानस्य कानान्तरविचानमन्त्रे जि सी जि कान: कृतदारस्यैव संभवति। न चे।पनधनात्प्राग् दारपरिग्रहः संभवति स्नात्वा भागामधिगच्छेदिति समावर्त-नातरकाल गाव बनस्य रत्यपत्यधर्महृपसर्वप्रयोजनार्थदारपरिग्रहविषयत्वाद् धर्मे चार्ये च नातिचरितव्येति वचनादिति भावः । एवमवकी णिपशुर- ११। ९ पीति । अवक्रीणीं स्नात्वा भाषामधिगम्याग्नीनाधायाहवनीये अवक्रीणिपा-यश्चितवशुं करोत्वित्यधिक।शङ्का । कृतप्रायश्चितनैव दारपरिग्रहः कार्यः श्रिविष्ठतब्रह्मचर्या लचर्या स्तियमुद्वहेदिति वचनात्। त्रता ऽवकीर्यिष्यु-रायुवनयनहोमवल्लौकिकावनाविति सिद्धान्तः । के चित् सैवस्यातद्वदि-त्यस्य यथा स्थपतीष्टिन्नैं।किकाग्नै। तथेत्यत्र्यविहतपूर्वाधिकरणन्यायातिदे-शमर्थमिक्दन्ति।

त्राचार्याणां तु व्यवहितापनयनहामाधिकरणन्यायातिदेशं तदथै वर्णितवतामयमभिप्राय: । श्राधानस्याप्राप्रकालत्वादिति न्यायसाम्यमुपनय-नहोमाधिकरैंग्रेनैव_ंन तु स्थपतीष्ट्र्यधिकरणेन । तत्र ह्यवैवर्णिकेन निषादेन

^{*} अत्र दशमं तद्भुताधिकरणं पूर्णम्।

कृतमप्याधानमाहवनीयसंस्काराधायकं न भवति तस्याधाने विशेषवचनाभा-वादिति न्याय: । तस्मादव्यवहितन्यायातिदेशाऽसंभवात् पानव्यापच्च तद्व-दिति* सूचगतस्यैवास्य तद्वच्छब्दस्य व्यवहितन्यायातिदेशकत्वं युक्तमिति ।॥

400 1 9

बह्निस्तूभयथापि स्मृतेराचाराञ्च ॥ ४३॥

बहुलसुपलम्भादिति । तथा च पापे निवृते ऽपि नती जाताया अशुद्धेरनुवृत्तिरूपण्यतहित भावः । तथैव चाणस्तम्बस्मृतिः । नास्यास्मिल्लोके प्रत्यापितिर्वयते कल्मणं तु निर्हत्यतहित । संपिवेदिति । चेवसेदिति पाठान्तरम् । व्याख्यायोदाहरतीति । व्याख्यानेनैवार्थत छदाहरित न तु श्लोकरूपेग्रेत्यर्थः । कामतः कृतमपीति । अनेन श्लोक्तिन कामत हित पदं कृतमित्यनेनानुषत्तेनान्वितं सदपैतीति क्रियम संब-ध्यतहित दर्शितम् । अव्यवहार्य्य इत्यादिश्लोकश्चेषा बालहन्त्यदिविषयत्या टीकायां योजितः । श्लोकस्य ब्रह्महत्यादिपातकविषयत्वात् तच्छेषस्य कथं बालहन्त्यदिविषयत्वं स्यादित्याशङ्क्ष्याह बालवधायुपलज्ञ्यार्थं मत्वेति । मत्वेत्यनेन श्रोकशेषस्य ब्रह्मवयादिविषयत्वमिष वत्तं शक्यं पातककृतान मिल्तियनेन श्रोकशेषस्य ब्रह्मवयादिविषयत्वमिष वत्तं शक्यं पातककृतान मिष् प्रायिवतेनैहिकशुद्धाभावात् । बालहन्त्यादीनामिहिकशुद्धाभावे

यरगागतबालस्त्रीघातकान् संवसेन्न तु । चीर्णेत्रतानिष सतः कृतघ्रसहितानिमान् ॥

इति याच्चवल्कीयवचनान्तरसन्वादित सूचितम् । के चितु याच्चव-त्वव्यश्लोके व्यवहार्य इति पदच्छेदं कृत्वा कामकृते महापातके विहितं यद-कामानां कामातद् द्विगुणं भवेदिति वचनवलादिह व्यवहार्ये। जायते अन्यया द्विगुणप्रायश्चितवैयर्थ्यापते: । परच नरकजननशक्त्या सह दुरितमनुवर्तत-एव । नास्यास्मित्नोके इत्यादिवचनं तु स्वाश्रमप्रच्यते।ध्वरेते।विषयम् ।

नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां चावकीर्यानाम् । शुद्धानामपि लोके ऽस्मिन् प्रत्यापत्तिने विदाते ॥ इति के।शिकवचनेकार्थ्यादित्याहु: ‡॥

^{*} जै॰ सू॰ श्रा∙ ३ पा∙ ४ सू॰ ३६ ।

[†] अत्र एकादयम् आधिकारिकाधिकरणं पूर्णम्।

[🗜] अत्र हादशं बहिरधिकरसं ।पूर्णम्

४०० । २४

स्वामिनः फलग्रतेरित्यात्रेयः॥ ४४ ॥ आश्रितापास्तिकर्तृत्वमिति । अवोपास्तिपदं प्रकृतामिप्रायं वि-चित्तं न तूत्सगंशरीरप्रविष्टम् । एतदधिकरणिद्धान्तस्थितेः प्राक् तथात्स-र्गर्भप्रतिपत्यभावात् । यदि नि विज्जायमानाङ्गात्रितमुपासनं यजमानेन कर्तव्यमिति संप्रतिपत्तिः स्यातदा तत्र सिद्धमुत्सर्गमवलाच्योद्गातृकर्तृकाङ्गा-यितापासनस्याद्गातृकर्तृकत्वे प्राप्ने तस्यापवादः क्रियेत तथा नास्ति संप्र-तिपनि:। तथाभूतोपासनसद्वावे तस्य ऋत्विजापि कर्तुं शक्यतया तस्मै हि र्पारक्रीयतद्ति चिद्धान्तहेतुबलेन तस्य ऋत्विक्कृतृंकत्वस्यैव प्राप्ने: । तस्मादङ्गामितमङ्गक्षेत्र कर्तेव्यिक्तियेवात्सर्गशरीरं विविचतम् । दृष्टं हि म-माग्ने वर्च इति मन्त्रस्य प्रत्यगाशीष्ट्रेन याजमानतीचित्ये ऽपि सूक्तवाक-मन्त्रप्रतिपाद्यायुरादिफलन्यायेन विविचितस्य तत्प्रतिपाद्यफलस्य यज्ञमान-गामित्वे ऽप्यन्वाधानकत्त्रां ऋध्वर्युग्रैवान्वाधानकरग्रमन्त्रतया तदङ्गस्यापि वत्रव्यम् । तस्मादिहोषास्तिग्रहणमविववितम् । यदि तद्विववितं समर्थेनीयं तदा लिङ्गभूयस्वाधिकरणविचारिते विद्यामये ऽग्नावयं वाव लोक एषो ऽग्निश्चित इति भूले।कदृष्टिर्भनुष्या यज्ञुष्मत्य इष्टका इत्यादिनेष्टकादिषु मनुष्यादिदृष्टिश्च विधीयतद्दिति तचात्सर्गे अंप्रतिपितिद्रेष्ट्रच्या । तच ह्येवंविदे सर्वाणि भूतानि विन्वन्तीति वचनात् सर्वभूतान्तगतस्य विदुषे। ऽपि स्ववृ-तिरूपेष्टकाचयनकर्तृत्वमस्ति । अग्नितदङ्गेष्टकात्रितभूलोकतन्मध्यगतमनुष्य-दृष्ट्रायुगासनाकर्तृत्वमप्यस्ति वको दारभ्य इत्यादिलिङ्गवत्सूगासनेषुत्सर्गास-द्धिरास्येया। ऋस्मिन् पूर्वपद्ये तं ह बक्ता दारभ्य इत्यादिनिङ्गस्य पूर्वपद्यन्यायेन प्रत्याख्यानं * तदवलम्बनप्रवृत्तमुत्सर्गमभ्युपगम्य तदपवादे तःः यासूपास्तिषु तदपवादो ऽस्ति तावन्माचविषय एव च याजमानत्वविचारोपास्तिविषय:। त्राद्यपचे तु सर्वे।पास्तिविषय: । तं ह वक्र इत्यादिलिङ्गस्य च पूर्वपचन्यायेन प्रत्याख्यानं न तु द्वितीयपचड्व न्यायाऽनादर:। ऋग्रे तमुद्गीयं बके। नामे-त्यादिगङ्कापरिहारग्रन्थे न्यायेन लिङ्गप्रत्याख्यानमप्यादापद्याभिप्रायम् ।

वर्षति । हास्मै य उपास्तइत्यादिवचनादिति । न केवलमिदं ५०९ । १ वचनं फलोपासनासामानाधिकरस्य्यतिषादनादुत्स्रगस्यापवादकं किं तु उपा-

^{*} न्यायेन न प्रत्याख्यानिमति २ पु[.] पा[.]।

[†] विकर्षतीति २ पुः पाः।

स्तइत्येकवचनबलादि । अव ह्युपास्तइत्यनेन वृष्ट्री पञ्चविधं सामापासीतिति उपक्रान्तं हिङ्कारप्रस्तावाद्गीयप्रतीहारनिधनेषु पुरे।वातमेयपादुर्भाववृष्टिविद्युद्ग-र्जिनयुगनदृष्टिसमाप्रिदृष्ट्योपासनमुच्यते । न च हिङ्कारादीनां पञ्चानामुद्गातृ-चयकतृकाणामेककतृकत्वमस्ति येनाङ्गानुष्ठातैक एव तदाश्रितापास्तिकती भवेद् अत एककर्तृकतायामुद्रातृषु विनिगमनाविरहादप्यत्सर्गवाधेन फलमाजा यजम।नस्यैवोपास्तिकृतृत्वम.स्येयमिति भावः* । वचनादित्येतदुपलवगां फलमाज एव प्रधानकर्तृ विमिति वद्यमाग्यन्यायादप्यत्सर्गवाधा द्रष्ट्रव्यः। पिततैरिति । पिततै: संव्यवहारे हि कदा चिते ऋत्विचा भवेयु: कुत: उपास्तीनामृत्विद्भमेत्वाद् यथा विद्यार्थे से।ममनुतिष्ठन् तस्य बीर्यवतरत्वार्थे-मुपासनां कार्यातुमिच्छिति यजमानः पतितव्यितिरेकेण चापासनविदे। उन्ये न लब्धाः तदा पतितेनाहं सामपानमाद्गावं करिष्यामीति मैचीव्यवहार वलादुत्त-स्तट्टाचिएयात् तं न प्रत्याचचीत ऋतस्तत्परिहाराय पतितै: संव्यवहारं त्यजे-प्र0१ । ५ दित्यर्थः । प्रकृतापयागिन इतिः । न क्षेत्रलं वचनात् पतितसंव्यवहारस्त्य-त्तव्यं: किं तु स्वक्रनेव्यकर्मनाशप्रमङ्गादपीति पूर्वाधिकरणाये हेत्वन्तरलाभहे-तुतया प्रकृतोपये।ग इत्यर्थः । इह संभवात् प्रयोजनान्तरमुत्तं विद्यार्थकर्मवीर्यः वत्तरत्वसंपादकोषासनविषयस्यास्य विचारस्य तद्विषयप्राच्योडीच्यविचारान्त-रवदुपये।गान्तरं संव्रतिपद्ममस्येव । यदि कामयेतेति वाक्येनेति । मिनु-यादित्युत्तमदोमानं तावदध्वर्युकर्तृकं यजुर्वेदस्याध्वयंवसमाख्यया सन्निधापि-तस्याध्वयीस्तत्र कर्तृत्वेनान्वयात्। ऋता मिनुयात्कामयेतेति क्रियाद्वयसमिन व्याहारहृषेण वाक्येन सद्दामानस्याकृतुरध्यर्थ्यारेव फलपंबन्धबाधनादित्यर्थः। तपसः प्रधानफलसिद्धार्थत्वादिति । ननु प्रधानफलिद्धार्थमणीतरदङ्ग-जातं समाख्यावनादध्वर्यप्रभृतिभिरनुष्ठीयते । सत्यम् । इह प्रधानक्रलसिद्धार्थ-त्वादित्यनेन प्रधानफलेत्यिनिप्रतिबन्धक्रयजमानगताऽधर्मनिवृत्तिद्वारा प्रधान-पालि दुर्ग्यत्व विविचितं तिन्नवृतिश्च यजमानगतेनैवानशनहृपदुःखानुभवेन भवति । एवं तपसः प्रतिबन्धकनिवृत्तिह्रपदृष्ट्रफल। घेत्वे संभवति नाऽपूर्वहरू

^{*} फलभानोपि कर्तृत्वमस्ति । कर्तृत्वमास्येयमिति भाव इति २ पु॰ पा॰ ।

[।] व्यवद्वारीत नास्ति १ पुः।

[‡] प्रकतीपयोग इतीति प्रतीकाकारः १ पुः।

षादृष्ट्रमंस्काराधेत्वं कल्पनीर्यमिति । ननु उक्तहेतुना तथे वाजमानमस्तु कर्मा-ङ्गाश्रितनीचैस्त्वादिफलमिष याजमान मित्यच को हेतुरित्याकाङ्घायामर्थमंया-गादिति सूचे त हेतुं विवृणेति यजेतेत्यादिना । साङ्गप्रधानफलस्येति । ननु गुगाफलमङ्गस्य प्रधानस्य वा न फनं किं त्वङ्गावितस्य गुगास्येवेति चेन्न । गुगास्य।ङ्गाष्ययगं विना स्वतः फलजनन।ऽसमधेतया ऽङ्गस्यापि फनजननकोट्य-नुप्रवेशातया च प्रधानवाक्यगताःमनेष्दश्रुतिविरे।धाउङ्गवाक्यगतिक्रयाद्वयैकः कर्तृ कत्वसमर्पकाख्यातद्व यसमभिज्याहारात्मकवास्यामार्गा कामयेत यजमान इत्यथ्याहार्य्य मिति भाव: । तथा मिनुपादिति परस्मैवदयु-নিবলার্বি বাক্ষ্যদায়দাङ্ग। রুष্ট্রহাঃ। डुमिञ् प्रचेवयो इति धातीर्जित्वादकर्च-भिप्राये क्रियाफले विहिता हि परसमैपदश्रुतिः नीचैः सदीमानस्य तत्कं निरि-त्तमुत फलार्थतां बाधयति । ननु काग्रङ धिकर्गा अङ्गाधितगुग्रफलानां यज-मानगामित्वमुत्तं न तूपासनानामृत्विक्कृतृंक्रत्वे कथं तेन पै।नस्त्यशङ्केत्याशः ङ्काह अत्राङ्गफलस्येति । अहापितगुगामलमाचस्य विशिष्य याजमानत्वा- ५०१ । १३ त्याङ्गतदापितगुणानामार्त्विज्यन्यमधादुक्तं भवतीत्येवं पै।नस्क्यशङ्केत्यर्थः । कथं तर्हि तिन्नराषस्तवाह सा न कार्येति । चित्वक्कर्तृकत्वं न्यायान्तरः साध्यं सिद्धवत्कृत्य तत्र फलमात्रस्य याजमःन चमुत्तं न तु तद्पि तत्र विषा-धर्यिषतं तत्साधकन्यायाः नुपन्यासादिति भावः । नन्विह त्वेवंजातीयकानी-त्यादिडीकावाक्ये चकारयुक्तं पाठं गृहीत्वा तचापासनानीत्यनेनान्वयमुक्का सद्दे।मानादिकत्वङ्गजातीयकान्युपासनानि च याजमानान्यात्विज्यानि वेति विचार्य्यतर्त्येवं तद्वाक्यं व्याख्यातम् । तदिदं व्याख्यानमयुक्तम् । सदे।माना-दीनामङ्गानामृत्विक्कृतृेक्रत्वस्याच विचाराभावात्सर्वेषामङ्गानामृत्विक्कृतृेकत्वस्य शास्त्रफलं प्रयोक्तरीत्यधिकरणिसद्धतायाः स्वयमेत्राचार्य्यरनुपदं वद्यमाणः त्वाच्च । न च सद:करणादिक्रत्वङ्गजातीयकानीत्याचार्यवाक्यस्य सद:-करणादिक्रत्वङ्गात्रितनीचैस्त्वादिकलार्थगुणजातीयानीत्यर्थे। वाच्य: । सदी-नीचैस्त्वस्य सदोमानक्षर्वध्वर्युव्यतिरिक्तिनिर्वर्त्यत्वासमवेन तर्चाप गोदोहः नादिन्यायेन याजमानत्वविचाराऽये।गादिति चेदुच्यते । इह सदःकरगा-दीनामृत्विक्कर्तृकत्वस्याविचार्यस्यापि टीकायां विचार्य्यताक्तिस्तयाकाम इत्य-धिकरणे तस्य विचारितत्वद्यातनार्थेत्याचार्याणामभिप्राय: । से।यमभिप्रायस्त-

याकाम इत्याधिकरणे होत्यादानन्तरवाक्येनैव स्फुटीकृत: । यद्वा सद:कर-गादिक्रत्वङ्गचातीयानीत्यस्य क्रत्वङ्गायितस्य नीचैस्त्वस्य निष्प्रलार्थगुग-त्वेन सजातीयानीत्युपास्तिवत्क्रियाह्यपाणि यजमानानेन पृथगनुष्ठातुं श-क्यानि कर्मकार्ग्डाम्बातानि तानीत्यर्थः । एवं चाङ्गानामपि ऋत्विक्कर्तृकत्वं न चिन्तितमित्युपरितनवाक्ये श्रङ्गानामित्यस्याङ्गाश्रितकर्मकायडाम्बानक्रि-याह्रपगुणानामित्यर्थ: । ननु टीकायां चकारसद्वात्रे ऽप्येवंजातीयकानि नीचेस्त्ववत् फलाश्रान्यङ्गावबद्धानि चेति उपासनागर्तावशेषणद्वयसम्च्यार्थ-त्वेन चकारेग योज्यतःम् इति चेदस्तु तदिष व्याख्यानं तत्स्पर्रिवत्याचाyo१ । २० यैने सृष्टम् । उपास्तीनामनङ्गत्वादिति । अङ्गानि हि स्टेन्विक्कर्नुकाणि प्रधानस्य तु यागस्य यजमानकतृंकत्वं संप्रतिपद्मम् । उपास्तया । १० फल-श्रुते: प्रधानभूता: । त्रुता याजमानत्वशङ्का । एवं च यदापि परिक्रयाम्बा-नात् क्रता यदान्कर्तव्यं तत्सर्वमृत्विग्भिरेव कर्तव्यमित्युत्सर्गः तथापि प्रधानयागदव फलश्रुत्यविशेषाद् (*यजमानकर्तृकत्वम्) । ननु यदि फला-र्थेगुणप्रधानत्वात् फलभाजा कर्तव्यः तर्हि गे।दे।हन।दिरपि याजमानः स्यादित्याशङ्क्याऽस्यात्सर्गच्य गादोहनादिषु यागः न तु शक्ये क्व चिद-पीति । परिहरति न चैवमित्यादिना । फलार्थगुणे तदपवाद इति भावः । वर्षेति हास्प्राइत्यादिवचने यजमानपदाभावे ऽपि फलस्वामिन उपासनाकार्यत्वाऽवगमाद् यजमानस्य फलस्वामित्वात्। ऋत एवापासनाकर्ता वाक्यप्रमाखेनावसीयतद्ति कृतशङ्कापरिहाराधे टीकायास्तात्पर्यमाह कम्मी-णीश्वरो अधिकारीत्यादिना । श्रीत्सर्गिकस्येति । ननु सर्वे कर्म ऋत्विजामितिवत्सवे फलं यजमानस्येत्ययमप्युत्सर्गश्चेत्कथं फले।त्सर्गन्या-यमवलाच्य वर्षति हास्माइत्यादियजमानस्योपासनाकर्नृत्वे‡ प्रमाणमाश-ङ्काते कर्नुत्यर्गन्यायेनाद्गातुः फलभाङ्गातत्प्रमाणं किं न स्यादिति चेनमैवस् । प्रधानवाक्यगतात्मनेपदश्रतिमूलात्फलात्सर्गात्परिक्रयह्रपाङ्गवाक्यमूलस्य कर्तु-हत्स्गेस्य दुर्बलत्वात् । यजमानस्येत्यादिटीकावाक्यं योजयति यजमानस्या-पासनमिति। तस्येत्यस्यार्थमाह उपासकस्य सत इति। तत्र दृष्टान्त

^{* ()} सतन्मध्यमे ग्रन्थे नास्ति ५ पु.।

[†] श्रीत्सर्गिकन्यायस्येतीति १ पुर पार । .

[‡] कर्तृत्वेनेति १ पुः पाः ।

इति । यजमानस्यापासनमित्यच फलं दृष्टान्तीकृतमित्ययै: । उपासनं प्रधा-नत्वादाजमानेन कर्तव्यमिति पूर्वपचोपपादकन्यायस्यार्थवादिकलिङ्गदर्शनेन बाधमाशङ्कते न चेति । न्यायं न बाधतइति । किं तु न्यायेन लिङ्गद-र्शनमेव बाध्यतइति भाव: । यस्त्वच *न्यायबाध उत्त इत्यग्रे न्यायेन लिङ्ग-दर्शनस्य बाध उक्त इत्यनूदाते टीकायां तस्मै हि परिक्रीयतइति सै। चहेतुम-पहाय निङ्गदर्शनं किमित्युपन्यस्यतइत्याकाङ्घायां तस्य साचात्मिद्धान्तहेतु-त्वानुषपतेरिति दर्शयतुं तामनुपपतिमुद्घाटयति ननु तस्मै हीति । तस्मै हि परिक्रीयतइत्यच तस्माइत्यस्य किमङ्गाः चित्रोपास्तिकरणायेत्यर्थे उताङ्ग-करणायेति । त्राद्ये त्रिं मिह्ना तामुपपादयति स्रङ्गाश्रितेति । नन्वस्तु द्वितीय: । न चाङ्गकरणाय परिक्रयस्य तदाश्रितापास्तिपर्यन्तत्वं न सिध्येदिति गङ्कनीयम् । त्रा सन्निधानातत्पर्यन्ततासिद्धेरित्यागङ्कय सन्निधानमितिप्रसञ्ज-कत्या दूषयति यत्र हीति। ननु प्रथममृत्विनां कर्तृत्वं प्रमाय पश्चातादथ्यैन ५०२। १४ ते न परिक्रीयन्ते स्वर्गकामा यजेतेति सामानाधिकरएयात्मनेपदाभ्यां फल-भ जा यजमानस्येव करगोतिकर्त्रव्यता ў पहितभावनाकर्तृत्वे प्राप्ने दिवागया ऋत्विजां परिक्रयणाम्नानात् तददृष्टार्थत्वाय सामानाधिकरण्यात्मनेपदाभ्यां प्रमितं यज्ञमानस्य कर्तृत्वं ऋत्विग्द्वारकं प्रयोजकं प्रयोजकत्वे ऽपि प्रमित-कर्तृत्वानपायादिति परिक्रयाम्बानबलादेव पश्चाद् ऋत्विजां कर्तृत्वं प्रमीयते। पूर्वतन्त्रे ऽपि शास्त्रफलं प्रयोक्तरि तल्लचणत्वात् तस्मात्समं प्रयोगे स्याद्॥ अन्यो वा स्यात्परिक्रयाम्बानादिप्रतिषेधात्प्रत्यगात्मनीति ॥ पूर्वपचिद्धान्तम्-चाभ्यां तथैव व्यवस्थापितम् । तस्माद्यच हि तेषां कर्तृत्वं प्रमितं तदधै ते परिक्रेतच्या इत्युक्तिरयुक्तेति चेद् नायुक्तेति ब्रूमः । न हि प्रथमप्रमि-तक्तृत्विनिवीहाय स्विजां परिक्रया विधीयते इत्यनेन वाक्येनास्यते किंतु यच तेषां परिक्रयास्नानात् कर्तृत्वं प्रमाणवत्तावदर्थमेव ते परिक्रे-तव्या नाधिकरणार्थेमपि । यथा स्प्यादीनामुद्धननादि यावत्कार्ये वचना-न्तरै: प्रमितं ताबदर्थमेव तानि संपादनीयानि न तु यदात्वर्तुं

^{*} बाध्यतद्दि भावः । श्वत एव यस्वदेति १ पुः पाः ।

[†] तस्यां तस्येति २ युः पाः । § यजमानस्यैव कर्तव्यतेति २ युः पाः ।

[‡] किं चिदङ्गीत २ पु॰ पा॰।

[्]री के सू∙ प्र∙० पा∙ ४ सू∙ २ ।

[∥] जै सूर ग्रर ३ पार ७ सूर २०।

शक्यते स्म्यादिभिः तद्रश्मिषि तद् द्रव्यं चात्पतिसंयागात् तद्रश्मेव चाद्यत-इत्यधिकरयोक्तन्यायमवलम्ब्योच्यते न तत्र का चिदनुपपति:। संपादः चितुं युज्यतइति । फलाय घटतइत्यस्य फलाय चेष्टते फलसिद्ध्यपये।गि-कार्येषु व्याप्रियतइत्थर्थः संभवति । स तु घट चेष्टायामिति धात्वर्यानुगमेन स्पष्ट इति नेातः । अनेन यजमानगामिकलायै यदावद्वत्तव्यं तस्य सर्वस्या-र्थे परिक्रयः। न तु प्रकरण्यधिकारवाक्यनिर्द्धिष्ठफलं यावता सिध्यति तावत एवार्थे तावदर्थत्वे ऽपि न दे।ष: । ऋङ्गावबद्धापास्तीनां तस्मिन्नपि फले प्रति-बन्धनिवृतिद्वारोपयोगात् । ऋते। न स्प्याधिकरणविरोध इति दर्शितं भव-ति । कांस्यभाजिन्यायेनेति । नन्वविरोधे कांस्यभाजिन्यायः। इह प्रथा-नम् फलमाजा साचादेव कर्त्तव्यमिति प्रागेव दर्शनाद्विरोधा उस्तीति चेत्र । यागस्य स्वामिकर्तृकत्वं न प्राधान्यप्रयुक्तं किं तु स्वामिद्रव्ये स्वत्वत्यागा उन्येन कर्तुमशक्य इति ऋत्विगशिताप्रयुक्तम् । ऋत एवाङ्गस्यापि यजमान-द्रव्येग परिक्रयस्यान्येन कर्तुमशक्यत्वाद्याजमानत्वं प्रधाने उप्यानिहोत्रहोमे स्वत्वत्यागांशं विना प्रचेषांशस्यान्येन कर्तु शक्यत्वाद् स्राध्वर्य्यवत्वम् । तस्माद्युत्तो ऽच कांस्यभाजिन्यायः । तदर्थमपीति । लिङ्गवशादुपासनस्य स्विक्षन्कितं सिद्धे स्विक्पिरक्रयस्य तादर्थ्यमपि सिथ्यतीति भाष्यका-रैस्तत्साधारएयेन तस्मै हि परिक्रीयतइति सूचावयवा व्याख्यात इत्यर्थ: ।

ध्०२ । २५

एतच सर्विमिति । ननु भाष्ये मूचावयवात्तं हेतुं प्राधान्येनाप-न्यस्य तथा चेत्यादियन्थेन तदुपेद्वलकं लिङ्गमुपन्यस्तमिति प्रतिभाति न तु लिङ्गं प्रधानहेतुत्तये।पन्यस्तिमिति । नैष देषः । अर्थवशेन तस्य प्राधान्यात् । भाष्यकाराग्रामपि तथैवाशय इति तात्पर्य्यम् । भाष्यस्वारस्यानुरा-धात्* सै।चं हेतुं प्राधान्येनोपन्यस्य तदनुग्राहकतया लिङ्गमुपन्यस्तिमिति भाष्याशयवर्णेने ऽपि न देषः । लिङ्गमनपेत्त्येव परिक्रयस्योपास्तिमाधारण-तायाः स्प्र्याधिकरणविरोधपरिहारेग्रास्माभिः सम्भितत्वात् । तत्साधार-ग्यसिद्धेलिङ्गमुखनिरोचकत्वे लिङ्गं यदुपास्तिविषयं परिक्रयस्य तावन्मावविषय-ताया एव सिद्धिप्रसङ्गाद्य । तं ह बक्ता दाल्भ्य इति लिङ्गं हि प्राणदृष्ट्योङ्कारा-

^{*} भाष्यकारस्यानुरोधादिति १ पु. ।

पासनमार्चावषयं तस्य न्यायसिद्धार्थानुवादकत्वेनापासनविशेषप्रस्तावमनपेद्य सर्वविषयता सिध्यति । त्रत एव सैायाङ्गप्रभृतीनामनुष्टिष्टधर्माणामन्यत इति-कर्नव्यताकाङ्घाया लै।किकस्यालीपाकादीतिकर्तव्यता न भवति कि तु दर्श-पूर्णमासादिता वैदिक्षीति निर्णयाथँ प्रवृते स लै।किक: स्यादुष्टप्रवृत्तित्वा*दिति साप्रमिकाधिकरणे विध्यन्ते। वा प्रकृतिवच्चीदनायां प्रवर्तेत तथा हि लिङ्गद-र्शन†मिति सिद्धान्तसूचेण सै।शेदिचेादनायां प्रकृतिषु दर्शपूर्णमासादिष्विव तदी-य एव वैदिका विध्यन्त: प्रवर्नते । तथा हि लिङ्गं दृश्यते । यथा हि सै।र्यचरै। दार्शपूर्योमाधिकप्रयानप्राप्तिं सिद्धवत्कृत्य प्रयाने प्रयाने कृष्यालं जुहोतीति कृष्या-लविधान। श्रेस्तदनुवाद इति सिद्धान्ते। पपादनानन्तरं लिङ्गहेतुत्वादलिङ्गे ली-किकं स्या‡दिति सूचेण यदि लिङ्गेन वैदिको विध्यन्तो नियम्यते तर्हि यचैन्द्रावन-मेकादशकपालं निवेषेदित्यादै। तन्नास्ति तच लैकिकोतिकर्तव्यता स्यादिति शङ्कामुत्याप्य लिङ्गस्य पूर्ववन्वाच्चे।दनाशब्दमामान्यादेकेनापि निरुध्येत यथा स्थाली पुलाकेने∮ित सूचेण यदि लिङ्गं वैदिकविध्यन्तर्रप्रापक्षत्वेनापन्यस्तं स्यातदा ऽयं देशो भवेद् न तथापन्यस्तं किंतु नेताग्निसाध्यत्वादिसाम्या-दनुषदिष्टध्यमंकेषु सार्यादिषु सर्वेष्वपि वैदिक्येवेतिकर्तव्यतिति न्यायप्राप्रानुवा-दकतयापन्यस्तं ततुल्यन्यायपूर्वकं लिङ्गमेकच दृश्यमानं तुल्यन्यायानां सर्वेषां धर्मवतां चापयति यथा स्थाल्यां तुल्यपाकानां पुलाकानामेकमुद्भृत्य शृतं दृश्यमानमन्येशामपि शृतत्वं चापयतीत्युत्तम् । तस्मादिह लिङ्गस्य न्या-यप्राप्रानुवादतयेव सर्वे।पासनाविषयत्वमुपपादनीयम् । स न्यासः सूचे हेतुतया निर्दिष्ट इति तस्यैव मिद्धान्तहेतुत्वं भाष्यस्वारस्यानुरोधेन वर्णनीयम् । ऋा-चार्येस्तु टीकायां तं हेतुं विहाय प्रथमं निङ्गापन्यासस्य तात्पर्यमेव मविष्य-तीति तदुपपादनमाचं कृतम् । आचार्याणां तु लिङ्गं न्यायप्राप्रानुवादकमि-त्येव स्वाभिप्रायः । तदवष्टम्भेन हि पूर्वपचग्रन्थे तैस्तम् । तच्च लिङ्गं सर्वचा-र्त्विज्यमुपास्तीनां गमयतीति । ननु यनूर्क्तमित्यादिमाध्येग वर्षति हास्माइति श्रुतै। फले।पासनयाः सामानाधिकरएयश्रवणात् फलभाने। यजमानस्यैवोपास-नाकर्तृत्वं वाच्यमिति पूर्वेषचे कृता शङ्का उनूदिता तच ऋत्विजां फलभाक्ष-

^{*} जै॰ सू॰ श्र॰ ७ पा॰ ४ सू॰ ९०।

[†] जै॰ सू॰ श्र॰ ७ वा॰ सू॰ १९।

[‡] जे. मू. श्र. ७ घा. ४ मू. ९२ ॥

[§] जै सू॰ श्र∙ ३ पा॰ ७ सू॰ ६ ।

निषेचे क: पारार्थ्यादित्यादिपरिहारग्रन्था न युक्तस्तेषां फलभाक्षस्यानाश-५०२ । ५ ङ्कितत्वादित्याशह्य परिहारग्रन्थस्य तात्पर्यमाह परार्थत्वादिति भाष्ये-णेति । अनेन परार्थत्वादित्यादिफलसंबन्धाऽनुपपतेरित्यन्तं पारार्थ्येन हेर्तुं ऋत्विजां फलसंबन्धनिषेधार्थमेकं वाक्यं न भवति किं तु परार्थत्वादृत्विज इत्येतावदेकं वाक्यमनूदितशङ्काणरिहाराथै तेन ऋत्विभिर्यत्क्रियते न तच तद्द्वारकं यजमानस्यैव कर्तृत्वं तेषां पाराष्ट्रीदतः फलापामनामानाधि-करण्यस्ते: * स्वर्गकामा यजेतेति फलतदर्थमाङ्गप्रधानानुष्ठानसामानाधिकर-ग्यश्रुतेरिव नानुपपतिरिति परिहारे। दर्शित: । यदि परार्थत्वादृत्विजां तत्क-मेणि यजमानस्यैव ऋर्तृत्वं तदा क्रिमपि फलमृत्विजा न स्यादित्यात्मने वा यज्ञमानाय वेति श्रुतिविरोधः । तस्मादृत्विक्कमीणि क्व चित्क चिद् ऋत्वि-जामपि स्वातन्त्र्यं वक्तव्यं तद्वदुपाषने ऽपि तेषां स्वातन्त्र्यं स्यात् ते यदा-पाचनाकर्तारः स्यः। न हि तेषामुपाचनाकर्तृत्वे यजमानकर्तृकं तदङ्गं तत्य-धानं वा फलजननाय तदपेचितं किं चिदस्तीत्युपासनांशे पारार्थ्यहेता-रिविद्धिमाश्रङ्घ तत्परिहारार्थमन्यचेत्यादि वाक्यान्तरिमिति वाक्यभेदेन भाष्यं व्याख्यातम् । ननु केवलं वचन।देव ऋत्विजां फलसंबन्धो न भवति किं तु न्यायते।पि ममाग्ने वर्च्चा विह्नवेष्वस्त्वित्यन्वाधानकरणमन्त्रस्याध्व-र्युंगा वक्तव्यतया तेन प्रकाश्यं वर्चः प्रभृतिफलमध्वय्यै।रेव हि वक्तव्यं ममा-स्त्वित प्रत्यगाशीर्ह्मिङ्गात् । यवमुपासनस्याद्गातृकर्तृकत्वे फलार्थस्य कृतस्त्रस्य तन्माचकर्नृकत्वलिङ्गाद् दहराद्युपासनाफलवद् उद्गीयाद्युपासनाफलमपि सा-चात्कर्तृगामि स्यादित्याशङ्कापरिहाराथै श्रुतेश्चेत्यादिभाग्यं समाग्ने वर्च्च इत्या-दिमन्त्रप्रकाश्यफलमपि याजमानमेवेति निर्णयार्थे प्रवृत्तस्य करणेष्वर्थवन्वा†-दिति पूर्वतन्त्राधिकरणस्य स्मारणार्थम् । तच हि वर्चः प्रभृति फलमपि यज-मानगाम्येव प्रधानवाऋगतात्मनेषदश्रत्या साङ्गप्रधानमावनाविषययाङ्गमाव-नानामपि यनमानगामिफलत्वस्ये।कत्वेन तद्विसद्धस्य मन्त्रगतप्रत्यगाशीर्ल-ङ्गस्य बाध्यतया मन्त्रे ममपदस्य यजमानग्रव स्वकीयतयौापचारिकत्व-कल्पनादिति सिद्धान्तव्यवस्थापनानन्तरं लिङ्गदर्शनाच्चेति‡ गुणसूत्रस्थादाहर-

^{*} श्रुतेः स्वरूपीमिति २ पु॰ पा॰।

[‡] जै॰ सू॰ श्र॰ ३ पा॰ द सू॰ २०।

[†] जै॰ सू॰ ग्र॰ ३ पा॰ ८ सू॰ २५।

गत्वेन यां वे कां चनेति श्रुतिलिखिता। इह तदुदाहरग्रेन वचनं विना लिङ्गमा-नेण क्व विदिष चित्विगतं फलं न भवित चित्विक्कमेफलस्य यजमानगामिताया न्योत्पर्गिकत्वे प्रवलयुतिन्यायमत्वादिति कृतशङ्कापरिहारः सूचितः। एवं सामान्यत श्रात्विज्यफलमानस्य यजमानगामित्वे श्रुति समुदाहृत्य विशिष्य चित्विक्कर्तृकोषासनफलस्य तद्गामित्वे श्रुतिस्दाहृता।

भाष्ये तस्मादु हैवंविदिति तत्र तस्मादित्यस्यार्थमाह यस्मा- ५०३। २ दिति । तस्मादिति घच्दे। हि प्रागुतं हेतुं करोति तच्च से। ऽसुनैव स एष ये चामुष्मात् पराञ्चा लाका यताँश्चाम्रोति देवकामाँश्च ऋथा-नेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चा लाकास्ताश्चामाति मनुष्यकामाश्चेति पूर्ववाक्यं तच से। ऽमुनैव से।नेनैवेत्यनयेाः फलितार्थस्तत्क्रतुन्यायलभ्यस्तदुभयात्मके। भूत्वेत्यनेन दर्शितः । एकसः युगपदुभयात्मकत्वं स एकधा भवतीत्या-दियुतावुगमनामामध्येन युगणदनेकशरीरपरिग्रहस्याकत्वादुपपन्नम् । ये चामु-ष्मात्पराञ्चा लोका ये वैतस्मादवीञ्चा लोका इति वाक्यद्वयोक्तफलसमुच-येन फलितार्थ: सर्वा ह्राकानाप्रातीत्यनेन दर्शित: । ननु यजमानगामि खलूपासनाफलं कथमिहोद्गातुः फलमुक्तं नैव देवः। वचनादृत्विजा ऽपि फलमस्तीत्यनुपदमेवानाम् इह च य एवं विद्वान् साम गायत्युमा स गाय-तीति प्रकृत उद्गाता से। ऽमुनैवेत्यनयार्वाक्ययास्तच्छब्दाभ्यां परामृश्यते । श्रता ऽचापि वचनबलादृत्विजा ऽपि फलभाक्षमविष्दुमित्याचार्याणामभि-प्राय: । एवमपि व्याख्यातुं शक्यम् । य एवं विद्वान् साम गायतीत्यच सामगाने प्रयाजककर्ता यजमाना गायतीत्यनेनाच्यते उद्गातुरेकस्य पञ्चभ-क्तिककृत्त्वसामगातृत्वाभावेन प्रयोजककर्तृपरतयैत्र कृत्त्वसामगाने एककर्तृक-त्वस्य निर्वाह्यत्वादुद्गातृविषयत्वे सामग्रब्दस्याद्गातृगेयसामभागे लाचणिक-त्वापते: । त्रतः प्राग्यजमान एव प्रकृतः। तस्यैव च से। ऽमुनैव से।ने-नैवेति तच्छब्दाभ्यां परामृष्टस्य फलभाक्षमुच्यते । यस्मादेवमुद्गातृकर्तृकस्या-प्युपाषनस्य यजमान एव फलभागी तस्मादेवंविद् उत्तीपातनाप्रकारपरिज्ञातीः द्वाता ऋच्यादित्यपुरुषे।पाधनेन यजमानं संताव्याधिकद्रव्यलिप्सुश्चेद् यजमानं पृच्छेदिति । एवं व्याख्याने तु नास्त्यनेाद्गातुः फलभाक्षे वचनमिति विशेषः ।

^{*} स्कवेति २ पु·।

[†] यजमानापासन फलिमिति २ पुः।

किं कामं अलमागायानीति । अव किं फलमित्यस्य या वा ऽमुष्मादितिवाक्योत्तं वा ये चैतस्मादिति वाक्योत्तं फलं वेति न प्रश्नार्थः । य एवं
विद्वान् साम गायत्युमा स गायतीति वचनानुसारेणाच्यादित्यपुक्षोपासनयारेकविद्यात्वेन द्विविधलोकावाय्योः समुद्वितयोविद्याफलत्वात्विं तु किमिदं
तव विद्यानुष्ठानं कर्मार्थमिति कृतवीयेवतरत्वमेव फलमागायानि उत्त
फलार्थमिति सर्वलोकावाय्यादिकमपीति प्रश्नार्थः । आगायानीत्येतदनन्तरमेष ह्येव कामागानस्येष्ट्रइति वाक्यं ततु किमये फलप्रश्नः । उपासनां
करवाणि न वेत्येव प्रष्ट्रव्यम् । कृतायामुपासनायां यज्ञमानेन यत्फलं सङ्कलियतं तत्स्वयमेव भविष्यतीत्यागङ्कापरिहाराथे कामं ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीतित्यचोद्गातुरिष याज्ञमानफलकामनाश्रवणाद् यज्ञमानस्येष्ट्रमिदं फलं
भवित्यिति स्वयमिष ध्यायनेव तत्फलं संपादियतुमीष्ट्रइति परिहाराभिप्रायः ।
तस्य वाक्यस्यार्थमाह समर्था हीति ।।

५०३ । ६ **सहकार्य्यन्तरविधिः पद्मेग उ**तीयं तद्वता विध्यादिवत् ॥ ४०॥

बाल्येनेति । नायमात्मा बलहीनेन लभ्य इति श्रवणात् साङ्गा-ध्ययनजन्यापातब्रह्मज्ञानहृषस्य श्रवणस्य बनं तत्प्रतिष्ठापकं युक्तिभिरनु-चिन्तनहृषं मननमेव बलं तेन ये। ऽयमसंभावनानिरासः स बलस्य भाव-इति बाल्यत्वेनोपचिर्ताः स एव मननेनेति मननकार्यत्वाद् मननत्वेना-ध्युचिरतः । इदं व्याख्यानं बृहदारण्यक्रभाष्यानुसारेणाँऽनाविष्कुर्वन्नव्या-दित्यधिकरणे वन्त्यमाणेन प्रकारेण बालस्य कर्म बाल्यमिति व्युत्पित्तम-वलम्ब्य व्याख्यानान्तरं शुदुहृदयत्वेन वेति ब्रह्माह्मित्यवगच्छती‡ित ब्राह्मण इति शेषइति सूचस्याधिकारार्थेत्ववल्लचणार्थेत्वमप्यङ्गीकृत्य तेन चनुषा गृह्यतद्दित चानुषमित्यादिहृपसिद्धेः शब्दिविद्वकृत्तत्वात् तैनेव सूचे-णोत्तार्थे शैषिको ऽण्प्रत्यये। द्रष्ट्रव्यः । ब्रह्म नित्यमित्यवगच्छतीति ब्राह्मण इति पाठे तु कर्मण्यिणत्यण्प्रत्ययः । धातूनामनेकार्थत्वाच् शब्दकर्मकस्या-णतिरिह्वावगत्यर्थता । साचात्कारवत इति भाष्ये हि विद्यावतः संन्यासिन

^{*} कार्मामिति नास्ति २ पुः।

[‡] मननं बनमिति १ पुः पाः।

[†] श्रन्न नयोदशं स्वास्यधिकरग्रं पूर्णम् । १ ब्रह्मास्तीत्यवगक्कतीति २ पुः पाः ।

हति व्याख्यानं तद्याख्यानं तं वैतमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुनेषणा-याश्च वित्रवणायाश्च लोकैवणायाश्च व्युत्थायाय भिचाचय्ये चरन्तीति विद्व-त्संन्यासः प्राक् प्रकृतः विदित्वेति विशेषणादित्येतदभिप्रायं वार्खात्व च विद्व-त्संन्यासे साचात्कारवति विद्यातिशयः सिद्धं इति भावः । विद्याशब्देनेति भाष्ये प्रकृती विद्वत्संन्यासे। न विविचतः किं त्वेतमेत्र प्रव्राजिना लेकिम-च्छन्तः प्रव्रजन्तीति वाक्यान्तरिषद्धे। विविदिषुषंन्याषः पंन्याषषामान्यग्रहणे प्रकरणमपेचते । न तु तद्विशेषग्रहणे ऽपि। विद्यातिशयविधेरनुराध्यत्वादिति भाव: । भेददर्शनवशात् पाचिकाग्राप्री विधिरिति भाष्यटीके।क्तमन्वयव्य-तिरेकावगतफलमाधनभावे फलार्थिनां व्यासङ्गमाचेग कदा विदव प्रवृ-ति*निरासाय विध्यनपेचगादित्यागङ्का ततात्पर्धमाह शाब्द्ज्ञानात्कृत- ५०४। १० कृत्यतां मन्वान इति । यथा दारान्तरपुर्वः कृतकृत्यतां मन्वानस्य दारान्तररागेण रोषेण वा अनुगमनाप्राप्ती स्टता‡बुपेयादेवेति नियमविधिः तथेहापीति भाव: । एवं चाऽविधेयत्वमुक्तमित्यस्यापूर्वविध्यविषयत्वमुक्तम् इह तु नियमविधिविषयत्वमुच्यतः ति पूर्वीपरित्ररोधपरिहारी द्रष्ट्रव्यः । यत्रमपि विधिच्छायानीति समन्वयसूचभाष्यस्य तचत्यटीकायन्यस्य च नाञ्ज-स्यमित्यवरित्ष्यद्वाह अथ वेति । दारान्तरपुर्वेरिव अव शाब्दज्ञानेन कृतकृत्यतां मन्वानस्य∮ मूलं नास्ति दारान्तरपुरैरेवानृग्यवच् शाब्द-चानमाचेण ध्यानं विना साचात्कारस्य सिद्धासंभवाद् ऋच∥ न नियमवि-ध्यपेचा । त्रतः पचेणेति सै। चपदतद्वाष्ययोभेददर्शनव्यासङ्गाद् ध्याने ऽन्-त्सहमानस्योत्साहजननाये विधिसह्यो ऽयमर्थशद इत्यनैव तात्पर्यमिति भावः । विध्यभावपत्तमेव सिद्धान्तमवलम्ब्य तमुपपादयति अपि चेति । श्रवणमननध्यानानां क्रमेण भवतां ब्रह्मसाचात्कारपर्यवसानेन फलवत्वमि-ध्यते । तच प्रवरामध्ययनविध्यायतमाङ्गाध्ययनजन्यापातचानहृपं न किमपि विधिमपेचतइतोष्ट्रमेव** । तदेव फलवदर्थनिर्योगर्धविचारात्मके मनने प्रवर्तये।देति तचापि न विधिरपेत्व्यते । न चानपेत्र††स्वतन्त्रविचारस्य

^{*} श्रापवृत्तीति २ पुः पाः।

[‡] स्चरताविति २ पु॰ पा॰।

[∥] श्रात्रेति नास्ति ९ पु∙।

^{**} **इ**ति स्पष्टमेवेति ९ पुः पाः ।

[†] कतकत्वमिति २ पुः याः।

[§] कतकत्यताभिमानस्येति १ पु· पा· ।

[¶] फर्नामव्यतद्वति २ पु. पा.।

^{††} गुर्वनपेवेति ९ पुः पाः।

द्वेतशास्त्रविचारस्य वा पचे प्राप्नौ नियमविधेरवकाशा ऽस्तीति शङ्कनी-यम् । तद्विज्ञानाथं स गुरुमेवाभिगच्छेदिति नियमविधानादादानियम-षिद्धेः शास्त्रान्तरविचारस्याद्वितीयब्रह्मसाचात्कारानुपायत्वादेव तद्रप्राप्तेः । न च द्वेतशास्त्रविचारस्य माचार्थब्रह्मचानापायत्वभ्रान्त्या तत्प्राप्तिः संभ-वतीति वाच्यम् । भ्रान्तिप्रयुक्तप्राप्तेः नियमविधिनापि वार्यितुमशक्यत्वात् तस्यापि नियमविधेद्वैतिकृतयोजनया द्वैतशास्त्रविचारनियमविषयताभ्रान्ति-संभवात् । न च वेदान्तार्थययनपरपुराणभाषाप्रबन्धादिविचारस्यापि पत्ते प्राप्ना वेदान्ता एव विचारणीया इति नियमविध्यपेचा ऽस्तीति वाच्यम् । वेदेनैव वेदार्थे। ज्ञातव्य इत्यध्ययनविधित एव तस्य नियमस्य ला-भात् । इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेदिति वेदे।पबृंहणत्वेनैव पुराणादि-विनियोगात्। न स्त्रेक्कभाषां शिवेतेत्यादिभिनिषिद्धस्य भाषाप्रबन्यस्याप्राप्रेश्च। न च न्यायविचारं विना ऽस्य वाक्यस्यायमधे इति न्यायसिद्धार्धविषयगुह्य-पदेशस्यापि पन्ने प्रापिरस्तीति शङ्कनीयम्। लचग्रमुखेन हि ब्रह्म निर्द्धार्य ध्यानेन तत्साचात्कारः संपादनीयः । ब्रह्मसद्वावमाचं संप्रतिपद्य तत्किं ब्रह्मेतीदंतया निद्धारणार्थमुण्यन्नाय भृगवे यते। वेत्यादिलचणमुखेन तदु-पदिश्य तद्विजिञ्चासस्वेत्युत्तिसामर्थ्यात् (लचर्योनैव ब्रह्म निर्द्धार्ये ध्यातव्यमिति नियमान्नयनात् । न हि शृङ्गयाहिकयोपदेशस्यापि ध्यानसाचात्कारोपयोगि-ब्रह्मनिर्द्धारणायात्वे गुरूपाये लचणमुखेन ब्रह्मनिर्द्धारणे गुरु: शिष्यं प्रवर्त-येत्। तन्मुखेन ब्रह्मनिर्द्धारगं च प्रधानाद्यतिव्याप्रिनिरासेनासंभवनिरासेन च लवणदृढीकरणाथं धर्ववेदान्तनिर्णायकन्यायविचारमपेवते सगुणनिर्गुणवाक्यः विवेचनेन निर्गुणवाम्यप्रतिपन्नानन्दादिगुणास्यू लन्वादिनिषेधे।पसंहारेणाखगड-वाक्यार्थनिर्धारणमपि तमपेवते न्यायानुषंधानाय नेदं वाक्यं सगुणविषयमिदं निर्गुणविषयमिति न्यायानुषंथानरहितस्यासंकरेण थारणासंभवात् तदसं-भवे ऽप्येतद्वाक्यं सगुणविषयमेतन्निर्गुणविषयमिति न्यायानुसंधानरहितस्याः संबरेण धारणासंभवात्। तदसंभवे च स्वयमनुपपतिप्रतिसंयानेनान्याचेप-कृतानुपपतिप्रतिसंघानेन वा चोभितहृदयस्य प्राचीननिर्धारणान्यथाभावापते:। यस्य प्राग्भवकृतन्यायविचारवासनातिशयवशादुपदेशमानता ऽपि निश्चलं बृहस्पतिनाप्यचोभ्यं निर्द्वारग्रं संभवति तस्य मननापेचायामपि देग्वाभावात्।

श्रत यव तत्कारणं सांख्ययेगगिमपद्ममिति श्रुत्या सांख्ययेगगिब्दतं विचारोपदेशमानपूर्वकेत्रसम्प्रितपत्युपायद्वयमुक्तम् । न च सेपाधिकात्मसा-चात्कारक्रम्प्रकरणभावमने।व्यापारस्य पत्ने प्राप्तिरस्तीति शङ्कनीयम् । ज्ञानमाने क्रम्पकारणभावस्य समाहिता भूत्विति विशिष्यात्मदर्शने नितरामपेचितत्वेन श्रुतस्य च तस्य नियतप्राप्तत्या व्यावर्तनाऽयोगात् । तथापि मनसःकरण-तया प्राप्तिः पाचिकोति चेद् न । मनसैवानुद्रष्ट्रव्यमिति श्रुतेः श्रवणादिसं-स्कृतं मन श्रात्मदर्शने करणिमिति गीताभाष्यदर्शनाच्च मनस एव करणत्या ऽपि नियमेन प्राप्तेः । एवं पाचिकस्याप्युपायान्तरस्य प्राप्यसंभवे समुच्चयेनोपा-यान्तरस्य व्यावर्तनयेगयस्य प्राप्तिर्दूरापास्तेति ने।पायपरिसंख्यापि शङ्काहा ।

अवघाता हीति । दर्शपूर्णमामयास्त्यतिशिष्टपुरोडाशावसद्धेव्वाग्ने- ५०४ । द यादियागेषु साचात्साधनत्वेन निषेधमलभमाना ब्रीहिभियंजेतेति याग-षाधनभावेन सुनवीहयः पुरोडाशद्वारा तदन्वयं लभन्ते तेषां पुरोडाशसा-धनत्वातन्दुनादिद्वारेति तन्दुनभावनापेचिता ऽवचातः प्रत्यचविधिमन-पेच्य सामर्थ्यादेव प्राप्नोति किं तु नखविदलनादिकमपि तद्वदेव पर्चे प्राप्नु-यादिति सामर्थ्यादवघातस्य प्राप्तिः सार्विचिक्री न भवेत् । अतस्तत्सार्विचिक्र-त्विभिद्धये नियमविधिराश्रीयतइत्यर्थः । इमामगृभ्णन्निति । अग्निचयने श्रवरशनाग्रहणं गर्दभरशनाग्रहणं चानुष्ठेयम् । श्रतस्तत्प्रकरणाम्बातस्य इमामगृभ्णितिति मन्त्रस्य रशनायहणप्रकाशनसामर्थ्यह्रपाल्लिङ्गाद् उभयवापि वि नियोगप्राप्नाविमामगृभ्णन् रशनामृतस्येत्यश्वाभिधानीमादत्तदति परिसं-ख्याविधिर्गर्देभरशनाग्रहणाद् मन्त्रव्यावर्तनफलं स्वीक्रियतइत्यथे: । यदापि नियमविधावि नखविदलनादिनिवृत्तिरस्ति तथाप्यवघाताप्राप्नांशपरिपूर्गो कृते तिज्ञक्तिभेवतीति प्रायमिकत्वाद् विधेयगतत्वेन प्रत्यापज्ञत्वात्प्राप्नांश-परिपूरणं तत्र फलम् । इतरिनवृत्तिरानुषङ्गिकी परिसंख्यायां तु द्वयारिष नि-त्यप्राप्नेरप्राप्नांशपरिपूरणासंभवादितरनिवृत्तिरेव फलमन्ययागान्ययागव्यवच्छे-दहृपप्रलाभ्यां नियमपरिसंख्ययोभेदः ।

न त्विति । ननु यथा प्रसिद्धयोनियमपरिसङ्क्षेगदाहरणयोविकल्प- ११ । १२ समुच्चयाभ्यां प्राप्नवदुषायान्तरमस्ति नैवमचोषायान्तरं संभवतीत्यनेन ग्रन्थेनेा-च्यते । नैतद्युत्तम् । नियमविधे। यथावघातप्रतिद्वन्द्विनखविदलनमुषायान्तः

रमस्ति नैवमिमामगृभगित्रति मन्त्रस्य प्रतिद्वन्द्विरशनाप्रकाशने।पायान्तरमस्ति किं तु मन्त्रप्रकाश्यमध्वरश्चाग्रहणप्रतिद्वन्द्वि गर्दभरशनाग्रहणमुपायान्तरमेः वास्ति । त्रतः प्रकृते उपायान्तरसंभवे उदाहृतपरिसंख्याविधेर्व्यानरेकदू-ष्ट्रान्तता न घटतइति चेत् । सत्यम् । उपायोपेयसाधारग्येन निवर्त्तनीयप्रति-द्वन्द्विसंभवमाचे व्यतिरेक्षदृष्टान्तता विविचतिति न देषः । उपायान्तरपरि-संख्यायां तु गृहमेधीयाज्यभागविधानमुदाहरग्रम् । तद्वि गृहमेधीयापेचिता-खग्डेापकारे।पायत्वेनाज्यभागद्वयतदितराङ्गकलापया: प्राप्नावितराङ्गकलापव्या-वर्तनं फलम् । ननु च ब्रह्मषाचात्कारव्यकावुपायान्तरासंभवादित्यादिशङ्काप-रिहारयन्थयोर्नियमविध्युपपादनार्थता प्रतीयते तचे।पायान्तरप्राप्ने। हि निय-र्माविधिः । न च ब्रह्मसाचात्कारे वेदान्तयवगादिव्यतिरेकेगो।पायान्तरमस्ति । त्रतस्तच विधिमभ्यपगच्छता ऽपूर्वविधिरास्येय इति शङ्का विशिष्य गृहीत-कार्यकारग्रभावस्योपायान्तरस्याभावे ऽपि साचात्कारयायसूच्यार्थविषयकशा-स्त्रयवणादिकं तत्साचात्कारकारणमिनि तत्र शास्त्रयवणादिषु सामान्यतः कार्यकारग्रभावग्रहेग क्रोडीकृतं पुराग्रथवगादिकमप्युपायान्तरमस्तीति नियः मविधिर्युक्तः । सामान्यकायंकारग्रभावग्रहमूलप्राप्तिमाचमेव नियमित्रधावुषयु-च्यते यथा उवघातादाविति परिहारश्च वर्णित इति प्रतीयते । नैतद्यः त्तम् । न ह्यच नियमविध्युपपादनं प्रस्तुतं पूर्वे।तरयन्यये।स्तविराकरणार्थ-त्वात् । न चाचार्यैः प्रदर्शिता नियमविधिपद्या ऽपि पाविकापायान्तरप्राप्निः युक्तः किं तु ऋतुगमनादिनियमविधिवत्पाचिकाप्राप्रियुक्तः । न चेमे। शङ्कापरिहारग्रन्थौ नियमविध्युपपादनमनपेत्त्य केवलमपूर्वविध्यभावे।पपा-दनपरतया ये।जयितुं शक्यो । कथम् । शङ्का तावदपूर्वविध्युपपादनविषयतया ये।जयितुं न शक्या । न ह्युणयान्तराऽसंभवः साचादपूर्वविधित्वे हेतुः । पश्वादिषूपायान्तरसंभवे ऽपि चित्रया यजेत पशुकाम इत्यादीनामपूर्वविधि-त्वदर्शनात् । प्रयाजादिजन्ये।पकारेषूपायान्तराऽसंभवे ऽपि प्रयाजे कृष्णालं जुहोतीत्यादीनां प्रयाजादांशे ऋनुवादत्वदर्शनाच्च । तथा परिहारे। ऽप्यपूर्ववि-ध्यभावापपादनविषयतया याजियितुं न शक्यः । न हि परिहारयन्येन वेदान्तश्रवणादेरपूर्वविधिविराधी मानान्तरसिद्धः कार्यकारणमावा ऽभिधीयते किं तु तत्प्रतिद्वन्द्विन उपायान्तरस्य इतरथेत्यादियन्थे उपायान्तराऽपरिज्ञाः

नादता हेतुना तथा तदाशयस्मु शैक्षरणादिति । तस्मादिमी शङ्कापरिहारय-न्यावनुनिताकिति चेत् । उच्यते । ब्रह्मशाचात्कारे वेदान्तश्रवणादिकं कारण-मिति विशिष्य तयाः कार्यकरणभावयाहकमुपायान्तरं मानान्तरं नास्ति । अतो मानान्तराप्राप्रकार्यकारणभावविषयत्वापूर्वविधिः श्रवणादिष्वङ्गीकतेव्य हित शङ्कार्थः । विशिष्यकार्यकारणभावयाहकाभावे ऽपि सामान्यतः सावात्कारयोग्यस्य बहुशः श्रवणमननादिभिनिद्धारितस्वकृषस्य विरन्तनाभ्यस्तं ध्यानं मानसे तत्साचात्कारे कारणमिति कामिनीभावनातत्साचात्कारयोगृहीतः कार्यकारणभावे। ऽस्ति । अतो नापूर्वविधेरवकाशः । सामान्यतः कार्यकार-णभावयहो ऽप्यपूर्वविधिविरीधीत्यन्ययानियम्यावधातव्यक्तिसध्यापूर्वीयत्वर्णकायः विद्यन्तरमवकाशः कारणत्वेन एवेणः तस्यान्तरमवकाशः कारणत्वेन प्रवेशः तस्यापित्वानान्मानान्तरेण चानाभावादपूर्वविधिः स्यादिति परिस्हारार्थः ।

सर्वमानेति । द्रष्ट्रच्य इति हि दर्शनहृषं फलमिहाश्वितम् । तच्च ५०५ । १ सर्वेषां प्रमाणानां साधारणं फलम् । ऋतः सर्वेषु प्रमाणेव्वात्मदर्शनफनार्थ-मिन्यमेन प्रसत्तेषु वेदान्त एव तच प्रमाणिमिति नियमनाय श्रोतच्य इत्य-नेन वेदान्तश्वणमाहेत्यर्थः । सन्निधानादेवेति । योग्यतावणादित्यर्थः । वेदान्तैऋवेद्ये ब्रह्मात्मेकत्वे तदितिरिक्तप्रमाणानां योग्यतया निवृत्ता वेदान्त-श्वणनियमः स्वयमेव लभ्यते तद्यं श्रोतच्य इत्यनेनानुवदन्तीति वार्ति-कार्य इति तात्पर्यम् । तचानुपपन्नमिति । यदि बाल्यप्रधानमाश्रमान्तर-मिष भवेत् तदा तदनुषपन्नं स्याद् श्रतस्तथाभूतमाश्रमान्तरं नास्तीत्यर्थः । वैखानसा इति । उक्तं महाभारते ।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिचुकः । चत्वार आश्रमाः प्रोक्ता मकैकस्तु चतुर्विधः ॥ इति ।

तत्र गायच्यादये। ब्रह्मचारिभेदा: । वार्तावृत्तय: शालीनवृतये। या-यावरा घेरिसंन्यासिकाश्चेति गृहस्यभेदा: । वैखानसाद्या वनस्यभेदा: । सुटीचकवहूदकहंसपरमहंसा यितभेदा: ॥

^{*} भत्र चतुर्वेशं सहकार्यान्तरविष्यधिकर्णं पूर्णम्।

भु०५ । १२

ञ्जनाविष्कुर्वज्ञन्वयात्॥ ५०॥

शेषिविध्यनुग्रहणमिति । बाल्यं तार्वाद्वयाशेषत्वेन विधीयते विद्या च कामचारादिभ्या निवृत्तेनैव नभ्यते नाविष्रता दुश्चरितादित्यादिश्रुते:। श्रनन्यव्यापारत्वस्य विद्याभ्यासेनापेचितत्वाच्च । शेषिविरोधेन च शेषा याह्य:। स्रत एव यदा यूपार्थ तनुरेव खदिरो लब्ध: तच तचणादी कृते स्रतिक-नीयस्वप्राप्ट्या पश्वनपक्रमगाप्रयोजनकं पशुनियोजनायं यूपद्रव्यं न संभवति चेत् तचगादित्यागा द्रव्यसंस्कारविरे। चे द्रव्यं तदर्थत्वा *दिति पूर्वतन्त्राचि-करणे निर्णीत: । यदैवं शेविविरेश्चे क्रृप्रस्यापि शेवस्य त्यागः तदा किमु वक्तव्यम् इह तद्विरोधी बाल्यशब्दस्य संभाविताधीन्तरस्यार्थत्वेन न ग्राह्म इत्यवेति भावः । ननु शास्त्रान्तरबाधनमपरं कारणमित्येतदयुक्तं क्रत्वर्थपु-रुषार्थतया विषयभेदाण्तेः । न च विषयभेदेनाविरोधे ऽपि बाल्यवामदेव्यो-पासकादिषु क्र्रप्रसंकाचस्य नियमविधायिन: सामान्यशास्त्रस्येव संकोचानी-चित्यात् 🔐 विशेषशास्त्राऽसंकीचाय सामान्यशास्त्रस्यैव संकीचनस्यान्यच क्रुपत्वाच्च । तथा हि द्वादशाहे संस्थिते षडहे मध्वाशयेद् घृतं वेति सः-ন্বিলা वैक्रल्पिकं मध्वशनं विहितं द्वादशाहः सवाहीनाभयात्मकः सवे यज्ञ-माना एव चित्विज: यजमानानां ब्रह्मचर्यविधानाद् ब्रह्मचर्य्यशब्दार्थस्य वेदाध्ययनस्याधीतवेदेषु दीवितेषु विधानाऽयागेन ब्रह्मचर्य्यशब्दस्य तदु-मेलचकतया तदुमान्तर्गता मध्वशननिषेधा उपि तेषां सामान्यतः प्राप्तः । तच यदापि सामान्यशास्त्राबाधाय मध्वशनस्याहीनद्वादशाहविषयतया संकोच: कल्पयितुं शक्यते तथापि शेषशास्त्रस्य लचग्रपतिपदोक्तन्यायेन बलवत्त्वादेतदनुसारेण सामान्यशास्त्रस्यैव ज्यातिष्ट्रामादंतिदेशप्राप्रस्य विशे-षशास्त्रानुसारेण मध्वशनव्यतिरिक्तेषु संकोचन्यायेन बलवत्वाद् ये। मधुन दोचिता ब्रह्मचारित्वा†दिति पूर्वतन्त्राधिकरणे निर्णोतः । तस्माद् सामान्य-शास्त्राबाधनमपरं कारगं भवितुं नार्हतीति चेत् सत्यम्। शेष्यनुग्रहेण कारगेन सिद्धस्यार्थस्यानुषङ्गिकं प्रयोजनं कारणान्तरत्वेन व्यपितृष्टमिति न देशि: । तदेतच्छास्त्रान्तरबाधनमेवं सति न भविष्यतीत्युक्तिभङ्गा सूचितम्‡॥

^{*} जै॰ सू॰ श्र॰ हपा॰ इसू॰ ३८। † जै॰ सू॰ श्र॰ ९० पा॰ हसू॰ ३२। ‡ श्रन पञ्चदशं सनाविष्काराधिकारणं पूर्णम्।

ऐहिकमप्यप्रस्तृतप्रतिबन्धे तद्वर्शनात् ॥ ५१॥ ५०६ । १

अवणादिघटकत्वादिति। विविदिषोत्पादनद्वारिति शेषः। विद्यया **ऽवरयं भाव्यमिति ।** यदि विद्या यज्ञादिफलं स्थानदा चित्रादिफलवत्कदा चिदामुष्मिक्यपि भवेद् न त्वेतदस्ति । यज्ञादीनां विविदिषामाचेण चारितार्थ्यात्। श्रतः श्रवणादिषु सत्सु विद्यया ऽवश्यं भाव्यं चतुरादित्र्यापारेषु सत्सु घटा-दिप्रमित्येवेति भाव: । न चैवमिति । प्रतिबन्धक्रनिरासायै खलु यञ्चादि-कमनुष्ठीयते । यदि तस्यापि प्रतिबन्धनिवृत्तिहृपस्वफलजनने प्रतिबन्धान्तरं स्यातदा तन्निवृत्यर्थमपि कर्मान्तरमनुष्ठेयं भवेत् । एवं तत्तत्प्रतिबन्धकनि-बृत्यर्थमपीत्यनवस्येत्यर्थः । इदमुवलवर्णं सत्यामपि विविदिषायां विद्यादा-त्पतिप्रतिवन्धककर्मनिरामाथै कर्मानुष्ठेयं स्वादिति ब्रह्मसंस्थायाः कदापि नावकाशः स्यादित्यिव दे।षे। द्रष्ट्रयः । यज्ञादिपतिवन्धकस्येति । यज्ञादीनां विविदिषायवग्रमनननिदिध्यासनसाचात्कारागां च प्रतिबन्धकानि दुरितानि संभाव्यन्ते तच यज्ञादिवित्वन्यकानि भागेकनाश्यानीति भागेन तत्त्वये सत्येव यज्ञाद्यनुष्ठानं विविदिषादिप्रतिबन्धकानि तु प्रारब्धान्यप्रारब्धानि च द्विविधानि यस्य सर्वे। एयपि प्रारब्धानि तस्य सत्यपि यज्ञाद्यनुष्ठाने भागेन प्रारब्धचये सति जन्मान्तरएव विविदिषादिप्रवृत्ति:। यस्य सर्वाख्यव्यप्रार-ब्यानि तस्य तेषां यज्ञादिभिः चयाद् यज्ञाद्यनुष्ठानजन्मन्येव यस्य तु श्रव-गादिषु पूर्वस्याप्रारच्यानि प्रतिबन्धंकान्युत्तरस्य प्रारच्यानि तस्य प्रतिबन्धंकर-हितं पूर्वपूर्वविविदिषाजन्यमुत्पदाते प्रारब्धप्रतिबन्धमुत्तरातरं जन्मान्तरइति विवेक: । एवं च विविदिषन्तिवाक्यानुसारेण कर्मणां विविदिषासाधनत्ववत्क-षाये कर्मिभः पक्के तते। ज्ञानं प्रवर्तते इत्यादिवचनानुषारेणाऽविद्यादिप्रति-बन्धककमेचयमाधनत्वमयाचार्यागामभिमतमिति द्रष्ट्रव्यम् । प्रारभवी-येति । ऋत एव हि केषां चिदेवेह जन्मनि गान्धर्वशास्त्रविचारे पूर्वजन्म-वासनावशाज् भटिति षड्जादिसाचात्कारे। जायते नान्येषामिति भावः ।

देवताप्रणिधानाचपेचायारचेति।

वीणावादनतत्त्वज्ञः युतिजातिविशारदः । तालज्ञश्चाप्रयासेन मेाचमार्गे निगच्छति ॥ 99 1 95

वेदान्तक्रल्पतस्परिमले [ऋ ३ पा ४ ऋथि १०

गीतिचो यदि योगेन नाप्नोति परमां गतिम् । सद्रस्यानुचरा भूत्वा तेनैव सह मौदते ॥

इति याच्चवल्क्यस्मृतै। संगीतचानस्य महाप्रलत्वस्मरणाद् देवता-प्रसादापेचितेति भाव:*॥

भु०ई । २४

यवं मुक्तिपालानियमस्तदवस्थावधृतेस्तदव-स्थावधृतेः ॥ ५२॥

तथा च सातिशयत्वादिति । निकृष्टाऽपकृष्ट्रसाधनसाध्यत्वन सातिशयत्वसिद्धाः ततः क्रमेसाध्यत्वमि विद्याया अनुमीयतद्दत्यथः । तत्र तत्र साधकेष्विति । श्रृत्युपपत्तिष्ठपेषु बहुषु साधकेषु सित्स्वत्यथः । तिहि स एवास्त्विति । निवन्येविशेषोपाधिक एव विशेषा ऽस्त्वित्यथः । यद्द्वारेत्यादिपाठे निवन्येविशेषद्वारेत्यथः । तिहे सावशेष एवास्त्वित्यपि पाठान्तरम् । पाठचये ऽपि फलत एको ऽथः । अविद्याकामकर्मादिचये सावशेषे अवशिष्टावरणतारतम्येन सूद्मसूद्मतरसूद्मतमवस्त्रावृतरिवमण्डन्त्रप्रकाशवद् ब्रह्मानन्दप्रकाशो मे।चे तारतम्येन भवेदिति सातिशयो मे।च इति पाठचयेषि तात्पर्यम् । टीकायामप्ययम्ये येन तिद्वशेषान्मोचो विशेषवान् भवन्तीति वाक्येन स्फुटीकृतः । अविशेषसंभवादिति । तथा चाप्रयोजकमनुमान्नित्यथः । ननु स्नेहवर्त्युत्कर्षापक्षेपभ्यां दीपज्वालाया इव श्रवणाद्युत्कर्षापक्षेपभ्यां विशेषः स्यात् सा ऽव हेतुरित्याश-द्वावक्षेपभ्यां विद्यायाः स्वद्धपते। ऽपि विशेषः स्यात् सा ऽव हेतुरित्याश-द्वावह स्वाभाविकस्त्विति । भेदाभेदिवकल्पासहत्विमिति । अदैत-श्रतिशिधाद् न भिन्ना विशेषाः । अभेदे च ते न परस्परविलवणाः । भेदा-भेदपचश्च द्वषित इति भावः ।

इति म्रीमद्वरद्वाजनुलजलिकोस्तुभमीमदद्वेतिवद्याचार्यविश्वजिद्याजिम्रीरङ्गराजाध्वरिवरसूनेारप्ययदीचितस्य कृती वेदान्तनल्यतन्परिमले तृतीयस्याध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

समाप्तरचार्यं साधनाख्यस्तृतीया ऽध्यायः।

^{*} श्रत्र बेडिशं ऐहिकाधिकरणं पूर्णम्।

[†] अत्र सप्तदशं मुक्तिफलाधिकरणं पूर्णम् ।

वेदान्तकल्पतरुपरिमले चतुर्धे। ऽध्यायः।

आवृत्तिरसकृदुपदेशात्॥ १॥

405 1 9

अध्यायविषययोरिति। मुख्यक्रमेण वाङ्गानां तदर्थत्वादिति न्यायात्* प्रधानक्रमेणाङ्गक्रमीचित्यादिति भावः । अद्ब्हार्थत्वं विधेयत्वं च मन्यतइति । तथाऽभिमानस्य मूलमनाहेत्यादिशङ्काभाध्यतद्वाख्याः-नाभ्यां स्पष्टोभविष्यतीत्यच न विवृतम् । अहं ग्रहोपास्तिष्वप्याहेति । तास्वय्यपाविधात्वयान्तं नीतावृत्तिमःचं कर्तव्यं न तु यावत्फलादयमावृत्तिः दृष्टफलत्वाभावादिति भाव: । विद्योत्यादिविरोधिषरतयेत्यनेनानिवीच्यत्वं --विविवितिमिति भाव: । इत्रकार उपीर नेतव्य इत्युक्तम् । उपरिनीतस्य त-स्यार्थे। विवरणत्रःक्ये तद्वदित्यनेन दर्शितः । लेक्किसद्धत्वादित्यन्तः से।पण-दनापमानवाक्यार्थेप्रदर्शनाय तदनन्तरमुपमानापमेयभावद्यातनं तद्वनयेत्याः दिशब्दवदिवशब्देन व्युत्पतिसिद्धं न भवतीति तद्वदित्यनेनेवशब्दे। विवृत: । शब्दार्थसाचात्कारत्वादिति । यस्य स्यावृद्धिति वचनेक्तिहिकसगुग्रेश्वर-साचात्कारवत् पर्य्यङ्कविद्यादिप्रतिपन्नपारचिकतत्साचात्कारे। ऽपि परम्परया श्रवगाद्यभ्यामम्।थ्यः यागादिजन्यस्वर्गमुखादिविषयणारिकमाचात्कारः स्वर्ग-कामादिवाक्य। घेविषयकापातन्यायविचारजन्यतिवर्णययागादिसङ्कल्पकालकर्ते-व्यफलध्यानसाध्यः एवं तपः प्रभावस्त्रियादितदेवतासाचात्कारे। ऽपीति न क्वापि व्यभिचार:।

अवणादीति । श्रवणादेरनेकस्यापायस्य दृष्टार्थत्वेनार्थप्राप्रस्योपदे- ५०६ । २ थे। ऽनुवादः/तस्माल्लिङ्गाद् दृष्टुफलसिद्धये प्रत्येक्षमपि श्रवणादिवयमभ्यसनीयं ह मननिर्वर्तनीयबहुविधसंदेहकन्दलदलनपर्य्यन्तं । साङ्गाध्ययनवतः पदार्थः वाक्यार्थेव्युत्पतिलभ्यापातच्चानरूपत्रवगाभ्यासः । तदुपस्थितसक्रलसंदेहनिवृ त्तये मननाभ्यासः । साचात्कारादयाय निदिध्यासनाभ्यासः । प्रत्येकमाविद्यः

^{*} जी: सूर श्रमः ध पार १ सूर १४।

मभ्यमनीयमिति पाठे शाविद्यमित्येकैकाभ्यामस्य नाविधिनिदेशः किं तु स्वस्वा-वान्तरफलपर्यन्तानां श्रवणादीनामभ्यामपरम्परायाः । श्रमुषङ्ग एव स्यादि-ति । श्रमुषङ्गमानं भवित न त्वध्याहारगैरिवमित्यथिः । यद्यपि प्रत्ययस्यात्म-भूतं परं ब्रह्म समर्णयतीति भाष्ये कस्यात्मभूतमित्याकाङ्वायामन्तरङ्गत्वात्स्व-स्यात्मभूतमिति लभ्यते न तु जीवस्येति बहिरङ्गत्वाद् यथा उन्तर्द्धे। येना-दर्शनमिन्छतीति सूने कस्यादर्शनमित्याकाङ्वायामात्मन इति लभ्यते न त्वन्य-स्येतीत्येव वक्तं शक्यं तथापि शावद्याकाङ्का शब्देनैव पूर्यत्वति न्यायात् प्रत्ययस्येति शब्देनाकाङ्कापूरणं काय स तु नाध्याहारः किं तु प्रत्ययस्य विभक्तिविपरिणामेनानुषङ्ग इति भावः । शाब्दिकवद् विभक्तिवचनविपरिणा-मेनानुषङ्गमिनन्छतां संयजनैरङ्गानीत्यन गन्छतामित्यध्याहारं वदतां मोमां-सकानां त्वनाप्यध्याहार एव तथापि बृद्धिद्विहितप्रत्ययविषयशब्दाध्याहाराः दत्तथाभूतजीवविषयशब्दाध्याहारे। गुरुरिति मीमांसकमते विशेषे। द्रष्ट्याः ।

ध्रु० । रह

अपरे च्यमोत्पत्त्यर्थं इति । श्रवणादे रावत्यं मानस्यापरे विप्रमीत्यादक्तत्वं न पंभवित श्रतस्तस्याऽदृष्टद्वारा मुन्यये त्वमेव वाच्यमिति ये। ऽयं
श्रवणादे रूपयोगमङ्गी कृत्य तस्य दृष्टार्थे त्वां मेनावृन्याचेपः कृतः प तस्यापरे विद्वाचि । पि दृष्टार्थे त्वामावहेतः क्रमेण टीकायां निराक्रियतहित
भावः । पारमार्थिकप्रतियोगिकहित । श्रव प्रतियोग्यमावयोः पारमार्थेकत्वं व्यावहारिकप्रमानपत्ताकत्वं प्रतियोगिप्रमाण्यामेविति श्रव हृपयाहकं चतुरेवाचानुषे वायाविष हृपामावयाहकम् । श्रत एव तव हृपामावयहणे चनुव्यापारापेचेत्यादि तचेदाहरणं के चन मन्यन्ते वैशेषिकादयः । स्वमते हृपाद्यमावा
उनुपलिब्यप्रमाणगम्यः । नानुपलिब्यमावं प्रमाणं किं तु योग्यानुपलिब्यः
योग्यता च प्रतियोगिपत्विदिशिता । श्रता योग्यतावटकत्त्वेन चनुर्व्यापरापेचा। तदमावे ह्यिकरणे प्रतियोगिपत्वे ऽपि तद्विषयप्रमाणभावेन पंभवन्त्यनुपलिब्यः प्रतियोगिपत्विदिशिचनो न स्यात् । उपाधीनां मिथ्यात्वादिति । ननु मिथ्यात्विमह व्यावहारिकत्वं न तु प्रातिभाषिकत्वं ब्रह्मण्युपास्यगुणानां श्रत्युपिदृष्टानां व्यावहारिकत्वात्। उक्तं हि व्यतिहाराधिकरण्य*भा-

^{*} व्याः सूः श्रः ३ याः ३ सूः ३० ।

ष्ये यथा ध्यानार्थे ऽपि सत्यकामादिगुगोपदेशे तद्गुग ईश्वर: प्रसिध्यतीति। तस्मात्कुम्भाभाववदुपाधीनामभावस्यापि व्यावहारिकत्वात् तद्वदेवाधिकरयाति भिदान्तइति युक्तमिति चेदुच्यते । यच यत्यतीतं व्यावहारिकं तता उन्यच तदमावा भवतु व्यावहारिकः यच प्रतीतं तचैव तदमावा न व्यावहारिका भवितुमर्हति समानसनाकायाभावयाविरोधात्। न च ब्रह्मएयथात श्रादेशे। नेति नेतीत्यादिश्रुतिभिरुपदिष्टा उपाधीनामभावाः प्रातिभाषिका भवितु-मर्हन्ति अतः पारमार्थिकाः सन्तः ते न ब्रह्मणा भिन्ना अद्वेतप्रतिविरे।-थात् । न च भावाद्वेतेष्टिः । ऋद्वैतश्रुतिसङ्कोचक्रल्पनाये।गात् । ऋन्यथा भेदवादिनां क्रिष्टाद्वैतदुतियाजनाय। ऋषि प्रवेशापत्ते: । उत्तं हि वार्तिके ।

> प्रसरं न लभन्ते हि यावत् क्व चन मर्कटा:। नाभिद्रवन्ति ते तावित्यशाचा वा स्वगे।चरे ॥ इति ।

तस्मादुणधीनां मिथ्यात्वात् तदभावा ऽधिकरणातिरिक्तो नास्तीति युक्तमेव । नास्ति वास्तव इति वास्तवविशेषणम् अधिकरणातिरेकाभ्यु ५११ । १५ पगमे वास्तवत्वमप्युपाध्यभावानामुक्तन्यायेनाभ्युपगन्तद्यं न च तदभ्यु पगमे। युक्तः ऋद्वेतश्रुतिविरोधादिति सूचनार्थम्। न चैवमिति। ब्रह्मस्य-तिरिक्ताभावनिषेधे ऽतिरिक्तः स्थातस्याप्यतिरेक्षनिषेधे तस्यापि तिव्वषेधे। वक्त-व्य इत्येवमित्यनवस्थेत्यर्थः । ऋद्वैतयत्यविरोधायाधिकरणं ब्रह्मैव सर्वाभा-वव्यवहारालम्बनमित्यभ्युपगमान्नानवस्येति परिहाराभिप्रायः । स्वप्रकाशानुभ-वस्य केनाभिभवा वेदान्तैर्व्यदसनीय: कथं च तेषां तह्यदसनसामर्थ्यमित्या-काङ्घायामाह एतदुक्तं भवतीति । यथा देवद्त्ते तदैक्ये चेति। एवमेव ब्रह्मणि तदभेदे च भासमाने ऽपि ब्रह्मान्यज् जीवे। उन्य इत्यारीपस्तत्व-मसीति वेदान्तवाक्यश्रवणादिमूलकमभेदशाचात्कारं विना न निवर्ततहत्यर्थः। ननु दृष्टान्ते दार्ष्टान्तिके च पूर्वापरज्ञानयार्विषयकृतिविषेषामावे केन विशेषे-गोतरज्ञानस्य भेटभ्रमनिवर्नेकत्वं न पूर्वज्ञानस्येति चेत् से। ऽयमिति तत्व-मिति च पदयोवीचार्थेरूपं यद्धमेद्वयं तत्परामर्थेरूपकारणविशेषाधीनेन चा-नस्य ज्ञेयेन सह स्वह्र्णसंबन्यविशेषेण एवं स्वह्र्णसंबन्यविशेषकृतमेवाभिः ज्ञाप्रत्यभिज्ञयोर्जे के वैनचर्यं न तु विषयविशेषकृतं यथा विशेषणविशेष्यतः त्संबन्धगे।चरात्समूहालम्बनाद्विशिष्टज्ञानस्य विशेषग्रज्ञानादिकारग्रविशेषाधी-

नस्बद्धपर्धंबन्धविशेषकृतमेव वैलचग्यं यथा वा परस्परविहदुस्थागु चपुरु-षत्ववानयमित्याहार्यनिश्चयात्संशयस्य देविष्ह्पकारणविशेवाधीनस्वह्र्पसंबः **५११** । २८ न्धविशेषकृतमेव वैलवण्यम् । तन्त्रीकएठोद्भवा इति । वीणागाने तन्त्र्य-द्ववाः शारीरगाने कण्ठोद्ववाश्च तत्तत्स्थानविशेषप्रभवमन्द्रमध्यमतारध्वनी-नामनुरगानकृषा नादाः स्वरास्तेषां षड्जादीनां स्वरागां षड्जादिप्रधानाः षड्जगमा मध्यमगमा गान्धारग्राम इति चिविधा ग्रामास्तेषां ग्रामागामारा-हावरे।हरूपाः प्रत्येकं सप्रविधा एकविंशतिमूर्च्छनाः । स्वेनैवेति । टीकाकृता कृतैवेत्यर्थः । यदापि टीकायां वाक्यात् साचात्कारात्पितप्रकारस्योपपादि-तत्वे ऽपि भाष्ये तदुषपादनमिदानीं क्रियतहिन वर्त्तुं शक्यं तथाप्ययमिन मन्धिरित्यारभ्य पूर्वभाष्यतात्पर्यविषयत्वेनैव टीकायां तदुषपादनस्य कृत-त्वाद् उत्तरभाष्याचेत्वं तस्यायुक्तमिति टीकाकारहृदयमित्याशय: । एता-वानाच्चेप इति । साचात्कारकरणस्यान्तः करणस्य भावनाप्रचयसाहित्याथै धात्वर्थै।पसंगृहीतावृतिगर्भस्य निदिध्यासनस्येव बहुविधशङ्कानिराक्ररणार्थे मननस्येव च साङ्गाध्ययनजन्यवाक्यार्थेज्ञानरूपस्य श्रवणस्यावृतेनीस्त्युप-योगः। न च मननिवर्तनीयबहुविधगङ्कीत्यानाय प्रवण वृत्यपेचा ऽस्तीति वाच्यम् । सकृच्छवगो ऽपि धीमतः सकलगङ्कोत्यितेः स्वतस्तृत्यानामावे Sपि न्यायविचारशास्त्रनिबन्धतयैव विचारकाले तदुन्थितिसंभवात् । ऋन्य-थे।त्यापनीयशङ्केयत्तानवगमेन श्रवणापर्य्यवसानप्रसङ्गात् । कैमुतिकन्याया न हि दृष्टे उनुपपन्नं नामेति भाष्यान प्रतीयत इत्याशङ्क्य तट्टाष्याह्रढं करोति वाक्याभ्यासानभ्यासाभ्यामिति । यद्वाक्यं तत्वमसीतिवदभ्यस्तं यद्वा नाभ्यस्तं तेन द्विविधेनाि वाक्येन यदेकजातीयं पराचचानं जायते तस्मि-न्नपीत्यर्थः । वाक्याभ्यासाभ्यासाभ्यामिति पाठे वाक्यमभ्यस्तमभ्यासा वाक्या-भ्यासः ताभ्यामित्यर्थः ।

ध्रुच । १२

परोत्तार्थस्येत्यर्थ इति । न हि दृष्ट्रइति भाष्ये दृष्ट्रइत्यस्य विवर-गार्थे दृश्यन्ते हीति भाष्यं कैमृतिकन्यायप्रदर्शनाय परोत्तार्थवाक्ये आवृत्यपे-चामद्वावप्रदर्शनपरं न तु शास्त्रमाचे अपरोत्तार्थवाक्यआवृत्यपेत्ताया इदानीं साध्यमानत्वात् । अतो दृश्यन्ते हीत्यादिभाष्यार्थानुवादके तदेवं वाक्यमा-वस्येति टीकायन्ये वाक्यपदं परोत्तार्थकवाक्यपरं व्याख्येयमिति भावः ।

अवेदं वक्तव्यम् । वाक्यादिहापरे। चचानात्पतिने साचाद्विविता येन वा-क्यात्सार्वेचिकस्वारिकशाब्द ज्ञानात्पतावप्यावृत्यपेवायां क्याचित्कयत्रसाध्या-परे।चज्ञाने।त्यते। तदपेजा ऽस्तीनि किमु वक्तत्र्यमित्युचेतावि कि वाक्ये शाब्दज्ञानमुत्याद्ये।परते निदिध्यासनहृषभावनाप्रक्रवादेव तदुत्पितर-भिमता तच वाक्यस्य परम्परये।पये।गमाचम् । ऋतस्तच वाक्यश्रवणावृत्तेर-येवा कैमुतिक न्यायात्र विध्यति श्रावृतादनावृताद्वा गब्दादर्थबाधे दृढे जाते तत्प्रेचाप्रवृत्तमावनाप्रकर्षेणैव साचात्कारात्पत्तिसंभवात् । ऋष्यरायमाणा का चिदमुण्य कन्यका ऽस्ति तवैवाहेत्याप्रवाक्यात् सकृच्छ्रतवते। ऽपि तां लिए-से।भावनाप्रकर्षात् तत्साचात्कारादयात् । न च टीकायां वाक्यादपराचचा-नात्पते। कैमुतिकन्यायस्य प्रदर्शनमस्ति । शाब्दज्ञाने ऽपि वाक्यश्रवणावृत्या व्यक्तितारतम्यं दृश्यते निदिध्यासनहृपप्रत्ययप्रवाहे साचात्कारात्पत्यर्थे तद्वे-द्यपरमकाष्ट्रापेचितं व्यक्तितारतम्यं ध्यानावृत्या भवतीति किमु वक्तव्यमि-त्येव तत्र कैमुतिकन्याये।पन्यामात् । नन्वनूदितश्रवणावृतिवैपर्ध्यशङ्काप-रिहाराथे भाष्यतात्पर्यक्रथनाथे प्रवृतस्य टीकायन्यस्य ध्यानावृत्तिसमर्थना-र्थत्वं न युक्तमिति स्वरसतः प्रतीयमानस्तदर्थे त्राचार्येस्त्यक्त इति चेतर्हि न हि दृष्ट्रइत्यादिभाव्यस्वारस्यमवलम्ब्य लाकदृष्ट्यनुसारेण तत्व्वमसीत्यादिवा-क्यजन्यशाब्दज्ञानार्थमेवावृत्यपेचा समर्थ्यतां लोके ऽपि हि गहनवाक्येषु वाक्याधेबाथार्थम् आवृत्यपेचा दृष्टा तथेहापि तदपेचेति । एवं च यस्य साङ्गाध्ययनवते। यावतस्वव्यत्पितवलमूलेन पुनः पुनरावृत्या वाक्याथी-वधारणे जाते प्राग्भवीयश्रवणमननवासनाद्वोधेनाशङ्कानुदयः तस्य न मन-नापेचा यस्य तदभावेन शङ्कोदयस्तस्य तिव्वराषाय मनने प्रवृत्तिरिति दृढ-शाब्दज्ञानात्पत्यर्थमेव श्रवणावृत्तिसमर्थनं भाष्यस्यार्थे इति स्वजुरेवायं पन्याः । ननु पूर्वपचे त्रावृतावपि तदनुपपतेरिति भाळेगा वाक्यमावर्त्यमा-नमपि नापरोचचानं जनयतीति या शङ्का कृता सैवेह सिद्धान्ते ननूतां सकृ-च्छुतं चेदित्यादिभाष्येणानूदिता ऽतस्तत्परिहारयन्यस्यावृत्तेरपरेाचचानापया-गर्व तात्पर्ये वर्शनीयमिति चेद् न । पूर्वपचगतशङ्काग्रन्थस्याप्यावृत्ते: शाब्दज्ञा-नानुषये।गपरतायामेव स्वारस्यात् । ऋव।हेति पूर्वपत्तारम्भग्रन्थे ऋत्मभूतम् ति विशेषणं प्रत्ययस्यात्मभूतमित्यस्मिन्नर्थे स्वारिषकं प्रत्ययस्य सन्निहितत्वा-

दिति तत्स्वारस्यमनुस्थ्य खलु ततः प्रभृति टीकाकृता विवृतिः कृता। तचाहेति वाक्ये तथैव तद्याँ उस्तु तथा च विस्दुांशप्रहाग्या जीवेक्येन बाध्यम्
ब्रह्म निर्विशेषमिति तद्विषयायां वृत्तिसाध्यविशेषविषयत्वासंभवाद् ऋावृतिव्यर्थेति प्रथममाचेपः। ऋावृत्यभावे तद्विषयवृत्तिरेव नादीयादिति ततः सिद्धातितः शङ्का। सङ्गच्छुतान्नोदेतीति चेद् ऋावृतार्वाप नादीयादिति पुनराचेपः।
ततः शाब्दचानार्थमावृत्यनपेचायामपि साचात्कारार्थे तदपेचा उस्तीति
शङ्कातत्परिहारप्रपञ्चः। पूर्वपचावसाने उपि चानेकांशोपेतद्दत्यादियन्थेनात्मभूतमिति विशेषग्रसामर्थ्यलभ्ययुक्तिविवरग्रमिति पूर्वपचयन्यसामञ्जस्यात्।
शाब्दचानार्थमेवावृत्यपेचेति सिद्धान्तग्रन्थसामञ्जस्यान् । ऋपि च तत्त्वमसीत्येतद्वाक्यमित्यादिसमनन्तरभाष्यग्रन्थस्य शाब्दचानार्थतयेवावृत्यपेचाप्रसिपादकत्वान्च। ग्रवमित्रिष्टे भाष्यार्थे व्यक्ते उप्यर्थान्तरवर्णनम् ग्रवमिप योजवित्रां शक्यमिति ग्राढोक्तिमाचं द्रष्ट्यम्।

ध्रुर । १५

संस्पृत्विमिति । संस्षृष्ट्रशब्दे। धर्मलवकः । ततः संस्रृगानात्व-शब्दये।द्वेन्द्वसमासे सति न विद्येते संस्वृतानात्वे यये।रिति द्वन्द्वगर्भे। बहु-ब्रोहि: । पुनस्त यामू नै। पदार्थे। यस्येति बहुत्रीहिरित्यर्थ: । ऋसंसृष्टनाना-पदार्थेकमिति त्वप्रत्ययरहितपाठे त्वेक एव बहुत्रीहिः । तेन संसृष्टनानाप-दार्थरहितमित्यर्थलाभे सति विशेष्यनिषेधायागाद् विशेषग्रया: संस्रष्टनाना-त्वये। निषेथः । स रैक्को यद्वेदेति जानश्रुतै। राज्ञि राज्ञे। शयाने तस्योपरि पतत्सु इंसेषु पुरोगामिनं इंसं प्रति पश्चाद्गामिना केन चिद्धंसेन जानश्रुते-च्याति: युव्यापि दीप्यते तन्मा प्रमाङ्गीदित्युक्ते पुरागामिना च सयुग्वानं रैक्क-मिव जानयुतिमात्येति जानयुती तुच्छीकृते कथं सयुग्वा रैक्क इति पश्चा-द्वामिना रैक्स्य महिन्ति पृष्टे पुरागामिना वचनम् । यथा कृतायविजिताय अधरेया: संपतन्त्येवमेनं सबै तदिमसमेति यत्निं चित्राजा: साधु कुर्व-न्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति । ऋस्यार्थः । कृतनामा द्यते चतुरङ्कः श्रयः । तस्मै विजिताय तिसिन्विजयार्थे न्यस्ते श्रधरे न्यना श्रयाः चिद्योक्षाङ्काः चेताद्वापरकलिनामानः संपतन्ति चन्तर्भवन्ति चतुःसंख्यायां वित्वादिषंख्यान्तभावात् । एवमेनं प्रस्तुतं रैक्कं सवै तद्वत्यमाणमभिसमिति यत्निं चित्रजाः साधु कमें कुर्वन्ति सर्वप्रजासंपादाधर्मफलं सवै रैक्षधर्मफले ऽन्त भेषतीत्यर्थ: । यः रैक्वादन्येापि तद्वस्तु वेद क्रि यत्स वेद स रैक्वा यद्वेद तमपि सवे तद्वच्यमाणमभिसमेतीत्यनुषङ्गः । रैक्कादन्यस्यापि रैक्कापास्यमुपासीनस्य धर्मफले सर्वप्राणिधर्मफलमन्तर्भवतीत्यधीदयमधेः प्रदर्श्यते स रैक्का यद्वेदे-त्यादिना । यच्छब्दार्थमाह तत्प्राणतत्त्वमिति । प्राणा वाव संवर्ग इति ५१३ । १२ जानश्रते रैक्केगोपदेच्यमाणं प्रागतन्वं यद्वेदेति यच्छन्देने।कमित्यर्थः । प्राग-तत्वमिति प्रथमान्तपदम् । सर्वधर्मफलमभिसंगच्छतइति । एतमिति श्रुत्युपातं रैक्कमिवेति शेषरैक्कमिवेति सयुग्वानमिव रैक्कमात्थेति प्राचीनश्रु-तिवाक्यार्थेन संबन्धप्रदर्शनं मानुशाधीति मे इति युतै। षष्ट्यन्तस्य मामिति द्वितीयांथा दिश्वेत: । शिवय विद्यामुपादापय । शिच विद्यापादाने इति धातु: । हे पुत्रेति। ऋषी वा ऋदित्य उद्गीय इत्यादित्यदृष्ट्योद्गीये।पासनं प्रकृतं त्रचिष्ठः केषितिकरादित्यरिष्मिभेदमकृत्वा केत्रलमादित्यदृष्ट्या स्वकृतसुद्गी-घाणसनमेतम् एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेका ऽसीत्येकपुनतां देषिणा-पाद्य रक्सींस्त्वं पर्यावनीयतादिति रक्सीनादित्यं च त्वं भेदेनापास्वेति पुरं प्रत्युपिंदियेश तचार्थिषिद्धं संबोधनमध्याहृतं हे पुचेति । तकार एको लुप्तो द्रष्टव्य इति । लोषस्तन्त्रात्मनेषदेखिति छन्दः यात्मनेषदेषु विहितस्तकार-ले। यो बहुलग्रहणात्परस्मैपदे अपि क्व चिट्नवतीति भावः । पर्यावर्त्तयतादिति हेस्तातङादेशे सति हृपम्। ग्वं रिमबहुत्वदृष्टेरावृतिमन्वे।तिरन्येष्वि। वेदनेषु न्यायप्राप्रमावृतिमत्वं स्थालीपुलाकन्यायेन गमयतीति भावः* ॥

आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राह्यन्ति च॥३॥

, । २५

कस्य साचात्कारायेति । नित्यापराचा जीवः । नित्यपराचस्तता भिन्न ईश्वरः । त्रतः कस्यापि साचात्कारः प्रवणायावृत्तिसाध्या नास्ती-त्यर्थः । ॥

न प्रतीकेन हि सः॥ ४॥

ध्रुष्ठ । २१

प्रतीकेषु ब्रह्मात्मतामापादितेष्विति । द्वावेती पद्यो नामादीनां ब्रह्मदृष्टिविषयत्वात् तेषु ब्रह्माभिद्यजीवदृष्टिः कार्येत्येकः पद्यः । नामादीनां

^{*} श्रत्र प्रथमम् ग्रावृत्त्वधिकरणं पूर्णम्

[।] चत्र द्वितीयम् ग्रात्मत्वापासनाधिकरणं पूर्णस्।

ब्रह्मणश्च विकारविकारिभावेन वास्तवाभेदयन्वात् तेषु ब्रह्मदृष्टें। क्रियमाणायां ब्रह्माभिन्नजीवदृष्टिः कार्येति द्वितीयः पद्यः । प्रथमपत्रे दृष्ट्या ब्रह्माभेदाः
भूर्भः । १३ पादनं द्वितीयपत्रे विकारविकारिभावेन । सत्यमत एवेति । यतः स्वद्धपेण लये नास्त्र्यहंग्रहालम्बनम् अत एव मनआदीनां जीववदविक्ति हृष्टेणेव लय इति पूर्वपत्र्याभिप्रायं मत्वा समुद्वाव्यं निराक्षरिष्यतीत्यर्थः । नन्वथाद्वेति द्वितीयविकल्पायङ्कायाः प्रथमविकल्पयङ्काया इव कथं श्रवणेन निराकरणमित्याशङ्क्य तद्याम्प्रायमाह यदिश्चतिरिति । अर्थासिद्धमाप श्रतेयदमिमतं क वित् तत्सा श्रावयतीति दृष्टं यथा स्वस्थागृहीतया रशनया नयनासंभवाद् अर्थप्राप्रमणि रशनायहणमिमामगृभणन्नशनामृतस्येत्यश्वाभिधानीमादतदिति श्रावयति न चेह तथा नामादिषु जीवाभेददृष्टिं क चिद्रिष श्रावयतीत्यर्थः । नन्वर्थप्राप्रस्य क चन श्रवणेन भाव्यमिति नास्ति नियमः । स्रवादीनां द्रवद्रव्याद्यवदानेषु व्यवस्थितरर्थप्राप्रायाः क चिद्रिष श्रवणाभावात् ।
इत्तं हि वार्तिके ।

ययैव पाटः प्रतिपन्यपायस्तयैव सामर्थ्यमपि युत्तोनाम् ।
तेनैव चैता न समामनन्ति सहस्रभागं तु समामनेयुः ॥ इति ।
श्वतः केवलमथात्प्राप्तिपि वतुं शक्येति शङ्कां निराकरातीत्यवतारयति पत्त्वथादिति । ननु नायमतिप्रसङ्गः । श्राकाशादेः स्वरूपता विकल्पितत्वेन जीववद् ब्रह्माभेदाभावादिति शङ्कामनूदा निराकरोति जीवस्येति । ब्रह्मदृष्टिकरणादिति । भेदपचे हि ब्रह्मदृष्टिने स्याद् न त्वभेदपचे इति भावः । नन्वहं ब्रह्मास्मीत्यभिन्ने ऽपि ब्रह्मणि विरुद्धांगप्रह्माया
जीवाभेददृष्टिः क्रियते न तु ब्रह्मेव जीव इति केवलब्रह्मदृष्टिः तथेह कि न
स्यादित्याशङ्काह श्रार्थिकी हीति । प्रतीतिरित्यकर्तर च कारकदिति
कर्मणि क्रिनुप्त्ययः । श्रथात्यतीतमित्यथेः । श्रथेसिद्धमणि तदेव विधितो
ऽनुष्टेयं यदनुष्टानं विना श्रुतं न निर्वहतिः न चाच श्रुतब्रह्माभेददृष्टिविना
जीवाभेददृष्टिनिवाहोस्ति प्रत्युत स्वाभेददृष्टिवदर्थप्राप्रजीवान्तराभेददृष्टिरिण
कर्तव्या स्यादित्यतिप्रसङ्ग इत्यथेः । उक्तन्यायातिदेशेन द्वितीयपचं स्वयं

७ । १९ दूषयति ब्रह्मविकारत्वेनित । ननु ब्रह्माभेददृष्टिमूला ऽहंमतिचेपशङ्काः न
च घटादिषु तद्दृष्टिविधानमस्तीति नातिप्रसङ्ग इत्याशङ्काह तुरुपं चेति ।

ब्रह्मदृष्टिविध्यनपेवित्वाच् शङ्कायास्तन्मूलत्वमिषदुमिति भावः । सर्वस्य वाक्यजातस्य प्रपञ्चवित्यः प्रयोजनं न भवतीत्युक्तिभङ्गा क्व चिद्ववतीत्यनुमितः प्रतीयते तदनुमितस्थलं दर्शयित सर्वं खिल्वत्यादे। हीति ।
अप्रधानस्य जीवस्येति । तत्त्वमस्यादिष्वभेद एव वाक्यार्थः प्रधानभूत
इति भावः । तत्त्वमस्यादिवाक्येरेकवाक्यतायां ब्रह्मदृष्ट्युपदेशेष्वात्मदृष्टिकल्पने यदपेचितं तदध्याहारेण पूरयित कर्तृत्वादिबाधेनेति । यदपि
मना ब्रह्मत्यादे। निर्विशेषब्रह्मप्रकरणाभावे ऽपि मनःप्रभृतिषु ब्रह्मदृष्ट्यथ्या
स्वाय ब्रह्मशब्दार्थे। चातव्य इत्यसंकुचिते तद्ये चिविधपरिच्छेदराहित्यानत्भावाद् वस्त्वपरिच्छेदे।पयागिनीवाभेदावगत्येत्र कर्तृत्वादिबाध आवस्यकः तथापि प्रधानभूतोपासनाविध्यविरोध्येव ब्रह्मशब्दार्थेकदेशं जीवाभेदं
त्यक्वा प्रधानविध्यपेवितस्य कर्तृक्रमेभेदस्य ग्रह्मणैचित्यात्। इष्ट कर्तृत्वादिबाधे प्रधानस्योपासनस्यैव निवृत्तिप्रसङ्गाद्व* ॥

ब्रह्मदृष्टिमत्कर्षात् ॥ ५ ॥

धर्६ । २१

त्रितप्रसङ्गसाम्यमवलम्ब्य पूर्वाधिकरणेन दृष्टान्तसंगितमाह पूर्वन्ने-ति । श्रङ्गानुष्टानाराधित इति । ब्रीहिप्रोचणाघारादितः परमेश्वर एव प्रसन्नः सन् ब्रीह्मादिभिः पुरेखार्थानर्वत्तेनद्वारा यागसिद्धिहेतुरित्यर्थः । न चातिप्रसङ्ग इति । मेचापासनया चैचात्फलसिद्धिप्रसङ्ग इत्यतिप्रसङ्गा न भवतीत्यर्थः ॥

श्रतिथ्याचुपासनइवेति । श्रतिधिभाजनं तावदितिधिप्रधानमिति तत्प्रीणनं भाज्यादिप्रदानेन लेकिसिद्धं देवता वा प्रयोजयेदितिधिवद्
भाजनस्य तदर्थत्वा†दिति पूर्वतन्त्राधिकरणे चाितिथिभाजनस्याितिथिप्राधान्यवद् देवते।द्वेशेन द्रव्यत्यागरूपस्य यागस्य देवताप्राधान्यमिति पूर्वपचं कृत्वा
ऽतिथिभाजनवैषम्यकथनेन यागप्राधान्यसिद्धान्तकरणादितिथिभाजनस्याितथिप्राधान्यमभ्युपगतं तचाितथे: स्वर्गादिफलदातृत्वासंभदादी वर एव फलदातेति फलमत उपपते‡ित्यधिकरणन्यायेन संप्रतिपत्ति: । नैतावता मैनेपास-

^{*} अत्र वृतीयं प्रतीकाधि करणं पूर्णम्।

[†] जै॰ सू॰ श्र॰ स्या॰ ९ सू॰ इ.।

[‡] ट्या सूर ग्रन् ३ पार २ सूर ३८।

नया चैत्रस्य फलदातृत्वप्रसङ्ग इत्यतिप्रसङ्गोस्ति । ग्रविमहापि भविष्यतीति भावः । त्रादिशब्देन पान्यशुत्रूषादिकं गृहीतम्। यद्यपि प्रतीतिविषयत्वापेत्रः या हीति इतिशिरस्त्रस्य ब्रह्मपदस्य ब्रह्मशब्दपरत्वे ब्रह्मप्रतीतिपरत्वे च मुख्य-सामानाधिकरण्यं न स्यादिति ब्रह्मप्रतीतिविषयत्वपरत्वमङ्गीकृतम् त्रादित्यं ब्रह्मप्रतीतिविषयं कृत्वे।पासीतिति ग्वमिपमुख्यसामानाधिकरण्यं न लब्धं ब्रह्म-शब्दस्य ब्रह्मप्रतीतिविषयत्वसादृश्येनाब्रह्मण्यादित्ये वृत्यङ्गीकाराद् गै।यात्व-मेव प्राप्रम् त्रतः को विशेष इति शङ्कार्थः । शब्दसामानाधिकरण्याः दिति केवलप्रतीतिसमानाधिकरण्यस्याप्यपलत्वस्यम् ॥

ध्रदा १

श्रादित्यादिमतयश्रचाङ्गउपपत्तेः॥ ६॥

भाष्ये क्रियात्मकत्वादित्यषाधकमिति । कर्मात्मकत्वादुद्गीयादीनामिति भाष्ये क्रमीत्मकत्वं क्रियाह्रपत्वं न तु क्रमेकारकत्वं तस्यादित्यादिष्वप्यवि-शेषादिति दर्शयतुं तद्विवरगतया क्रियात्मकत्वादिति पदमुपातम् । ऋनेन भाष्येगादित्यादीनामस्वामाविकं क्रियात्मकत्वमवलम्ब्य फलहेतुत्वमुण्णादि-तमिदं तु साधकं स्वाभाविकेन क्रियात्मकत्वेनोद्गीयादीनां फलहेतुत्वापपत्तिति शङ्कार्थः । स्वन्तामशब्दाभ्यामिह पृथिव्यानी निर्दिश्येते प्रसिद्धस्वन्तामयारा-श्रयाश्रयिभावस्य तस्मादृच्यध्यूढं साम गीयतङ्ति समनन्तरवाक्ये पृथगुपा-दानात् तदेतदेतस्यामृचीति वाक्ये ऋक्वामशब्दी गीगौ। वाच्याविति भाव: । द्रव्यसंस्कारमहर्ताति वार्तिकश्लोके द्रव्यशब्दस्थाने वस्तुशब्दः पठितः क्रियाह्रपस्याप्युद्गीयस्यापयागवन्वन्यायसाम्येन संस्कार्ये।पपादने।पयो।गतया । ननु तिन्निधारणानियमं इत्यधिकरणे श्रादित्यादिमितिभिक्द्गीयावयवस्यांकाः रस्योपासनं न तत्संस्कारकार्म किं तु उद्गीयसाधनं पृथक्फलं प्रधानकारीत प्रमाधितं तद्विरुद्धमिदमुद्गीयमंस्कारत्ववचनम् । उच्यते । क्रतुवीर्यवतरत्वफः लस्योपासनस्य क्रत्वन्तभूतकर्मकत्वे संभवति न तद्विहिभूतकर्मकत्वमङ्गीकर-गोयमित्येतावन्माचे तात्पये न तु तत्संस्कारकर्मतया तदङ्गत्वइति न प्राक् प्रसाधितार्थविरोध: ।

अर्थवादत्वसंभवादिति प्राढ्योक्तम् । लोकदृष्ट्यादानां फलत्वे ऽप्यार्थवादिकत्वेन तदविशेषात् क्रतुवीर्यवत्तरत्वस्यापि फलत्वं नापैतीत्यपि

^{*} अत्र वतुर्थे ब्रह्मदृष्ट्राधिकरणं पूर्णम् । † व्याः सूः मः ३ पाः ३ सुः ४२ ।

दृष्ट्यम् । यत्र गुणात्फलं लेकादि भवतीति । लेकेषु पञ्चिवधिमित्यच कल्पन्ते हास्मै लेका ऊर्ध्वाश्चावृताश्चेति पाञ्चिवध्यगुणस्य फलमुक्तं पृथ्वियान्ति द्यौरित्यूर्ध्वेलेकाः द्यौरन्ति एष्ट्रिवीत्यावृता लेकाः प्राणिनां गत्यागितिविशिष्टास्ते कल्पन्ते समया भवन्ति उपास्कस्य गतागन्त्रियोभागन् संपादियतुमित्यर्थः । स्रादिशब्देन वाचि सप्रविधमित्यादी साम्पविध्यगुणफलं दुग्धे उस्मै वाग्दोहमित्यादि गृह्यते गुणस्य क्रियात्वेन लेकान्दिभिः समत्वादिति । ननु पाञ्चिवध्यादिगुणस्याक्रियाह्यत्वे ऽपि लेकादीनां नास्त्यक्रियाह्यत्विनयमः वृष्टे। पञ्चिवधं सामापासीतित्यादिषु वृष्ट्यादीनां क्रियाह्यप्त्वाद्यदुपमन्त्रयते स हिकार हत्यादिषु उपमन्त्रादिशब्दोक्तानां स्त्रिया सह संकेतकरणादीनां पृह्वानुष्ठेयक्रियात्वाचेति चेत् । सत्यम् । ऋकिन्यात्वेनत्यनेन क्रतुकालानुष्ठेयक्रियात्वाभावा विविचतः । स्रत एव क्रतुवीयेनवत्तर्वाभावािकाः ।

अतो लोकादिष्वपि सामाध्याससंभव इति। यते। उच क्रत्व- ५१६। ७ ङ्गभूतसामे।पासनं न विधीयते किं तु तदात्रितगुग्रमाचं लेकादिफलाय विधी-यते उतः क्रतुवीर्यवत्तरत्वफलत्वाभावादित्यर्थः । ननु यदि समस्तस्य खलु सामा इति वाक्यविहितं सामप्रधानमुपासनमाश्रित्य ले।केषु पञ्चविधमित्याः दिवाक्येन फलाय गुणमार्च विधीयते तदा कयं लाकादिषु सामाध्याससंभवः तथा पति हि सामप्रधानापासनाम्हणात्रयाभावाद् गुणविधिरेवात्मानं न लभे-तेति चेत् सत्यं लोकेषु पञ्चविर्धामत्यादिसप्रम्यनुसारेण सामापासनाविधिः माम्ब उपासनास्पर्शमाचपरः न प्राधान्यपर इति शङ्कावाद्यमिप्रायः । अस्ति गुणस्यापि कार्यत्वमिति । तथा च करोतिव्यपदेशाईत्वाद् वीर्यवतरत्व-फलकत्वमप्यपपद्येतेत्यर्थः । यथाभाष्यस्वारस्यं लेकादिमाचफलकत्वमभ्यप-गम्य टीकायामुद्गीयापासनावैषम्येग या शङ्का यश्च प्रयुक्तिलाघवेन तत्परि-हारः तदुभयं स्पष्टत्वान्न व्याख्यातम् । सत्यां तत्त्व्णायामिति । इयमेव-गैग्नि: सामेति ऋक्वामपृथिव्यग्निसामानाधिकरस्यनिदेशे ऋक्वामया: सा-माग्न्योश्चात्रयात्रयिभावसाम्यान्निमितमिति प्रतिपादनाथै प्रवृते तदेतदेतस्या-मृचीति वाक्ये पृथिव्यग्निविषयऋक्सामशब्दप्रयोगा यदि गाँगः स्यात् तदा-नीमारोप्यवाचकमेवाधिष्ठाने गोगावृत्तिः प्रयुच्यतदति नियमात् स प्रयोगः

पृष्टिक्यम्योरिषष्ठानत्वे सःश्वामयारारोप्यत्वे च लिङ्गं स्याद् न त्वेवं लवणा-श्रयणादित्यर्थः ।

ध्रुट । १८

ऋक्सामाध्यस्तत्वमपि संभवतीति । ननु ऋक्सामाध्यस्तत्व-संबन्ध इदानीं न सिद्धः । इयमेवर्गनिः सामेति सामानाधिकरण्यनिदेशे तदेतदेतस्यामिति वाक्यं हेतुममपेक्रमिति पूर्वमुक्तत्वाद् हेतुक्रयनात् प्राक् च षिद्धार्षभवादिति चेन्मैवम् । इयमेवेत्यादिसामानाधिकरग्यनिर्देशे। यदि च्हक्तामयोः पृष्टिव्यम्यथ्यासार्थः यदि वा विपरीताध्यासार्थः उभयथा ऽप्या-ध्यासिकसंबन्धा उस्तीति निश्चयसंभवात् । वस्तुतस्तु इयमेवेत्यपै।स्षेय-वाक्यं स्वार्थे पिद्धाः हेतुं नापेचते किंतु पिद्धएव तदर्थे तदेतदेतस्यामि-त्यादिहेतुविज्ञगदार्थवादमाचं तस्मादृच्यध्यूटिमिति तृतीयवाक्यवत् । न हि पृथिव्यग्न्ये।राष्ट्रयाष्ट्रियभावः प्रसिद्धस्यन्यामये।राष्ट्रयाष्ट्रियमावे हेतुः येन तस्मादित्युच्येत तस्मादियमेवेति प्रथमवाक्ये वद्यमाग्यन्यायेन ऋक्सामा-ध्यस्तत्वसंबन्धस्य सिद्धत्वात् तदवलम्बनायां लच्चणायां न का चिदनुष-पति:। इदं च लचगा फलवतीति वस्तुगतिमनुस्थ्यातम् । गीगातायामपि न देाषः । ऋक्सामदृष्टिविषयत्वसाम्येन गाँगतात्रयणे हि पूर्ववाक्ये पृथि-व्यान्येः ऋञ्चामदृष्टिविधिरात्रयणीयः । त्रन्यया गै। णवृतिनिमितगुणालाभा-दिति 🛪 पृथिव्यान्योर्ऋक्सामगब्दप्रयोगस्तथाविधाने लिङ्गं भवेद् न त्वेवमा-श्रयणीयम् । पूर्ववाक्येन ऋक्नामयाः पृथिव्यग्निदृष्टिविषयत्वसाम्येन गै।ण-ते।पपते: । लचगापचे ऽपि हि सक्नामाध्यस्तत्वसंबन्धात्रयग्रयग्रय सिद्धान्ता-नुगुग्यम् । ऋस्वामदृष्ट्यधिष्ठानत्वसंबन्धात्रयग्रे तु लचगापि पूर्वपचिनिङ्गं भवेदेव । किं च प्रथमवाक्ये ऋक्तामविषयपृष्टिव्यग्निशब्दप्रयागवद् द्वितीय-वाक्ये पृथिव्यग्निविषयस्वक्तामणब्दप्रयोगस्याप्यात्रयात्रयमावसाम्येन गै।ण-त्वमुपपद्यते । प्रयोगान्तरनिर्वाहकगुणप्रदर्शकवास्यगतस्यापि प्रयोगस्य तेनैव गुगोन निर्वाहो नायुक्तः । सप्रम्यधिकरगो चेति लैाकिकवैदिकप्रयागगतसप्र-म्यर्थेप्रदर्शकसूचत एव तत्सूचगतसप्रम्यर्थस्यापि प्रदर्शनाङ्गीकारात् । भाष्यं तु गै। यो लवयेति भेदमनादृत्य गुणान्तरनिमित्ता गै। एयेव लवयेति व्यवहू-तेति ये। चित्रं शक्यम् । अन्तराञ्जस्यमपरमपीति । अङ्गेष्वनङ्गदृष्टिचेप इति छिद्धान्ते लोकेषु पञ्चविधामित्यादिषु सप्रम्यास्तृतीयार्थत्वमात्रं कल्प्यं

न सु पूर्वपत्तरव सप्रम्या द्वितीयाधीत्वं द्वितीयायास्तृतीयाधीत्वं चेत्यपरम-चराञ्जस्यम् । ॐकारइति । ऋतुकाले उद्गातृभिगेयाः सामभागा भक्तयः अवोद्गीयावयव ॐकार त्रादिशब्देन भक्तिविशेषतयाक इत्यर्थः । इति तु पञ्चविधस्य साम्न इति । इति तु पञ्चविधस्येत्येतावदेव पञ्चविधापा-सनानामुपासनादेः श्रुतिवाक्यं साम्न उपासनं साध्यिति पदचयं तु समस्तस्य खलु धाम्न उपापनं माध्वित्युपक्रमगतवाक्यादनुषङ्गेष लञ्चमाचाय्यै: पठि-तम् । ननु प्रागाचार्यः समस्तस्य खलु सःस्त उपासनं साध्वित्युपक्रमगत-वाक्येनैव पञ्चभक्तिकस्प्रभक्तिकवच्यमाग्रसकलसामापासनविधानमुक्तम् । इह क्षयं समस्तस्यति वाक्येन सप्रविधसामे।पासनविधानम् इति तु पञ्चवि थस्येति वाक्येन पञ्चविधसामापासनविधानमिति विभन्य व्याख्यायते । उचाते । हान्देाग्यभाष्यानुसारेग पूर्वमुक्तं टीकानुसारेग इदानी विभन्य व्या-ख्यायते । टीकाकृतामयमवाणयः । सकलभित्युत्तं सम्विधं साम समस्तं भवति न तूपद्रवभक्तिरहितं पञ्चविधं साम । त्रतः पञ्चविधसामे।पासनविधा-नार्थमी। पसंहारिक्रमेव वाक्यमुपासनीयमिति । श्रुत्योक्तं साम्रः साधुत्वं व्याचष्ट्इति । यदाप्यपासनं सिध्वत्युपासनस्य साधुत्वमुक्तमिति प्रतिभाति तथापि य एवं विद्वान् साधु सामेत्युपास्त इत्युपसंहारात् साधुदृष्ट्या सामे।पास्यं साधुगुगार्त्वाहं कारादिपञ्चभित्रयुक्ते साम्ति पृथिव्यादिलाकदृष्टे। क्रियमागायां पृणिव्यादिषु कारणत्वेनानुगतः सुकृताख्या धर्म इति व्याचेष्टे इत्यर्थः ॥

श्रासीनः सम्भवात्॥ १॥

ध्रश् । १

तत्पर्युदासं सिद्धमादायेति । अस्मिन्नधिकरणे व्यवस्थापिष्यमाण-स्थापनित्यमस्याङ्गावबद्धोपापनेष्वित्यत्यशरीरस्थितिपाध्याङ्गपरतन्त्रेषु वर्ज्जनं सिद्धं कृत्वेत्यर्थः । अनेन प्रत्यदाहरणमङ्गितदेशिता। तेषु यथा नास्त्यापनित्यमः नैविमितरोपापनेष्विति । तिष्ठता ऽप्यैकाण्यसंभवादिति । अङ्गाव-बद्धोपापनास्विति भावः । तिष्ठता हीति । अङ्गावबद्धास्वगत्या देहधार-णापन्ने पत्यिप कथं विचित्रेकाय्यं पंपाद्यते न तथेहागितरस्ति । आपनित्यमस्य चीदितत्वात् तस्य च चित्रेकाय्यकृपदृष्टार्थेत्वोपपतेः । येषां रोगवार्द्धकादि-

^{*} अत्र पञ्चमम् ग्रादित्यादिमत्यधिकरणं पूर्णम्।

भिराषितुं न शक्तिः तेषामिष भौत्याद्युपाश्रयग्रेनासनियमिनवेहि।पपतेः । श्रत्यन्ताशक्तावारव्यकाम्यकर्मवद् श्राप्रायग्रमारव्याया विद्यायाः यथा कथं चिन्निवेहिणीयत्वेन तच तस्य त्यागे ऽप्यन्यच त्यागाऽयागिदिति भावः* ॥

ध्रुवर । १६

यत्रैकाग्रता तत्राऽविशेषात्॥ ११॥

श्रङ्गापास्तिव्यतिरिक्तोपास्तिरिति । श्रङ्गापास्तिष्वात्रयाङ्गस्य यो दिगादिनियमस्तदपेवामन्वादङ्गतः सिद्धमाधनं मा भूदिति पविविशेषणम्। एवं चापास्तित्वादङ्गापास्तिवदित्यपि हेतुदृष्टान्तौ वक्तुं शक्यौ। श्रुतदेशादि-मत्त्वमिति । उपामनामु विशिष्य दिगादिनियमश्रवणं नास्ति वैदिककर्मः माचे प्राङ्म्बत्वादिनियमस्मरणमनन्तरं माधनचित्तेकारयविरोधाद् वैदिककर्माः न्तरविषयमित्युपाधेः पवाद्यावृतिः ।।

धुद्दर । इ

आ प्रायणात्तत्रापि हि दृष्टम् ॥ १२ ॥

श्रहंग्रहे।पास्तीनामदृष्टार्थत्वेनेति । ननु यस्य स्यादद्वित श्रवणाविविध्यामनवनामं माचात्कारहृषदृष्टुफलार्थत्वमप्युक्तमावृत्यधिकरणे । सत्यम्। तावता यावत्माचात्कारोदयमावृतिः मिध्यति न त्वाप्रायणमिति भावः ।
कृतशास्त्रार्थत्वात्पुंस इत्यर्थ इति । श्रव पुंत इत्यध्याहारेण कृतशास्त्रार्थशब्दे बहुत्रीहिर्व्युत्पादितः । न चाहरहवे। एवं विद्वान् स्वगे लेकिनेतीति दहरविद्यायां वीष्मया विद्याया यावच्ची विकत्वमवगम्यते स यो हृ
वेतद्वगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमिति सत्यकामप्रश्ने साचाञ्च तदास्त्रायते । सत्यम्। प्रकरणविशेषास्त्रातं तदुभयं न्यायतः प्राप्तिं विना सर्वविद्यासाधारस्यं न
भचेत् । दृष्टद्वारेण् चेति । कर्मणामन्त्यप्रत्ययजनने दृष्टुसामध्यामावाददृष्टमाश्रितं प्रत्ययानां तच दृष्टद्वारा संभवाद् नादृष्टं द्वारमाश्रयणीयमिति ।

अन्तका ले तद्वरयं भावादिति । ननु उपास्तीनामाप्रायग्रमनुवृ-नाविष मायंप्रातःकालयारिगनहोचवच् चित्तैकाग्यशालिषु समयेषु तामामनु-ष्ठानं भवति न तु मर्वकालं नैरन्तय्येग घारावाहिकतया तथा च कुतः प्रायग्र-काले ऽिष प्रत्ययानुवृत्या ततः माचात्कारोदयावश्यंभावः । तस्मातदवश्यं-

^{*} अत्र वष्ठम् ज्ञासीनाधिकरणं पूर्णम्।

[†] अत्र सप्तमम् एकायताधिकर्यां पूर्णम्।

भावेक्तिरयुक्ता । प्रतिबन्धकान्तरानुद्वविक्तिरप्ययुक्ता । प्रबलस्य कस्य चित्रा-तिबन्धं कर्मणः तदानीमुद्ववसंभवेनाद्भूतस्य प्रारब्थस्य वा प्रतिबन्धकत्व-संभवेन तदा तीव्रमरणवेदनादिकमुद्वावयता तेन प्रत्ययानुवृत्तिसासात्कारे।द-ययेाः प्रतिबन्धसंभवात् । यद्युपास्तिजन्यप्रबलादृष्ट्रवशात्प्रत्ययानुवृत्तिकल्पनया साचात्कारे।दयावश्यंभाव: कल्प्यते तदा तद्वशात्साचात्कारे।दयावश्यंभाव एव कल्प्यतां किमाप्रायगप्रत्ययावृत्तिकल्पनया । उच्यते । तीत्रमरगावेदनामू-लस्य कर्मणो ऽपि भाक्तव्यक्लविषयान्तिमप्रत्ययस्तावदवश्यंभावी सविज्ञाना भवतीत्यादिश्वते: । श्रत उपासनाफले भाक्तच्ये तत्यत्यये। ऽपि तदानीम उध्यं बाच्यः । स च साचात्कारहृप एव प्रभवति प्रागुपास्ये साचात्कारस्य क्रृप्रत्वात् प्राचीनसाचात्कारित्वभावनैव कारगत्वेन क्रुप्रेति सा तदानीमप्यपेचग्रीया सा च दृउसंस्कारवत एव भवति न तु चिरात्य्रत्ययावृत्तिमुन्मितवतः प्रमु-षितसंस्कारस्येति संस्कारदाळीथिमाप्रायणं प्रत्ययावृत्तिरपेचणीया । ऋत यत्र प्रायणानुवर्तनीयप्रत्ययावृत्तिसहकारितया तत्फलेन ब्रह्मले।कप्राय्या फल-वतां कर्मणाम।प्रायणमनुवृत्तिं दर्शयति छान्द्रोग्यश्रुतिराचार्यकुलाद्वेदमधी-त्येत्यादिका । इयं ह्युपासनासहकारिकमेविषया त्रात्मनि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्येति चितेकाग्ये।पायसाहित्ययवणाद् ब्रह्मले।कप्राप्रिफलयवणात् । त्रत एव भगवत्पादैरियं श्रुतिर्विद्यामहकारिकमेविषया ऽवतारिता। यथेह षष्ठाद्यथ्यायचयप्रकाशितात्मविद्या सफला ऽवगम्यते तथा कर्मगां न कश्च-नाथे इति प्राप्नं तदानथेभ्यपरिहाराय विद्वद्विरनुष्ठीयमानस्य विशिष्ठफलसंब-न्धेनार्थवन्वमुच्यतइति । गवं च प्रतिबन्धकान्तराऽसंभवे। ऽप्यपग्यते । दृढसंस्काराधानेन प्रायणकालिकप्रत्ययानुवृत्तिसाचात्कारये।दूृष्ट्रकारणभूतायाः प्रत्ययावृत्तेस्तत्यहकार्याग्नहोचादिकर्मानुवृत्तेश्च प्रत्यगत्वेन प्रबलतया ताभ्यां प्रारन्थपर्यन्तस्य सर्वस्यापि प्रतिबन्धकस्यानुत्थितिकरगो।पपते: कर्मविपाक-प्रायश्चितवत्प्रारब्थादव्यनयाः प्राबल्योपपतेश्च । एवं न्यायसिद्धामेवाप्राय-णानुवृत्तिं स ये। हवैतद्भगविन्निति श्रुतिरहरहःश्रुतिश्वानुवदतीति तयारिष सर्वविषयते।पपदाते ।

ननु तेजसे।दानेनेति व्याख्यानमयुक्तं द्यान्दे।य्यश्रुते। प्राणस्तेजसि तेज: परस्यां देवतायामिति मुसूर्षाः प्राणस्य तेज:शब्दे।पलवितदेहबीजभूतप्राप्नि- श्रवणातयेव तस्याः श्रुतिद्वितीयपादे व्याख्यास्यमानत्वादित्यत श्राह उद्दानस्य तेजादेवतात्मकत्वादिति । प्रश्नोपनिषदि यश्चित्तर्हात वाश्यात्
प्राचीनवाक्ये तेजा ह वाव उदान हित श्रूयते ततः प्राक् चादानः पुण्येन कर्मणा
पुण्यं लोकं नर्यात पापेन पापमुभाभ्यां मनुष्यलोकमिति श्रूयते। श्रुतस्ते जस्त्वेन
यथापंकित्पत्तलोकिनिन्दात्वेन चाच श्रुत उदान एवेति भावः। श्रात्मना सह
श्रात्मना सहितः सन् तमेवात्मानं यथापंकित्पतं लेकं नयतीति श्रुतिशेषस्यार्थः। उत्तराधिकरणपंगितिमाह श्रुन्तकालइति । यथापापकस्यान्तकाले
प्राप्यपारलोकिकपत्विषयान्तिमप्रत्ययद्वपाचात्कारोदयाथे तदानीमिष प्रत्ययावृत्यनुवृत्यपेचा नैवं परब्रह्मित्रदस्तदपेचा ऽस्ति ततः सकलाधनाशेन कृतकृत्यतामिरित्युत्तराधिकरणेन प्रतिपादनादापवादिको सङ्गतिः सगुणित्रद्यानयेविततदिरोधिकमेणामिनवृत्तिस्तु न्यायसाम्यात् सिध्यन्त्यानुषङ्गकं प्रयोजनमिति भावः*॥

४२३ । १ तद्धिगमजत्तरपूर्वाघयारश्लेषविनाशी तद्वपदेशात्॥ १३॥

अथैकेन शरीरेणेतिः। उष्ट्रमतङ्गजादिभाग्यकगटककाष्ट्रादिभागप्राप-कक्रमेफले।प्रभागा एकेन शरीरेण ने।पपदान्तइत्यर्थः। अर्थवादिलङ्गस्येति। उपासना यिमन् दिने प्रारच्या ततः प्रभृत्युत्तराघाश्लेषः तस्मिन्नेव दिने प्रा-चीनसकलाधनाशश्च कर्यामत्यर्थवादमाने भारं संनिवश्याभ्युपगन्तव्यम् इत्यप्यर्थवादग्रहणेन सूचितं किंतु सित विरोधे न चेहत्य इति निर्गुणद्व सगुणेपि साचात्कारे।दये सत्यश्लेअविनाशाविति नाप्रसङ्ग इति भावः। सगु-णितर्गुणविद्यासाधारग्येनाश्लेषविनाशा विरोधाभावेन सम्प्रिते। अभ्युपग-म्यापि प्रमाणान्तरिवरोधं विसद्धं प्रमाणान्तरमेवाश्लेषविनाश्वप्रमाणेन वाध्य-मित्येतिन्नर्गुणविद्याम।चविषयं पापं चानिवृत्त्यर्थमित्यादिना बलीयसीत्यन्तेन दर्शितम्।

ध्रुश्च । ११

इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु ॥ १४ ॥

प्रथमं निरस्येति । न च शास्त्रीयत्वसाम्येनाविरोधोपपाउने ऽपि ज्ञा-नाज्ञानस्कृपत्वकृतविरोधो न निरस्त इति वाच्यम् । तस्मिन् सत्यपि प्रार-

^{*} श्रजाष्टमम् ग्राप्रायगाधिकरग्रं पूर्णम्।

[ा] श्रम नवमम् तद्धिगमाधिकरणं पूर्णम् ।

ब्थवदनुवृत्तिषंभवादिति भावः । पाप्मनश्च विशेषता ब्रह्मचानेनाच्छेदात्व-श्रुतेरिति टीकायां विविच्चतां श्रुतिमुदाहरित सर्वे पाप्माना ऽता निव-र्त्तन्तइति । न सुकृतं न दुष्कृतं सर्वे पाप्माना उता निवर्तन्तइति छान्दो-ग्यश्रुतिरिह ने।दाहतुँ ये।ग्या तत्र पाप्मशब्द: सुकृतस्य।पि ग्राहक इति स्फुट-त्वेन तस्याः सिद्धान्तानुगुगत्वात् । किं त्वन्येयं श्रुतिराचार्येसदाहृता । श्रात्मन्येवात्मानं पश्यति सर्वमात्मानं पश्यति नैनं पाप्म तरति सर्वे पाप्मानं तराति सर्वे पाप्मान: प्रहोयन्तइत्यादि चाच पूर्वपचानुगुणं वाक्यं द्रष्टव्यम्। पापविशेषे संकोच्यमिति । पापहृषे कर्मविशेषे संकोच्यमित्यर्थः । स्व-भावविरोधपत्त्मादायेति । धर्मस्य ज्ञानमात्राद्ववृत्तिः स्वभावविरोधाद्वा शास्त्रान्निवर्त्यत्वावगमाद्वेति विकल्पितपचद्वयमध्ये प्रथमपचमादायेत्यर्थे: । प्रारब्थवदनुवृतावारब्थफलत्वहेत्वभावाद् अवधिश्रवगाभावाच्च अनन्तगरी-रभे। यानामनियतकालविपाकानां पुग्यकर्मगां युगपत्क्रमेगा वा भागासंभवा-दनिम्में चः स्यादिति भावः । क्रममुक्तिफलकामु मगुग्रविद्यास्वय्ययं न्याय-स्तुल्यः । देवले।कादिप्रापकपुराय विशेषानुवृत्ती तत्फनभागाय पुनर्निवृत्यापत्या क्रममुक्तिने सिध्येदिति तथाभूतार्थाति पाप्मयुत्या पुरायस्यापि ग्रहणे न्याय-सिद्धार्थानुसार्यर्थानि । यथाभूतार्थानीति पाठे उमे वैष एते तरित नैनं सुकू-तदुष्कृते तरत इत्यादीनि यथायुतार्थानि भवन्ति न तु क्रोपोन योज्या-नीत्यर्थः ॥

अनारब्धकार्यसव तु पूर्वे तदवधेः॥ १५॥

यथा कुलालेति । कुलालकरामिघाते निवृत्ते तिव्विमनक्रमाद्यं भ्रमणं निवर्तते ततस्तज्जन्यवेगाख्यसंस्काराद् भ्रमणपरम्परानुवृत्तिर्दृष्ट्रा तथा कर्मजन्यसंस्कारात्कर्मान्तरानुवृत्तिरित्याद्यपेवा न युक्त सत्यर्थः ।

न मायेति भ्रमनिषेध इति । तज्जन्यसंस्कारा न तद्गाचर इत्य-प्रिमवास्ययोस्तत्पदेन मायाशब्दे।तां परामृश्य तज्जन्यसंस्कारतद्विषययोर्वस्तुः सत्तानिषेधाद् मायाशब्दे। ऽव भ्रमपर इति भावः। तज्जन्यसंस्कार इत्यनेन मायासंस्कारजन्यमायान्तरात् कर्मान्तरात्पतिरिति पर्च प्रतिचिपतीति। यदापि न तज्जन्यसंस्कार इत्यनेन भ्रमजन्यसंस्कारनिषेधः प्रतीयते तथाप्यथाद्

[🏄] अत्र दशमम् इतराऽसंश्लेषाधिकरणं पूर्णेम् ।

भ्रमाणादानमायानिषेधस्य पूर्ववाक्ये वर्णितत्वाद् मायापि निषेध्यतया बुद्धि-स्थेति तज्जन्यसंस्कारनिषेधपरतया ऽपि योजिपतुं शक्यत्वात्स्वविकल्पितद्वि-तीयपद्मनिरामार्थत्वेनेदं वाक्यं योजितम् । न तज्जन्यसंस्कार इत्यनेनेत्यादेः प्रतिचिपतीत्यन्तस्य ग्रन्थस्य स्थाने अनेन मायाजन्यमायान्तरात्कर्मान्तरी-त्यितिरिति पद्यः परिस्फुरतीति क्व चित्याठः । तचायमर्थः । यच तु न माया न तत्संस्कारो न तद्गोचर इति टीकायन्यः प्रस्तुते भयकम्पादिवैषम्यप्रदर्शनपरे। न भवति मायावादिनश्चेत्यादिपूर्वयन्थेनैव तद्वैषम्यसिद्धेः । त्रता ऽनेन टीकाय-न्थेन द्वितीयपचे। निषेधार्थमनूदितः परिस्फुरतीति। ननु न तत्संस्कार इति तच्छब्दस्य मायापरत्वे तद्गोचर इत्यचापि तस्य तत्परत्वेन भाव्यं न तु तद्युत्तं मार्याविषयस्यात्मनस्तन्वचानादूर्ध्वमपि सन्वेन तन्निषेधायोगादित्याशङ्क्ष्य भूरभ । १६ व्याच्छे मायात्मभ्रमगोचर इति । भ्रममाययाः कार्यकारणयारभेदाः पचाराद् भ्रमविषया मायाविषयत्वेने।पचरित इति भाव: । किमनु-वर्त्तेतेत्युक्ता न किमपीत्याहेति। किमनुवर्तेतेत्युक्तमेवाथै न संस्का-रावशेष इत्यादिना विवृणे।तीति न पैानरुत्त्यमित्यर्थ: । न तता ऽधिकमित्यर्थं इति । इहापि तावदेव चिरमित्येवकारेग न तता ऽधि-कमित्यये एव प्रतीयते न तु तावत्पर्यन्तमनुवर्ततग्वेत्यथे इति भावः। नास्ति ब्रह्म न प्रकाशते चेति भ्रमान्यथानुपपत्त्येति । इदमुपलद्य-गं परप्रेमास्पदतया जीवस्वस्रुपानन्दे प्रकाशमाने ऽपि नास्ति न प्रकाशत-इति व्यवहारात् तदावरकाविद्यासद्वावा ऽवगम्यतहत्येतदप्यदाहरग्रम् । न चैकदेशेनेति । निवृताया ऋविद्याया एकदेशेनानुवृत्यसंभवा नेति याजना । शाब्दवाधेनेति । सक्तलेतरमधुरिमव्यावृत्तीत्कर्षशालिसुधायां मधुरिमा ऽस्तीत्याप्रवाक्येन तदर्थपरिच्छेदे सति तदज्ञाननिवृताविष यावत्साचात्कारं कीदृचः स मधुरिमेत्यज्ञानं नापैतीत्यनुभवसिद्धम् । न च तत्र पुरुषात्रिताः चाननिवृताविष विषयात्रिताच्चानं नानुसूयतइति वाच्यम् । त्रात्रयभेदेनैकविष-याज्ञानमेदकल्पने प्रमाणाभावात् । तस्मादेकमेवाज्ञानमेकदेशे च निवृत्तम् ग्रकदेशान्तरेगानुवर्ततहत्येव कल्पनीयमिति भावः । कल्पमहाकल्पमन्वन्त-रादिजीविता चेति पाठमाश्रित्य कल्पशब्दार्थमाह कल्पे। ऽवान्तरकल्प इति । ब्रह्मणे दिनमवान्तरकल्पः । तस्यायुर्महाकल्पः । ननु भाष्यकारैर्ने

459 1 60

तावदनात्रित्य कमीशयमित्यादियन्थेन चानीत्यतेर्देहद्वारा तदारम्भककमीन्ययत्वादारम्थकार्यस्य च कमेशे। मध्ये प्रतिबन्धाऽसम्भवात्तत्ववणार्थे देहवान्यप्रतेचिणमिति युक्तिक्ता सा टीकाकारैस्तदेतदिमिसंधायेत्यादिना स्वाक्तयिक्षयंवसानं किमिति प्राणिता स्वतन्त्रयुक्तयन्तरत्वसंभवादित्याशङ्क्ष्याह स्वाक्तिवयाया अविद्याया इति । अस्तु चानीत्पन्यये देहतदारम्भककन्मिषेचा तस्यां सत्यामेवीषादानाचानवाधेन तथोर्निवृत्तिः स्यादेव निरुपादानकार्यस्थित्यसंभवादित्याशङ्कायाम् उत्यन्नचानामिष अतिस्पृतिषु देहस्थित्यप्रस्थायस्थित्यसंभवादित्याशङ्कायाम् उत्यन्नचानामिष अतिस्पृतिषु देहस्थित्यप्रसम्भविद्यायाः तत्त इयं स्वतन्त्रयक्तिने भवतीत्यर्थः । अन्यत्र आत्मातिरिक्तस्तुनीत्यर्थः । चन्द्रैकत्वसाचात्कारेण सहानुवृत्तिरिति । अनम्यासद्यायां चलचानेन सह जलमिदं न वेति संशयस्यानुवृत्तिरय्यवेदाहरणम् । नियोग इति । प्रागेव प्रमाणतः सिद्धं वस्तु तथास्त्वित पुनर्यतेन न विधेयं नापि कथमेतदिति चोदनाईमित्यर्थः । तकारलापश्चान्दस इति । लोपस्त्रभत्यनेपदेष्विति द्यान्यसे तलोपे सत्यते। गुणे इति परस्वपत्वम् ॥

म्राग्निहात्रादि तु तत्कार्यायैव तद्वर्धनात् ॥ १६ ॥ सुकृतशब्दस्य च काम्यकर्मविषयत्वादिति । ननु सुहृदः

सुकृतशब्दस्य च काम्यकमावषयत्वादात । ननु सुहृदः
साधुकृत्यामित्यष सुकृतशब्दस्यापास्यसाचात्कारात् प्राचीनं काम्यकमं न
विषयः तस्य तत एव विनाशात् ततः पाश्चात्यस्य क्रममुक्तिफलाऽनपेचितस्य तद्विरोधिनश्च तस्य विदुषि बुद्धिपूर्वमनुष्ठानाऽप्रसक्तेः वासनावशात्यवृतस्याऽबुद्धिपूर्वस्यासङ्किल्पतफलतया क्व चिदिष फलसाधनत्वाभावात् । कथं
वित्फलसाधनकाम्यकमानुष्ठानसंभवे ऽिष तस्याश्लेषवचनविषयताया वक्तव्यत्वात् । न चाश्लेषवचनं सुहृद्गामित्वाभिप्रायं स्यादिति वाच्यम् । साचात्कारोदयानन्तरमनुष्ठितस्य काम्यक्रमंथो देहवियोगकाले सुहृदि संक्रमिष्यतस्तावत्पर्यन्तं निराधारस्थित्ययोगात् । यतेन द्विषन्तः पापकृत्यामित्यस्याि विषयो।
निरस्तः । साचात्कारनिवर्त्योदश्लेषवचनविषयाच्चान्यस्य द्विषद्गामिनः पापस्य
वर्णयितुमशक्यत्वात् । ननु ययोः पुग्यपापयोः साचात्कारोदये सत्यश्लेषविनाशाविष्येते तयोरवे देहवियोगकाले द्विषद्गामित्वमुच्यतहत्यस्तु पुग्यपा-

^{*} अजेकादशम् अनारव्यकार्याधिकरणं पूर्णम् ।

पयारश्लेबविनाशे। विद्वांसम्प्रति फलजननाईतानुत्पतिनिवृतिरूपे। देखवि-यागकाले सुहृद्द्विषद्गामित्वं तयाः फलजननाहंतात्पनिरूपमिति वतुं शंक्यत्वादिति चेद् न । तस्य पुचा दायमुपयन्तीति दृष्टान्तानुसारेण याव-ट्वेहधारग्रमुपासकं प्रति फलजननयाग्यतया ऽवस्थितयाः देहवियागकाले सुहृद्द्विषतः प्रति योग्यताविभावप्रतीतेरिति चेत् । उच्यते । उपासकस्या-भ्युदयफलानिच्छायामपि तामजानद्भिः पुचादिभिस्तदभ्युदयेच्छया ऽनुष्ठि-तानि तडागप्रतिष्ठादीनि संभवन्ति । द्वादशवार्षिकसचवाक्यानामयनादिषु ततत्फलेच्छया प्रवृतस्य मध्ये वीतफलेच्छस्य क्रममुक्तिफलेच्छया ब्रह्माणस-नायां प्रवृतस्य तन्मध्यग्व लब्धे।पास्यमाचात्कारस्य प्रक्रमातु नियम्येतेति* न्यायेनावश्यसमापनीयत्वेन प्राप्नानि द्वादशवार्षिकसवादीनि काम्यकर्माणि **जन्मान्तरे**व्वन्येवामवश्यभाक्तव्यफलानि संभवन्ति । क्रिं बहुना । उपासनास-ष्टकारित्वेन नित्यत्वेन चापासनाकाले ऽप्यनुष्ठेयानां दर्शपूर्णमासादीनामङ्गान्य-अन्यन्वाधानप्रस्तरयागादीनि ममाग्ने वर्चा विहवेष्वस्तु ऋायुराशास्ते सुःजा-स्त्वमाशास्ते इत्यादिकरणमन्त्रप्रकाश्यवर्चः प्रभृतिफलवन्ति भवन्ति । तानि फलानि सङ्कल्पाभावे ऽपि तदाया ऽऽम्रे फलाये निमित्ते च्छाया गन्थ इत्यनूत्य-रोते एवं धमे चर्यमाणमधा अनूत्परान्तइत्यापस्तम्बवचनादवश्यं भवन्त्येव। **श्र**वश्यानुष्ठेयक्रमेविध्यन्यथानुपपन्याचेप्यप्रार्थनानि वा भवन्ति । श्रन्यथा विह्न-वेष्यस्तु त्रायुराशास्तद्दत्यादिमन्त्रप्रकाश्ययजमानगामिफलतत्प्रार्थनानामनुष्ठे-यार्थसंबन्धित्वाभावेन तद्द्वारा एतेषां मन्त्रभागानामनुष्ठेणर्थप्रकाशकत्वाभा-वप्रसङ्गात् । तथास्य पापकर्माख्यपि परैराचरितान्युपासकसंक्रमणायाग्यानि संभवन्ति यदन्यकृतमारिमेत्य।दिश्रीतिनङ्गाद् उपासकस्यैवाबुद्धिपूर्वाग्य,प तानि संभवन्ति एवंभूतपुरायवापकर्भविषया तदश्लेबेक्तिः । यान्यपासनाकाले तदर्थदेहचारणापेचितवृष्ट्यारे।ग्यादिफलतया ऽवश्यकर्तव्यानि काम्यक्रमीणि तेषु दत्तफलेभ्या ऽविषष्टान्यांप देहपातकाले ऽनुवर्तमानानि संभवन्ति । षापकर्माग्यपि प्रारब्धकर्मफलतया ऽवश्यप्राप्याग्युपासकेन देहपातासन्नसमये कृतत्वेनाकृतप्रायश्चितानि संभवन्ति । तद्विषयं सुहृद्द्विषद्गामित्ववचनं भविष्यतीति न का चिदनुपपति:। यद्वा तस्य पुत्रा दायमुपयन्तीत्येतत्सु-

^{ैं} जै॰ सू॰ श्र**ः ६ पा॰ २ सू॰ १३** ।

हृद्द्विषत्यङ्कमणकाले।पलचणमाषं न तु दृष्टान्तपरं तत्परत्वे ऽपि वा सर्वा-त्मना साम्यं न विविचितं किं त्वन्यसङ्कमणमावेणेतीव्यते । यद्वा यये।: पुण्यपापयो: साचात्कारे सत्यश्लेषविनाशे। तये।रेव देहविये।गकाले सुहू-द्द्विषत्सङ्कमणमित्यभ्यपगमे ऽपि न दे।षः ॥

यदेव विद्ययेति हि॥ १८॥

ध्रद । १४

विद्यायुक्तकर्मप्रशंसयेति । इदमुपलचणं प्रस्तानया देवता प्रस्ता-वमन्वायता तां चेदविद्वान् प्रस्ताष्यिष मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति षाचाद्विद्या-विद्यीनकर्मनिन्छया ऽपि तिन्निषेधकल्पना द्रष्ट्रव्या । तथा च विद्याविहीन-कर्मनिषेधेन विद्यायाः कर्माङ्गत्विमिद्धिरिति भावः । विद्ययेति तृतीयायुत्या मानादिष तित्सिद्धिद्रेष्ट्रव्या । अन्ये त्वाहुरिति । भास्त्ररेणैतत्स्वमनयेक-मित्युपेवितं तदीयास्तदभिप्रायमाहुरित्यर्थः । विद्यार्थत्वं यदा यायुरित्ये-षा षट्षदी गाया नायमे। तक्रियाच्य न्तीति यज्ञाद्यनिधिकारियो जप्यादिना शूद्रस्य शुत्रवामावेगीव सिद्धिरस्तीत्येतावता तदधिकारिगा इङ्गविकलं यज्ञादि न फलाय कल्पतद्दित भाव: । ननु सर्वाङ्गानुष्ठानाशक्तस्याशक्याङ्गप्रहाणेनानु-ष्ठानमपि यथाशनयधिकरणसिद्धम् ऋते। विद्याविहीनमपि यचादिकं कार्यकरं स्यादित्याशङ्क्याह विद्योपेतेष्वित । क्रमभागमाचविदामै।पनिषदविद्यावि-द्याविवेकरहितानां विद्याविहीनमपि यथाशक्ति नित्यकमीनुष्ठानमस्तु नाम त्रोपनिषदविद्याविवेप्रवतां टहराद्युपासकानाम् ऋद्वैनब्रह्मविविदिषोत्पत्त्यश्रे यचायनुतिष्ठतां च विद्यानुष्ठानगः सिरस्तीति तेषां विद्याविहीनं कर्म न कार्यकरम् । त्रत एव विद्याविवेकराहित्याद् विद्याविहीनमेव स्तोष्यत्सूद्गा-तृषु समागतेने।षस्तिना मदुपदेशेन विद्यां लब्बा विद्यासहितकमानुष्ठाने संभवति तद्रहितं कर्म नानुष्ठेयमिति तद्भिन्दा कृता । न च विद्याधिगमे।पा-यामावाद् विद्यारहितमेव स्ते।व्याम इति संकल्याऽऽस्तावे।पविष्टेषुद्गातृषु पुन-विदाः नापेचणीयेति कथं तच विदाविहीनकर्मनिन्देति वाच्यम् । यथायिति शास्त्रं संपादयाम इत्येव हि संकल्पः न तु विद्याविहीनमेव स्ताष्याम इत्यपि। श्रता यदि तदैव विद्याधिगमे।पाये। लभ्यते तदा तद्विहीनं क्रमं न कर्तव्य-मिति तन्निन्दा युक्तैव । त्रत एव मुख्याधिगमे मुख्यमागमे। हि तदभावा दि-

[ै] अन द्वादयम् अभिनेद्वाचाद्यधिकर्यां पूर्णम्। † जै. सू. अ. ६ पा. ३ सू. ३५।

त्यधिकरेशो यदा यूपाये मुख्यं खदिरमलभ्यं मत्वा तत्प्रतिनिधिं कदरमुपा-दातुं प्रस्थिता मध्ये मुख्यं लभते चेद् मुख्य एव ग्राह्यः । कदरं गृष्टीत्वा तच्यादिषु केषु चित्संस्कारेषु कृतेषु प्राक् प्रशुनियोजनाद् मुख्यं लभते चेदिषि मुख्य एव ग्राह्य इति व्यवस्थापितम् । तस्माद् विद्यासिहतकमीनुष्ठानशका हपासका श्रिष तद्रितं कमे यदानुतिष्ठेयुस्तदा ते

प्रमु: प्रथमकल्पे ऽपि या उनुकल्पं निषेवते । न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥ इति मानवधर्मशास्त्रीतं देाषं नातिवर्तेरन्निति भाव: ।

भूरे । ७

तरप्प्रयोगेणेति । न तावदल्याच्तरमित्यादाविव स्वाधिका ऽयं तर-प्पत्ययः । ऋधिकार्थसमेवे स्वार्थिकत्वायागात् । ऋता वीर्यवतरमित्यस्य पंजजननानुकूलसामर्थ्यातिशयवत्वमर्थः । स च सामध्यातिशया ययाशनयधि-करणन्यायसिद्धानुवादः समस्ताङ्गसाचारणन्यायसिद्धानुवादे प्रयोजनाभा-वात्। त्रता विद्यारहिताद्विद्यासहितस्य विलच्चण एव कश्चिदतिशयः सिद्ध्य-द्वीचित्यात् प्रवलैः कर्मभिरप्रतिवद्धसूप एव पर्य्यवस्यति । एवं च पृथक्फल-त्वाच विद्या कर्माङ्गम् । विद्ययेति तृतीयाश्रुतिस्तु उपकारकत्वमाचपरा तेनामै। कुरुते। यश्वैतदेवं वेद यश्च न वेदेति विद्यारहितकमाभ्यनुज्ञानापक्रमानु-रेथिात् । न चार्यं यथाशस्यधिकरगान्यायसिद्धार्थानुवादः । ऋङ्गत्वाभावस्रूपा-उपूर्वार्थबाधकत्वसंभवात् । मूर्था ते विपतिष्यतीति वचनं तु धनायया स-मागतस्योषस्ते: स्वागमनमनादृत्य स्तोतुमारभन्तइति क्रोधप्रयुक्तं शापवचनं न तु विद्याराहित्येनाङ्गवैकल्यप्रयुक्तम् । श्रत ग्रव ग्रापवचनमाकर्ययं स्ता-षारम्भादुपरतेषूद्गातृषु राज्ञा ऽनुनीतेन यावतेभ्या धनं दद्याः तावन्मम दद्या इति राजानं पृष्ट्वा तथिति राजानुमति लब्धवते।षस्तिनाद्गातृभ्यः प्रस्तावादिदेवते।पदेशानन्तरं तां चेदिवद्वान् प्रास्तोष्या मूर्था ते व्यपतिष्यत् तथातस्य मयेत्यादिवाक्यचये ऽपि स्वशापवचनं क्रोधप्रयुत्तं न त्वङ्गवैक्वत्य-प्रयुक्तमिति स्फुटीकृतमधिकरगप्रयोजनं विविदिषूपासककर्तृकेष्वग्निहोचादिषु विद्यानियमाभाव इति भाष्ये व्यक्तम् । शास्त्रदर्पेणे त्वङ्गत्वे नित्यकर्मवः द्विद्यार्थेत्वमनङ्गत्वे काम्यकर्मवद्विद्याया निवृत्तिरिति प्रयोजनान्तरमुक्तम् । तञ्चित्यम् । अनङ्गत्वे ऽप्यप्रतिबन्धफल्कत्वेन विद्याया अपेचिततया नित्यकर्मतील्यात् । न हि काम्यमपि देहचारगार्थवृष्ट्याराग्यादिफलकं कर्म विद्यानिवर्न्यम् ॥

भागेन त्वितरे चपयित्वा संपद्यते ॥ १९ ॥

धुन्ह । ११

प्रारब्धकर्मफलभागानन्तरमिति । येषां विद्यायानिशरीरावधानं प्रारब्धं तेषां विद्यापलमस्तु नाम येषां त्वनेकशरीरानुयायि तेषां तत्पालं न संभ-वित जन्मान्तरस्य पूर्वेसंस्कारप्रमे।षकतया शरीरान्तरे विद्याविहीनै: क्रिय-माणानां कर्मणां बन्धहेतुत्वेन तता जन्मपरम्पराया एव प्राप्ते:। न च तेषां जन्मान्तरं न संस्कारप्रमाषकमिति कल्प्यं दृष्टनियमसङ्कोचकाभावात् । न च यावत्र विमोद्ध्यइति प्रारब्धकर्मत्रिमाचावधित्रवर्ण सङ्कोचकं धूत्वा श्ररीरमिति श्रुत्यन्तरानुसारेग तस्य शरीरविशेषाविधपरतया येषां विद्या-योनिशरीरावसानं प्रारब्धं तद्विषयत्वे। पतः । न च पूत्वा शरीरमित्यष शरीरग्रहणं प्रारव्यकार्ययावच्छरीरपरम् । एकवचनत्रवणात् । अस्माच्छरी-रात्यमुत्यायेति युत्यन्तरे अस्मादिति विशेषणेन विद्यायागिशरीरस्यैव विविचितत्वाद्व । एवं च प्रारच्थस्यानेकश्ररीरानुयायित्वगङ्कया विद्यानुष्ठाने प्रवृतिश्व न सम्भवेदिति पूर्वपचामिप्रायः । देहान्तरे संस्कारप्रमाष त्राधि-कारिकाणामपि कल्प्यते अस्पदादीनां वा आधिकारिकाणां तत्कल्पना न सम्भवति त्रागमविरोधादित्युक्तत्वात् । द्वितीयपत्तं निरस्यति त्रस्यदाः दीनामिति । मुन्चर्येविद्यानुष्ठानप्रतिपादकबहुशास्त्रप्रामाण्यात् तस्य ताव-देवेति विवित्ततावध्यवसाने मुन्यवश्यम्भावप्रतिपादकावधारगाप्रामात्याच यात्रज्ञ विमोद्धाइत्यस्य प्रारब्धक्रमीवधिषरत्वं धूत्वा गरीरमित्यच शरीरप्रदस्य प्रारन्थकार्ययावच्छरीरपरत्वमस्मादिति विशेषणस्यानुभवसिद्धहेयताप्रदर्शनाचै-त्वं विदुषां जन्मान्तरस्य एंस्कारे प्रमाषानाषादकत्वं च कल्प्रम् । अतः प्रारब्धभागानन्तरं मुर्तिनियतेति सिद्धान्त्यभिप्रायः ।

इति श्रोमद्वरद्वाजकुलजलिकोस्तुभयोमदद्वैतविद्याचार्य्ययोविश्वजि-द्याजिशीरङ्गराजाध्वरिवरसूनोरणयदीवितस्य कृते। वेदान्त-कल्पतस्परिमले चतुर्थस्याध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

^{*} यत्र त्रयादयं विद्याचानसाधनत्वाधिकरसं पूर्णम्।

[।] भन चतुर्देशम् इतरत्वपणाधिकरणं पूर्णम्।

श्रथ चतुर्थस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः।

भ्रु०। १

वाझनसि दर्शनाच्छब्दाञ्च ॥ १॥

सता साम्य तदा सम्यन्नो भवतीत्युक्तायाः सम्यतेः स्वमपीता भव-तीति लयार्थेनावीतिना विवरणाद् वाङ्गनसीत्यवापि सम्पतिल्लेयः स यथाश्रुति वाच एव प्रकृती लय इति लैकिकन्यायस्य वचनेन बाधे।पपते: । श्रन्यथा वाक्प्रकृतिकाया वृत्तेरिष मनिस लयोषपादनाऽसम्भवादिति पूर्व-पचे प्राप्ने टीकाशयस्यं बिद्धान्तमाविष्करे।ति यथासिद्धेति । प्राणमनूत्का-मन्तं सर्वे प्राणा श्रनूत्ङ्यामन्तीति वागादीनामुत्क्रमणश्रुतेमेनिष स्वह्रपल-या न सम्भवतीति तत्प्रतिपादकत्वासम्भवाद् लाकसिद्धार्थानुवादकमिदं बाक्यमिति वक्तव्यम् । लेकि च मनिस व्यापारे स्थिते वाग्व्यापारे।परमे। दृष्ट इति तस्येवायमनुबाद इत्यर्थः । वृत्ति असत्त्वकथनमिति । यदापि तत्कर्यं न लेकिसिद्धार्थानुवादोपयागि वाम्वृत्तिलयहेतुत्वापयागकल्पने लेकिः षिद्धार्थानुवादे। ऽपि न सिद्धोद् मनसे। वाग्वृत्तिलयहेतुताया ले।कत: सिद्धामा-वात् तथाप्युपपदविभक्तितः कारकविभक्तेर्वतीयस्त्वान्मनर्वति सप्रम्या प्रती-यमानं वाम्बृत्तिलयं प्रत्यधिकरणकारकत्वं हातुं न युक्तम् । लोकिसद्धार्थानुवा-देनाधिकरणविशेषविधानसम्भवाद् ऋग्निज्वाला जले शाम्यतीत्यवाप्रकृताविष लयव्यवहारदर्शनाचेति तात्पर्धम् । येषां च सैात्रानुराव्द्व्याख्येति । यदापि सै। बस्यानु शब्दस्य भाष्ये सर्वाणीन्द्रियाणि मने। ऽनुवर्नते इत्यर्थे उतः तथापि सर्वागीन्द्रियाग्यनुगच्छन्तीत्येवमप्यर्थः सम्भवतीति तात्पर्यम् । प्राणमार्यतीति शेष इति । यच्चितस्तेनैव प्राणमायातीत्यतः प्राचीनस्य सम्पद्ममानेरित्यस्य तेनान्वया दिशितः न त्वध्याहार उक्तः ।

99 1 QE

तन्मनः प्रागाउत्तरात्॥३॥

एवं घटस्यापि शरावे लयापित्तिरिते। यदि शरावात्मकविकृत्य-न्तरावष्ट्रच्या त्रापे। घटरूपपृथिच्या न प्रकृतिरित्यतिप्रसङ्गः परिङ्गियेत तदा प्राणरूपविकृत्यन्तरावष्ट्रच्या त्रप्यापे। मनसे। न प्रकृतिरिति तुल्यमिति भावः ‡॥

^{*} मनोवनीति ५ पुः पाः। † सत्र प्रथमं वाग्धिकर्णं पूर्णम्।

[!] अन दिलीयं मनोधिकरणं पूर्णम् ।

सा उध्यन्ने तदुपगमादिभ्यः ॥ ४ ॥

मु३१। ६

प्राणजीवे वृत्तिलय उपचर्यतइति । ननु प्राणस्तेजधीति शुन्यनुधा-रेगोपगमनादिश्रुतिषु किमित्युपचारः कल्प्यते उपगमनादिश्रुत्यनुसारेग प्राग-स्तेजसीत्यवे।पचारः कल्यातां प्रणवृत्तिलयाधारस्य जीवस्य तेजिं वृत्तिलयात् प्राणस्य तेजवि वृत्तिलय उपचर्य्यतहित प्राणवृत्तिलयाधारत्वं तेजवस्य-प्रम्येव जीवस्य केन चिन्स्फुटं न प्रतीयते तदुण्जननादिमाचं तु तेजेाद्वारा उप्यु-पण्डमिति चेत् । एवं सप्रम्यां निह्नित्रश्रद्धस्तेजे।नन्तरं जीवनिवेशे ऽव्यव-कार्यं न लभते । तेजः परस्यां देवतायामित्यचापि सप्रम्या तेजसः परमा-त्मनि लग्रातीते:। एवं यथे।पचारकल्पनासंभव: समम्यवरीधश्च पचद्वये ऽपि तुल्यः तथा लै।क्रिकदृष्टान्तमद्वावा ऽपि तुल्यः । यथा पान्यः प्रथ**मं** नात्रिकेन संगत्य ततस्तेन सह तदीयां नावं गत्वा पारं प्राप्नेति तथा प्राण: प्रथमं जीवेन संगत्य ततस्तेन सह तेज:शब्दातां चिवृ-त्कृतभूतान्तरसंसृष्टुं तदीयं सूक्त्मशरीरं गत्वा तेन सह परां देवतां प्राप्ना-तीति जीवस्य प्रागतेने। मध्ये निवेशे दृष्टान्त: । यथा सार्यि: प्रथमं राज-कीयं रथं स्वयमारू है। राजसमीपं गत्वा पश्चाद्रयारू हेन तेन सहितस्तद-भिमतदेशं प्राग्नेति एवं जैवं मूद्मशरीरं प्राया: प्रथमं प्राप्य ततस्तत्प्राग्नेन जीवन सहित: परदेवतां प्राम्नोतीति जीवस्य तेजानन्तरनिवेशे दृष्टान्त:। तसात्पूर्वपचके।टै। नास्ति किं चिद्विनिगमकिमिति चेत्। उच्यते। विनि-गमकान्तराणां केाटिद्वयतै।ल्ये ऽपि लेकिसिद्धानुवादप्रायपाठः पूर्वपचे विनि-गमकः । तथा हि । यथा वागादिबाह्येन्द्रियव्यापारे।परमानन्तरमपि मना-व्यापारदर्शनाद् वाङ्गनिष संपदाते इन्द्रियैर्मनिष संपदामानैरिति स्रति: यथा च बाह्याभ्यन्तरज्ञाने।परमानन्तरमपि श्वासव्यापारदर्शनाद् मन: प्राग्र-इति श्रुति: तथा श्वासह्वप्राणव्यापारीवरमानन्तरमपि देहे क्व चिदौष्यय-दर्शनात् प्राग्यस्तेजधीति श्रुतिरपि लेकिसिद्धानुवादिनीति न प्राग्यतेजसे।र्मध्ये जीवस्य निवेश: । तेज: परस्यां देवतायामित्यस्य लेकिसिद्धानुवादकत्वा-संभवादुपगमनादियुत्यनुसारेगावश्यं क चिन्निवेशनीयस्य जीवस्य तेजःपर-देवतये।र्मध्ये निवेश: । ननु प्रागस्तेनसीति चिवृ*त्कृततेने।हृपदेहारम्भक-भूतम्बम्प्राप्यम्या तदुपहितजीवसंबन्धा ऽप्यवर्ज्जनीयतया सिद्धोद् उपाध्य-

[&]quot; तृथादात पुस्तकषु पाठः । एत्रमयः प्रि ।

वेदान्तकल्पतकपरिमले [अ. ४ पा. २ ऋघि. ३ पहितयोरेकतरसंबन्थस्य तदितरसंबन्धनियतत्वात् । स्रते। वाङ्मनसीत्या-दिक्रमे पृथाजीव: क्व चिदपि न निवेशनीय इति चेन्नायं नियमा ऽस्ति देहारम्भक्रमूतसूच्माणि जीवस्येव प्राणानामपि स्थितिगत्यास्पाधिमूनानीति प्राणगतेश्चेति* सूचे प्रतिपादितम् । न च वाङ्कनःप्राणानां पूर्वपूर्वस्यानरोत्तर-प्राप्पा तदुपाधिभूतसूच्मप्राप्रिनान्तरीयकतया सिद्धा तथात्वे प्रागस्ते जसीति पृथक् तत्प्राप्रेरवक्तव्यत्वापते: । तच यथापहितप्राप्यनन्तरम् उपाधिप्राप्रिः पृथगुच्यते एवमिहोपाधिप्राप्यनन्तरमुपहितप्राप्तिः पृथग्वतुमुचितेति पूर्वपः च्यमिप्राय: । एवमेवेममात्मानमिति भाष्येदाहृतश्रुतिवाक्यात् प्राचीनं दृष्टान्तवाक्यम् । तदाया । राजानं प्रयियांसन्तम् उगाः प्रत्येनसः सूतगा-मण्या ऽभिसमायन्तीति । तने।गाः वैश्याच्छूदायामुत्पन्नाः । प्रत्येनस्विन-स्तस्करादीन् प्रति दग्डियतृत्वेन नियुक्ताः । सूताः चिचयाद् ब्राह्मग्यामु-त्पन्नाः प्रतिले।मविशेषाः । यामएये। राज्ञा यामाधिकारे नियुक्ताः ।

ध्रव्य । १३

इदं दृष्टान्तवाक्यमधेता गृह्वात्येवंशब्दविवरणाय यथा यात्राया-मुचतमिति। अर्ध्वोच्छासित्वमिति। अर्ध्वोच्छासी भवतीत्यनेन अर्ध्वो-च्छामित्वमेतच्छब्दार्थं इति प्रदर्शितमित्यर्थः । इत्युपगमनश्रुतेरर्थं इति । यथा याचायामुद्यतमित्यादिप्रकारीयमुपगमनश्रुतेरर्थे इत्यर्थः । ननु उपगम-नादिकं न प्रायस्य जीवे वृत्तिलयसाधकं यतः जीवापगमनं जीवावस्थितिः श्वेत्युभयमपि प्राणस्य न श्रुतं किं त्विन्द्रियाणाम् । यतु प्राणस्यापि श्रुतं जीवा-नुत्क्रमणं तिद्वपरीतमाधकम् । तत्र विलीनतया तदाश्रयस्य हि महोत्क्र-मणं भवति न त्वनूत्क्रमणम् । उच्यते । वाङ्मनीम संपद्यते मनः प्राग्यइति वाक्याभ्यां साचान्मनाद्वारा च प्राणे विलीनतया सिद्धानां मनश्चचुरादीनां जीवाम्ययगाय जीवं प्रत्यागमनं जीवे ऽवस्थितिश्व प्रागस्य जीवाम्ययागां जीवं प्रत्यागमनं जीवे ऽवस्थितिं विना ऽनुपपन्नमित्येवमिन्द्रियापगमनाव-प्राग्रापगमनावस्थित्याचेपकतयात्तमाध्यमाधकता । अनूत्क्रमणं यदापि न वृत्तिविलयसाधकं तथापि तद्वचनं तच विलये सत्येव दृष्टं यथा प्राणमनूत्कामन्तं सर्वे प्रागा अनूत्कामन्तीति तत्सामान्यात् तमुत्कामन्त-मिति वचनस्यापि तच विलयसाधकता।

^{*} व्याः सुः भाः ३ घाः १ सुः ३।

तत्सहितेन्द्रियसमुद्रायवचन इति । विज्ञानशब्दो भावकरण- ५३१ । १८ व्यत्पत्तिद्वयेन प्रारब्धकर्मफलप्रकाशस्येन्द्रिययामस्य च तन्त्रन्यायेन वाचक इति तत्साहित्यं जीवस्य सविज्ञान इत्येवे।च्यतइति भाव: । तेजे।ऽध्यन्त्-जीवलत्त्णासंभवादिति । मार्गपर्वमु वायुवरुणादीनामिव जीवस्य पृथक् क्क चिन्निवेशो न कल्पाते किं तूपगमनादिश्तिबलादवश्योपसंहार्य्यस्य जीव-स्योपसंहाराथं तेज:शब्दस्य तदुर्णहते जीवे वृत्ति: कल्प्यते । उपाधिवाच-कस्य तद्विशिष्टोपहिते गुणवाचकस्य गुणविशिष्टात्रयदव लचगोपपते: । तिस्मिन्नेतिस्मन्नमे देवाः श्रद्धां जुहूतीत्यच श्रद्धाशब्दस्याप्स् लाचणित्रस्य विवृत्करग्रेनान्वितेषु भूनान्तरेष्वय्युपलचग्रनामुक्षा तदुपहितजीवपर्य्यन्तं लच-याङ्गीकृता दह तेजावाचकस्यैव तत्पर्यन्तलच्चणीङ्गीकारे का ऽनुपर्णतरित भावः । ननु तस्य तेजेाद्वारेणेति । तेजः शब्दस्य जीवलवगा न युक्ता । प्रायस्ते जसीत्यस्य लेकिसिद्धानुवादकत्वाभावापते: । त्रतः प्रायस्य जीववृ-तिलय एवापगमनादिश्रुतिसिद्धः प्राणावृत्तिलयाधारस्य तेजसे। जीवे वृत्तिलया ऽस्तीत्येतदवलम्ब्यीपचारिका ऽस्त्विति भाव:। यदापि प्रायास्य जीवे वृत्तिलया न श्रुतः किं त्विन्द्रियोपगमादिप्रवालिकया ऽऽचेप्यः तथापि स गव तेजाद्वारक-त्वेनामुख्यो ऽस्त्वित तात्पर्य्यम् । घ्यवधानादेवेति । परमात्मिन खलु तेजसे। लयः प्रसिद्धः स जीवात्मन्युपचर्यते चेत् साचाल्लय उपचर्यते व्य-बहिता वा । नादाः । परमात्मन्यपि तेजसः साचाल्लयाऽप्रसिद्धेः । न द्वि-तीय: । घटाद।विष परमात्मविकारे लयापचारप्रसङ्गादित्यर्थ: ।

ननु तेजसे। जीवे स्वरूपलये। नेष्यते किं तु वृत्तिलयः स त्वने।पर्चारिक एव संभवतीत्याशङ्काह वृत्तिलयस्तिवति । वाङ्मनसीत्यादिक्रमे ५३२ । २
तेजो जीवहति पर्वान्तरं प्रमाणान्तरिषद्धिमिति कल्यते उत्तीपगमनादिश्वतिप्राणिता जीवः क्व चित्तिवेशनीय इति कल्यते । नाद्यः । वाङ्मनसीत्यादाविव प्रमाणान्तराभावात् । न हि प्राणव्यापारे स्वासे देहे।स्मणि च निवृत्ते
ऽपि जीवसत्तायां तिच्चहानुवृत्तिरस्ति । न द्वितीयः । श्रुतस्यैव तेजःशब्दस्य तदुपहितजीवबेश्यकत्वे।पपत्ता क्रमिकपर्वान्तरतद्वे।धकवाक्यान्तरकल्पनागीरवाऽयोगात् । प्राणस्तेजसीत्यस्य लोकसिद्धानुवादकत्वं तु विशेषणांशसत्ताविषयत्या ऽप्युपपद्मम् । विशेष्यभूतजीवांशे तु सप्रम्यर्थप्राणवृत्तिलया-

धारत्वम् । इदं तु विन्त्यते । वाङ्कमहीत्यादियुत्तेरिन्द्रियमंनिष संपद्यमानिर्याद्वितस्तेनैव प्राणमायाति प्राणस्तेनसा युक्तः सहात्मनेति युत्यन्तरानुसारेण व्याख्यानं सूनकारैः किमित न कृतं तदनुसारेण हि वाङ्कमसीत्यनेन वागुपलितानां बाह्योन्द्रियाणां (मनडपहिते जीवे लय उच्यतहित व्याख्येयम् । दृष्टो हि मनःशब्दस्य जीवे प्रयोगः प्राणबन्धनं हि सेम्प्यमन हित । मनः प्राणहत्यनेन विलीनसक्तनबाह्योन्द्रियाणां) मनडपहितस्य जीवस्य प्राणप्राप्रिस्च्यतहित व्याख्येयम् । प्राणस्तेनसीत्यान्याम् प्राणस्योदानयागं उच्यतहित व्याख्येयम् । प्राणस्तेनसीत्यायः । वाङ्कमसीत्याद्वित्रस्य प्राणप्राप्रिस्च्यतहित व्याख्येयमिति । अनायमिप्रायः । वाङ्कमसीत्याद्वित्रसिलीकसिद्धक्रमानुसारेण प्रयुक्ता तद्वेपरीत्येन प्रवृत्तिमत कष्मण उपन्याद्वित्रस्तिकिसिद्धक्रमानुसारेण प्रयुक्ता तद्वेपरीत्येन प्रवृत्तिमत कष्मण उपन्याद्वित्रस्तिकिसिद्धक्रमानुसारेण प्रयुक्ता तद्वेपरीत्येन प्रवृत्तिमत कष्मण उपन्यास्य प्रयमं पठितः । स्रतः स्रत्यन्तरमेवान्यणा व्याख्येयम् । (यद्वितस्तेनैव प्राणमायातीत्यनेन चीणसकलेन्द्रियवृत्तिर्थीक्तव्यक्तस्तुरणमान्यमः प्राणव्यापारमान्यविषेवस्तिष्ठतीत्युच्यते न तु प्राणाधिकरणकवृत्तिलयं) प्राप्नोतीत्युच्यते न तु प्राणाधिकरणकवृत्तिलयं) प्राप्नोतीत्युच्यते न तु प्राणाधिकरणकवृत्तिलयं) प्राप्नोतीत्युच्यते न तु प्राणाधिकरणकवृत्तिलयं । स्वत्यन्तरे तेनःशब्दस्तु पूर्वसंदर्भानुसारेणादानपर इह तु लाकसिद्धक्रमानुवादेन निवृत्कृततेनः। परतेन तस्योचितिति ।

ननु चेयं श्रुतिरित्यादिभाष्यस्य तेजः सहचरितानीत्यादिटीकाग्र-चेन टर्शिते उर्थे तस्य भाष्यटीकासूचितां योजनां दर्शयित प्राणेना-धारत्वेनिति । अव प्राणस्याधारेण जीवेन संपर्कस्तेजः शब्दोपलिचतभूत-संबन्धात् प्राचीना न निषेध्यत्वेनानूद्यते अधिकावापस्यानिभमतत्वात् किंतु भूतप्राप्रिसमयभावित्वेन सिद्धान्ताभिमता उनूद्यते । श्रुतिर्दर्शयतीति भाष्यस्यानेनान्वये सित न दर्शयतीति लभ्यते तेजस इति भूतमावस्य प्राध्यत्वं निर्दिश्यतहति जीवपयन्तलवणामनपेन्द्ये उमुक्तम् । तदपेचायां तु जीवस्यापि प्राप्यत्वं निर्दिश्यतस्य । हेतुप्रतिज्ञयोरिति । सून्यविषये खलुतेजोमाचं वा भूतपञ्चकं वेति विवादः । तत्र कार्यस्य स्थूलगरीरस्यानेका-रमकत्वोक्तिर्व्यधिकरणेति शङ्कार्थः ।

धुइर । २१

समाना चामृत्युयक्रमादमृतत्वं चानुपाष्य ॥ ० ॥

^{🧚 ()} एतटन्तर्गतो यन्यानास्ति ५ पुः।

^{+ ()} गतन्मध्यमा ग्रन्थो न दृत्र्यते ५ पु.।

[!] अत्र तृतीयम् **बाध्यताधिकरणं** पूर्णम् ।

अत्राधिकरणविषयभूतेति । इहाऽमृतत्वफलयवणेन मगुणविदामु-स्क्रान्त्यभावः शङ्काते ऽपृतत्वफलं च धगुणविद्यासु दहरविद्यायां सूयते । श्रतो दहरविद्याधिकरणविषय इति भाव: । यदि विद्यया ऽमृतमञ्नुलइति श्रुति: सकलसगुणविद्यासाधारणी तदा तच बहरविद्याग्रहणं सगुणविद्यान्त-राणामप्युपलचणं द्रष्ट्रव्यम् । ननु दहरविद्यायां तयार्ध्वमायन् ऋमृतत्वमेनी-त्यवामृतत्वफलं यूयते तवैवात्क्रान्ताविष यूयमागायां क्यं तदभावेन पूर्वपद्य इत्याशङ्का न वास्तवा ऽयं पूर्वणच इति टीकायामेव द्यातितमित्याह तयोध्वीमिति । ननु न तु विदुषः सक्राशादित्यादिना व्याघाता भवेदित्य-न्तेन टीकाग्रन्थेन विदुषः सकाशादविदुषां विशेषवन्वात्क्रान्तिने विधीयते तथा सित विद्याप्रकरगाव्याचातः स्यादित्युच्यते ऋयं प्रस्कप्रतिषेधः वि-द्याप्रकरणाद् विदुषः खलूत्क्रान्तिशङ्का प्रवृता स्रत स्राष्ट्र येन हेतुनेति। विद्याप्रकर्गो स्वापादिवदुत्क्रान्तेरप्यनुवाद गव न विधानमित्युक्यनन्तरं विधानं कि न स्यादित्याशङ्कायां किमविदुषे। विधानं विदुषे। वेति विकल्पं मनिष निष्यायाद्यविकल्पः प्रकरणविरोधेन टीकायां निरस्तः । ऋमृत-त्वफलविरोधेन द्वितीयविकल्पनिरामः स्पष्ट इति तच काउता न कृत इति भावः । यद्यपि वाङ्मनसि संवद्यतहत्यादिश्रुतिने सगुणविद्याप्रकरणा-म्बाता तथापि सगुग्रानिर्गुग्रविद्याविशेषाविवेचनेन तामवलम्ब्य सगुग्रविदाः मुत्क्रान्तिप्रतिपादनमाशङ्कितं स्वापादिवत्साधारायेन प्राप्राया उत्क्रान्तेरनुकी-र्ननिमिति परिहारश्च कृत:। अस्य फलं प्रतिषेधादिति चे*दित्यधिकर-यिषिद्धान्ते द्रष्ट्रत्र्यम् । सगुण्ब्रह्मप्राप्तिमात्रस्येति । गतिश्रुतिबलाल् ले। ऋविशेषे तत्प्राप्तिरेव फलपर्य्यन्तेति भाव†: ॥

तदापीतेः संसारव्यपदेशात्॥ ६॥

पुरुष् । २०

स एवाचापि न सिद्ध इति । ननु सुष्प्रस्य सत्सम्पत्तिः सावशे-षेति स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्य‡ इत्यधिकरणे विद्याकर्मविध्यन्यथा-नुषपत्या समर्थितं स न्याय इहापि तुल्यः कथमद्यापि न सिद्ध इत्युक्तम् ।

^{*} व्या· सू· श्र· ४ पा· २ सू· ९२।

[†] अत्र चतुर्थम् त्रासृत्युपक्रमाधिकरणं पूर्णम् ।

[‡] व्या सू॰ भ• ३ पा॰ २ सू॰ **६**।

उचाते । सुप्र यत्र प्रबुध्यतङ्त्यच क्रमानुस्मृतिशब्दाः सन्त्यनन्ययासिद्धा हेतव: इह तु विधिमाचं तच कर्मविधीनाम् अविद्वद्विषयत्वेन चारि-तार्थ्ये स्पष्टम् । विद्याविधयस्तु द्विविधा अचिरादिप्राप्यब्राह्मले। किकपल-भागयुतिमन्तस्तद्रहिताश्च तचाद्येषु निरवशेषलयासम्भवे ऽपि द्वितीयेषु धम्भवतीति तद्विषयत्वेन निरवशेषलयप्रतिपादकत्वसमर्थनसम्भवे किमर्थे सावशेषलयप्रतिपादकत्वं कल्यम् । ननु परदेवतासम्प्रतिवचनस्य ब्रह्म-विद्विषयत्वे प्रकरणान्निर्गुणब्रस्मविद्यानिषयता स्यात् तट्टेहारम्भकभूतानां निरवशेषसम्पतिरिष्ठेव कलाप्रलयाधिकर्गे तथा बन्धमाग्रत्वात् । तथा च पूर्वेपचः सिद्धान्त्यनिष्ठार्थेविषया न स्यादिति चेन्न । निर्गुणब्रह्मविदेा मिथ्याचाने।पन्नेतवाङ्गन:प्रभृतिलयस्य स्वप्रप्रवञ्चविलयवद्यै।गपद्येन वाङ्गनसी-त्यादिकस्य निर्गुणप्रकरणपठितस्यापि लचणादिवत्सम्भवात् सगुणविद्या-न्वयकल्पनात् । एवं चानियम: सर्वेषा*मित्यच।चिरादिगते: सकलगुण-विद्यासाधारण्यं यदुक्तं तस्यायमाचेषः । ये चेमे ऽरण्ये इत्यादि वचनं श्रुत-ब्राह्मलै।किकफले।पभे।गविद्यामाचविषयमस्त्विति । यञ्च पूर्व।धिकरग्रे सकलगु-गविद्यासाधारगयेनेत्ऋान्तिसमधेनं तस्याप्याचेप इति पूर्वाधिकरगसङ्गति:। भ्रनेन प्राचामप्यधिकरणानामिति । तेष्वधिकरणेषु वागादीनां मन:-प्रभृतिषु यः स्वरूपलयपूर्वपचस्तस्य चेदं प्रयोजनं यत्सगुणविद्यासु काश्चिद् मुत्तिफलाः काश्चिद् ब्रह्मले।कावाधिफला इति विभागः । न च सगुगवि-द्यायां मुन्यनुपपत्तिः । ब्रह्मलेक्प्राप्रिपर्यन्तामु क्रममुक्तिफलामु ब्रह्मलेकि हिरग्यगभादिव प्रकृताधिकरगविषयभूतासु समुगविद्यासु देहवियागकाले षाचात्कृतात् सगुगब्रह्मणा निर्गुगविद्योपदेशलाभेन तदुपपत्ते: ।

सगुणविद्यायामनुचिन्तनार्थमिति। यदापि वागादिवृत्तिलये 438 I 8 ऽप्येतत्प्रयोजनं वर्तुं शक्यं तथाप्येतदेव प्रयोजनं प्राग्रस्याध्यचे वृत्तिलय-

निह्नुपणस्य तेषां न्वन्यदपि प्रयाजनमस्तीति भावः । श्रनायं सिद्धान्तः । सत्यमुपासतहति सामान्यशुत्या सकलसगुगविद्यानाम् ऋचिरादिगतिसिद्धी

तेजः परस्यामित्यस्य सगुर्णावद्याविशेषेषु निरवशेषलयपरत्वं कल्पयितुं न युक्तं तत्कल्पनाया विलम्बितत्वात् । तथापि सत्यमुपासतहित सामान्य-

^{*} व्याः सुः भः ३ याः ३ सुः ३०। । । श्रृष्टाचित्तवार्थे इति ॥ पुः ग्राः।

श्रुतिः सवैन् सगुणविद्याविशेषान् शीद्यमाक्रामित तेषः परस्यामित्यस्य निर
वशेषलयपरत्वमेव तावच्छव्दसामध्येन न प्राप्तं प्रत्युत वाङ्मनसीत्यादिप्रक्र
मात् सावशेषलयपरत्वप्राप्तौ प्रकृतिलयत्विल्विन प्रायपाठमुपमृद्य कल्पनी
यम् । तत्तश्व वाङ्मनसीत्यादेनिर्गृणविद्यायामनन्वयाद्विरवशेषभूतलयस्य

सुमूष्कंसामान्याऽनन्वयाद्व सगुणविद्यासु काश्चित्परिष्टृत्य कासु विदुत्कषेः कल्प
नीयः । श्रतः शीद्यप्रवृत्तिकोदाष्ट्रतसामान्यश्रुत्यसङ्कोचाय यथाक्रमं यथाश्च
तमित्यादिसामान्यश्रुतिसङ्कोचाय च सेषुप्रिक्षलयश्चतिद्व प्रकृतिलयत्विल्वं

वाधित्वा सावशेषलयपरत्वं कल्पियतुं युक्तम् । तथा सित वाङ्मन
सीत्यारभ्य प्रतीतं सक्लोत्क्रममाणसाधारस्यमपि न त्यक्तं भवित ।

पूर्वाधिकरणाक्रप्रकारेण सुषुप्र्यादिकीनेनवदुत्क्रान्तिक्रमकीनेनस्यापि तत्वम
सिप्रतिपादनशेषतया प्रकरणान्वयात् तत उत्कर्षा ऽपि न कल्पितो भव
तीति । सकस्य सम्पद्यतद्दयस्य वाक्यस्य चतुष्ट्रयान्वियने। वाक्यस्य

वृतिलयपरत्वं चतुर्थवाक्र्ये स्वस्तुपलयपरत्विमिति वैद्धप्यं च परिदृतं

भवित ।

स्पविदिति हेतुगर्भविशेषण्मिति । अनेन स्पवत्वं हेत्वोः ध्३४ । १ प्रविष्टमिति द्रिशंतम् । उपलब्धव्यमिति प्रतिहन्येतेति चेत्रया तर्कस्पियसनुमानद्वयमिति सूचितम् । यदि महत्वे धित स्ववद्व हृद्वव्यारब्थत्वे धित स्वपबच्च सूच्मश्ररीरं यदि देहिन्निगंच्छेतदा चत्तुःस्पर्शनाभ्यामुपलभ्येत मूर्तान्तरेश्व प्रतिहन्येतेति तर्कश्ररीरम् । प्रभा तेजधे। स्वपं तदनुमेयं तदाश्रयद्वव्यमिति
मतावलम्बनादाद्यतर्कस्य न प्रभायां व्यभिचारः । प्रभादव्यं चानुषमिति पचे तु
चतुषेपलभ्येतित्येवापाद्यं प्रतिहननयोग्यत्वं द्वितीयमापाद्यन्तेन गितप्रतिपत्तिक्षूचान्तरसंबन्थरहितात्पन्नविनष्टे न व्यभिचारः । महत्त्वबहुद्वव्यारब्धत्वाभ्यामिति प्रथमधाध्याभिप्रायेण द्वितीयं तु तयोरस्त्येव बुद्धाद्याद्वेते
तयोरप्यप्रवेशात् तच मूर्तत्वमाचमेव धाधनं पर्याप्रम् । एतत्स्त्रज्ञाकाङ्चाधमिति । आपीतेरवितष्ठते चेति चकारस्य प्रथमसूचेणाय्यन्वये सित सूच्मरोरविषये श्रन्यदिष किं चिद्वत्तव्यमस्तीति तेन द्योतनात्विं वत्तव्यमित्याकाङ्वोदेतीति भावः । श्रनेन पूर्वसूचस्य स्वरसत एतत्यूचाकाङ्का नास्ति पूच्मश्रीरस्य देहिन्निगंमने तत्पार्थस्थैहपलभ्येतहति प्रतिहत्तं विविद्वति श्रवाया-

स्तुच्छत्वात् । श्रविदुषामिव विदुषामिष पार्श्वस्यैरनुपलभ्यमानस्येव तस्य नयनमरीचिवन्निर्गमने।पपते: स्पष्टत्वात् । नयनमरीचे: काचाभ्रपटलत्वादिभिः केश्चिदिव सूच्चगरीरस्य सर्वेरप्यप्रतिघातस्याविद्वद्विषये ऽवश्यवक्तव्यत्वाद्य । एवं च स्वारिक्काकाङ्वासंपादनार्थमेव स्वरूपतः प्रमाणतश्चेति स्वस्थानण्व स्वरूपसमुद्ययार्थत्वेन प्रतिष्ठितस्य भिन्नक्रमतया ऽप्यन्वया दिर्श्वतः । ननु चतु-ध्यनेक्वान्तिकत्वमाहेत्युक्तं टीकायां कथं चाचुषशब्दः न तु चचुरेव चचुःसंब-च्यीत्यता व्याच्छे यथा चाचुषस्येति । चनुष्ठपादानं तेजः चचुःसंबन्धान्ना-च्यीत्यता व्याच्छे यथा चाचुषस्येति । चनुष्ठपादानं तेजः चचुःसंबन्धान्ना-चुषमित्युक्तं पृथिवीद्यगुक्तसमवायिकारणं परमाणुः पार्थिवपरमाणुरिति । लिङ्ग-श्वरिरस्येति शेष इति । परिमाणतः सूचममिति पाठे लिङ्गशरीरिमिति शेषः ।

39 1 8FB

अस्वच्छत्वसुपाधिमिति । यावन्यूनेप्रतिहननीयत्वं साध्यं तेन काचाभ्रपटलाद्यप्रतिह्ननीये नयननिराकरणादी न साध्याव्याप्रि:। नेापपृ-द्यतद्वित शेष इति टीकावाक्यस्य भाष्यस्यशब्देन पूर्णं कृतं सूचे उपपत्ति-शब्दो न सूरमपरे। व्याख्येय:। भाष्यकारैह्यमिमप्रत्यचस्य सूरमशरीरे प्रमा-गतयोपन्यस्तत्वात् । न च तस्य स्यूलदेहातिरिक्तविषयत्वे युक्तिरपि तेहपन्यस्तिति वाच्यम् । प्रत्यवस्य विषयपरिशोधने खलु सा युक्तिः न तु प्रत्यचिषये ऽते। यथा व्यक्तीनां परस्परव्यावृत्तत्वेनानुगतप्रत्ययविषयत्वं नापपदातइति युन्या परिशाधितविषयम् ऋनुगतपचमेव * व्यावृत्तव्यत्य-तिरिक्तानुवृत्तवामान्यसङ्घावे प्रमाणम् एविमहाप्यनुवृत्तदेहविषयत्वानुपपति-युक्तया परिशोधिनविषयं व्यावृतोष्मिमप्रत्यचमेव तदाश्रयद्रव्यस्यापि याहकं स्थू नदेहािनिसिस्बूहमदेहे प्रमाणं न युक्तिरित्यभिसंधिमता टीगा-कृता उपपत्ति: प्राप्तिरिति व्याख्यातं तनापि ग्रामप्राप्नादिवदिह कस्य चित्राप्रिने दृश्यतदत्यनुपर्पातं दृष्ट्वा व्याच्छे प्राप्तिली भ इति । लाभाव सद्वा-वावगम: अनेनायमधा लभ्यतहत्यादी तच प्रयागात् । तथा च स्थूलदेहातिरि-क्तमूदमदेहस्यैवायमूष्मा स्थूलदेहव्यावृतोष्मिमप्रत्यवेग तत्सद्वावावगमादिति सूचार्थे इति तात्पर्य्यम् । उपपतिशब्देन प्रत्यचिषयपरिशोधक्रयुक्तिग्रह्योपि न देषः । तस्यापि सूदमशरीरसिद्धौ परंपरयोपयोगाद् भाष्यस्वारस्याच्च । श्रुतं

 ^{*} अनुगतपत्तमेव व्यावृत्तत्वेनानुगतप्रत्ययिवयत्वं नेगयपद्मतद्वित युत्त्या परिधोधित-विषयम् अनुगतपत्तमेविति १-५ पुः पाः । पैनिकत्त्यालोचनयोपिर स नाटृतः ।

कर्णेषि धार्य श्रवणमिति इदं भाष्यं स्पष्टमिति टीकोक्तमिति गृष्टीतम् । (इदं स्पार्थनप्रत्यविमव* मृतशरीरे देहोप्मापगमानन्तरं कर्णपिथाने तदीयस्य परकीयस्य वा शब्दभावप्रत्यवस्याभावात् किं तु) † जीवदवस्थायां तदीयन केवलभावप्रत्यवेण कर्णेपिथानापेवासामर्थ्यलब्धान्तर्रावषयेण स्थूलगरीरातिरिक्तमूदमदेहसिद्धिविविचिता । ज्योतिरिधकरणे ‡ पिहितकर्णेपुटेन श्रूयमाण श्रान्तर: शब्दो जाठराग्निरित्युक्तम् इह तु जाठराग्निरिष्
सूदमदेहानुप्रविष्ठ इत्येवमुक्तं तदनन्तरप्रतिपत्यधिकरण्ईदर्शितस्थायसिद्धे: सूदमशरीरे प्रसङ्गादिह प्रमाणान्तरमप्यस्तीति दर्शितम्॥ ॥

प्रतिषेधादिति चेन्न शारीरात्॥ १२॥

भु३८ । २२

प्राखेषितवित्रमूदमशरीरस्येति पदं बहुवी हिणा जीवात्मविशेषण-मिति दर्शयति सूर्मं शरीरं यस्येति । प्राणात्कान्त्यनुत्क्रान्तिविचारः प्रागो।पलिवतम्हमगरीरोपहितजीवविषयः पर्य्यवस्यतीति भावः । सिद्धान्त इत्यर्थ इति । यनायं पुरुषा म्रियते उदस्मात्मायाः क्रामन्त्याहे। नेति पृष्ठ्योः पचये।नैति होवाचेति या वत्तव्यः सिद्धान्तस्तिसिद्वित्यर्थः । संसारिषा एवेत्ययुक्तं प्रश्नप्रतिवचनयार्विद्वद्विषयत्वस्य सिद्धान्त्यभिमतत्वादि-त्याशङ्का विदुषा हिरएयगर्भलोकप्राप्यनन्तरं मुक्तिरिति पूर्वपविनराकरणार्थे विदुष एव संसारमग्डलवर्तित्वावस्थाप्रदर्शनार्थे तद्विशेषग्रमिति व्याच्छे यदुक्तमित्यादिना । नन्वेत्रमप्यस्विवदुष इति टीकायन्थेनार्तभागप्रश्नोतरे वर्ण्यमानानुत्क्रान्तिरविद्वद्विषयेत्याशङ्काते इयमाशङ्का पूर्वपिचेणा न युक्ता । स ह्यविदुष इव विदुषो ऽप्युत्क्रान्तिरस्तीति मन्यते त्रतस्तटस्यशङ्क्रेय-मिति व्याच्छे मध्ये कश्चिदिति । ब्रह्मविदुत्क्रान्तिसिद्धेस्वत्यचासिद्धि-रिति ब्रह्मविदे। उनुत्कान्तावार्नभागप्रश्ने।तरं खलु प्रमाणिमिति सिद्धान्ति-ने।पन्यस्तं तच्चेदन्यविषयं भवेत् तदा न पिद्धान्त्यभिमतिपिद्धिरिति तावता धन्तुष्टुस्य तटस्यस्येयमाशङ्केति भाव:। यदि पूर्वपविषा ग्वेयमाशङ्का तदैव-मिम्राया वर्णनीय: । यवायं पुरुषा म्रियते इत्यादार्तमागप्रश्नायमिद्धिद्वषय

^{*} प्रत्यचमिव भावाभावयानियमादित्यधिकं १ पु ।

^{† ()} स्तन्मध्यस्या ग्रन्था नावनभ्यते ५ पु.।

[‡] व्ययः सून्त्र २ पान्धः सून् ९४ । ुव्यान्सून्त्रयः ३ पान् ९ सून् ९ । ∥ अस्त्र पञ्चमेसंसारव्यपदेशाधिकरशां प्रश्लेम् ।

गव उत्तरमन्द्रमें यवास्य पुरुषस्य मृतस्याग्नि वागय्येति वातं प्राणश्वचुरादित्यं मनश्वन्द्रं दिशः श्रोवं पृथिवीं शरीरमाकाशमात्मेषधीलीमानि वनस्पतीन् केशाः श्रप्स लोहितं च रेतश्व धीयते क्षायं तदा पुरुषो भवतीत्यार्तभागप्रश्ने याच्चवल्क्येनार्तभागेन च रहांस संमन्त्रणेन पुर्ययापस्त्रपं कर्म
तदाश्रयत्वेन निश्चितमिति प्रतिपादनात् । तव हि श्रूयते ते। होत्क्रम्य
मन्त्रयां चक्राते ते। ह यदूचतुः कर्म हैव तदूचतुः । श्रथ यत्प्रशर्यसतुः
कर्म हैव तत्प्रशर्यसतुः । पुर्यो व पुर्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति ।
तस्मादार्त्तभागप्रश्नेषि शरीरादुत्क्रान्तिन्नं प्रतिषिध्यते । श्रविदुषस्तदवश्यंभावात् किं त् शरीरादेवेति ।

भु३५। ९

मृत्युमृत्योः परदेवतायाः प्रस्तुतत्वादिति । ननु तचानिर्वे मृत्युः से।पामन्नमिति तदनन्तरवाक्ये सर्वेदाहको ऽग्निमृत्युः तदुपशान्ति-कारगान्यापा मृत्युमृत्युरिति श्रुत्येत्र विवरगं कृतम् त्रत स्तत्र न परा देवता प्रकृतेति चेद् उचाते । इन्द्रियतिद्वषयेषु भूतग्रहवद् गृहीत्वा संसारियां बन्धकत्वतदुत्कषीभ्यां यहातियहशब्दितेषु याच्चवल्क्येन वर्षि-तेषु पुनरार्तभागस्य यः प्रश्नः र्याददं सर्वे मृत्ये।रत्नं का स्वित्सा देवता यस्या मृत्युरन्नमिति न तस्याग्निविनाशिका त्रापो विषय: पूर्वप्रश्नपस्तुता-नुबन्धेने।नरोत्तरप्रश्नप्रवृत्तेः प्रकरणे दर्शनात् किं तु सर्वेमिदं जीव-चातं यहातियहलचणस्य मृत्ये।रत्नं भवति तस्य मृत्युभूता देवता कतमेति संसारबन्धोच्छेदिका देवता प्रश्नस्य विषय: सा मृत्युर्वस्योपसेचनमिति मुत्यन्तरप्रसिद्धा परदेवंतेत्युत्तरमभिद्रेत्य मृत्योरपि मृत्युसद्भावसंभाव-नार्थम् अन्तिवै मृत्युः से।पामन्नमिति दृष्टान्तः प्रदर्शितः । तस्माद्विद्वद्वि-षयमेव पूर्ववाम्यमिति तदनुसारेगातरवाक्यमि विदुष ग्वात्क्रान्तिप्रति-षेधकम् । न च यचास्य पुरुषस्येति तदनन्तरवाक्यस्याविद्वद्विषयत्वाद् श्रस्यापि तद्विषयत्वं शङ्कनीयम् । अविद्वद्विषयस्य प्रषज्जकान्तरेग प्राप्ने: । तथा हि । विदुषः प्रागानामनुत्क्रमणे तेषामचैत्र विलये च वर्णिते विदुषः प्राग एव विलीयते उत तत्प्रयोजकमगीति भावेन यवायं पुरुषे। म्रियते किमेनं न जहातीति पृष्टे नामेत्याहेतीति नाममाचमविषयते तत्प्रयाजकमपि विली-

^{*} ग्ररीरादेवेतीत्वेतदये उदस्मात् प्राणा इत्वधिकं ५ पुः ।

यते अन्यया माचानुपपतिरित्युत्तरमुक्तमिति श्रुत्या प्रदर्शितं तत्प्रसङ्गात-त्प्रयोजकमेव किं तच हि कालस्वभावनियतियदृच्छादिविषया महान्विवादे। ऽस्तीत्यभिप्रायेण यवास्य पुरुषस्येत्यादिः क्वायं तदा पुरुषे भवतीत्यन्तः प्रश्न: बहुविवादविषयस्य महाजनसमत्तं निर्णयो मा भूदिति रहसि तदु-तरकथनं च ऋता नातरप्रश्नस्याविद्वद्विषयतामाचेणास्य प्रश्नस्योपक्रमावगतं विद्वद्विषयत्वमपैतीति विद्वद्विषयमेवात्क्रान्तिप्रतिषेधवाक्यम् । नन्वस्त्वेवं तथापि न तस्मात्प्राणा उत्क्रामन्तीति वाक्यइवादस्मात्प्राणाः क्रामन्तीति वाक्ये ऽपि विद्वज्जीवापादानकस्यैवात्क्रमगस्य प्रतिषेथ: न तच्छरीरापा-दानकस्य यनायं पुरुषे। मियतइत्यनायं पुरुष इत्यस्य ऋपपुनर्मृत्युं जयतीति पूर्ववाक्यान्तप्रस्तुतविद्वज्जीवविषयत्वात् तदनुसारेगास्मात्प्रागा इति वाक्ये ऽपि अस्मादित्यस्य तद्विषयत्वातच्छरीरविषयतायान्तदभेदोपचारकल्पना-पते:। ननूत्क्रान्त्यभावे मृतो न स्यादिति शङ्कानिवारणार्थे मृतिचिह्नप्रदर्शनेन मृतत्वोपपादनाय प्रवृत्ते च उच्छ्रयतीति समनन्तरवाक्ये दृतिवद्वायुना पूर-गम्च्छ्रयनं च शरीरधर्मः कीन्येतइति चेद् भवतु तावता तच स इत्यस्य शरीर्घभेदे।पचारः शरीरे न त्विग्रमानुपपितपरिहाराथै प्रथममेव तथापचारः कल्पनीय: । उच्यते । यदादस्मादित्यादिवाक्यस्य जीवाचीत्क्रामन्ति प्राग्रा जीवं विहाय तेन महैव गच्छन्तीत्यर्थः कल्प्यते तदा किमेनं (न जहती-त्यग्रिमप्रश्नोप्यनुपपन्न: स्यात् प्राणा विद्वांसं जहतीत्यथाङ्गीकारे किमे=)* न जहतीति प्रश्न उपपदाते ऋता ऽधिमप्रश्नस्याप्युपपन्यर्थम् श्रसाः दित्यस्य शरीरसंबन्धेन शरीरे लवगा कल्पयितुमुविता न तु समुच्छ्यतीः त्यव स इत्यस्य । एवं च तदानीमसता शरीरसंबन्धेन सन्निकृष्टां लवगां परिगृह्य तदानीमसता तेन विप्रकृष्टा लवणा च परित्यका भवति । किं च यच शरीरे स्थिते। ऽयं पुरुषे। म्रियते अस्मादित्येवं यच्छब्दिनिर्दिष्ट-शरीरप्रत्यवमर्शकत्वकल्पनायाम् स्रोद्मादित्यस्य शरीरे मुख्यवृत्तिरपि लभ्यते तस्मादार्तभागप्रश्नो विदुषः प्राणात्क्रान्तिप्रतिषेधार्थे इति तत्सा-म्याद् न तस्मादिति वाक्यान्तरस्यापि तादर्थ्यमङ्गीक्षर्तव्यमिति युक्तमेव । तदेत्सर्वमभिप्रेत्ये।क्तम् उत्कान्त्यवधेरुच्छ्वयनादिनिर्देशस्यान्यथाने-

^{* ()} एतन्मध्यगे। ग्रन्थे। नास्ति ५ पु.।

तुमराक्यत्वादिति । श्रिपं च द्वयेनेति । नन्वादोनापिषेति ग्रन्थेन पूर्वपचे प्रमत्तप्रतिषेधताता सा न युक्ता तस्य तावदेव चिरमिति देहान्तएष ब्रह्मप्राप्तिप्रतिपादिकया ग्रुत्या प्रसक्तिसम्भवादिति चेद् न । तया हि जीवं विहाय जीवादूर्ध्वगमनहृषात्क्रान्तिने प्रसच्यते क्षिं तु प्रविलयेन जीवप्रहा-ग्रमेव । श्रता ऽप्रसक्तप्रतिषेधत्वापितदूषग्रमिष युक्तमेव * ॥

ध्रुध् । १८

तानि परे तथा ह्याह ॥ १५ ॥

प्रतिष्ठाविलयनयुती इति स्थाने प्रतिष्ठये।रवान्तरप्रकृतिमाह प्रकृत्योलि- क्ष्यरीरविलयनयुती इति क चित्याटः । तचाप्रयेता न भेदः । यथेमा नद्यः स्यन्द्रमानाः समुद्रायणाः प्राप्यास्तं गच्छन्तीति दृष्टान्तवाक्यार्थानुत्रक्षः मग्रपूर्वकम् ग्रवंशब्दार्थमाह यथा नद्य इति । शक्यात्मके श्रपि भिद्येते इति । नामरूपविलयमाचस्य नदीसमुद्रदृष्टान्तवाक्यार्थानुमितपूर्वका। स्तगमनोत्तया नामरूपविलयसिद्धेभिद्येते इत्यादिवाक्यं तये।निरविष्वकायप्रतिपादनार्थमिति भावः । भिद्येते इत्यादिवाक्यं तये।निरविष्वनादित्युत्तराधिकरणे भाष्यकारैलिखितम् इह तद्याख्यानग्रन्थः काक-पद्याद्यत्रराधिकरणे भाष्यकारैलिखितम् इह तद्याख्यानग्रन्थः काक-पद्यात्यासद् भ्रान्त्या प्रमादेन वा लेखकैलिखितः । यद्वा श्रस्तं गच्छ-न्तीत्यन्तश्रतिवाक्यस्याच व्याख्येयत्वाद् भिद्येते इत्यादिवाक्यस्य श्रुतिपाठे तदनन्तरवाक्यत्वादिग्रमाधिकरणे।दाहृतमित्र तद्वाक्यं पूर्ववाक्येनेकवाक्यता-प्रदर्शनार्थमिहेव व्याख्यातम् ॥

भु३६ । =

अविभागा वचनात्॥ १६॥

श्रुतिविरोधेनेति । सित श्रुतिविरोधे लयत्वे हेतुना सावशेषत्यानु-मानं नेतिष्ठति । न चास्तं गच्छन्तीति श्रुतिवाक्यमपि सावशेषलयपरं स्यादिति वाच्यम् । भिदोते इत्यादिवाक्यशेषेगाशक्यवशेषशङ्कानिरासादिति भावः ﴿ ॥ तदोकोाग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारा विद्यासामर्थ्यात् तच्छेष-भ३६ । १० गतानुस्मृतियोगाञ्च हार्दानुगृह्यीतः शताधिकया ॥ १० ॥

^{* अव षष्ठं} प्रतिषेधाधिकरणं पूर्णम्।

[🕇] दृष्टान्तपूर्वकेति पाठः ५ पुः ।

[🗜] अत्र सफ्तमं बागादिलयोधिकरणं पूर्णम्।

^{५ श्रत्र भष्टमम्} श्रविभागाधिकरणं पूर्णम्।

कथं तया ब्रह्मलाकप्राप्तिरिति। यदाप्र्यचिलाकमारभ्याऽऽति-वाहिका: मन्ति तथापि तावत्पर्यन्तमपि मूर्धन्यनाडी न व्याप्रातीति भाव: । आसु नाडीषु सप्ता इति श्रुतिसिद्धत्वादिति । यदायासु नाडीषु स्प्रा रत्यादिशुतिमेहापथस्य गामद्वयसंबन्धवदादित्यरश्मीनां हृदयनाडीमिमेगड-लेन च संबन्धमाचं वदित न तु ब्रह्मनाड्या मग्डलानुप्रवेशं तथापि ब्रह्म-नाड्या स्वानुप्रविष्टरिष्मिद्वारा मग्रहलसंबन्ध एव टीकायां मग्रहलानुप्रवेशी विविचित इति तात्पर्यम् । विष्वङ् नानागतय इति । अन्या हृदयस्य नाड्यस्तिर्यङ्मुखत्वाचामुखत्वादिप्रकारेग नानागतयः सत्यः उत्क्रमग्रकार्यः माचे प्रभवन्ति नामृतत्वफले उपयुज्यन्तइत्यर्थे:। अनेन चत्तृष्टो वा मूर्यो वत्यादिश्रुत्या निष्क्रमणे हृदयनाडीनामनियमेन द्वारत्वप्राप्नावमृतत्वफल-भागार्थनिष्क्रमणे ब्रह्मनाडीतदितरनिष्क्रमणे नाड्यन्तराणि च युत्या नियम्यन्त-इति दर्शितं भवति । नाड्यन्तराणि तनत्कर्मफलभागार्थत्वे भारतादिष् नियमितानि द्रष्ट्रव्यानि । नाडीनां दुर्विवेचत्वेषि जीवस्य ततन्नाडीविशेषाननु-प्रविश्य निष्क्रमणं विद्याक्रमेसामध्यादाधीनम् इह प्रकृतीपयागाद् विद्यासा-मर्थ्यादिमाचं सूचे दर्शितम् । तच हार्दानुगृहीत इति हृदाभिव्यक्तेन स्वापाः चितेन परमेश्वरेणानुगृहीत इत्येतत्यरं टीकायां विशिष्य हार्दविद्यायहणं विद्यान्तरागामप्युपलचगम् *॥

रश्म्यनुसारी ॥ १८ ॥

भु३६ । १६

योष्मे दिवा से।रातपै। व्याप्तकषाद्राचावूष्मदर्शनेन सूर्यरश्मीन। मेव स जष्मेत्यवसीयतद्दित भावः । अस्मयेति । चन्द्रमग्रहलस्य जलमयत्वं सिललमये शशिन रवेदीं धितये। मूर्च्छिताः प्रतिफलन्तीत्यादिक्ये।तिःशास्त्रव्यनिस्तुम् । यदि विद्याफलं नियतमेतैरेव रिष्मिभिरिति श्रुतिप्राप्तो रिष्मिनियमस्यक्तव्यः । न च रिष्मिनियम श्राद्रियते। विद्याफलनियमस्त्यक्तव्यः राचि-मर्ग्ये विद्याफलप्रापकरश्म्यभावात् । श्रयं नियमद्वयमप्याद्वियते तदा राचे। मृतस्याहरागमप्रतीचगात् स यावत् विप्यदिति त्वरावचनपरित्यागः राचावेव देहनाद्या उनुप्रविष्ठरिष्मद्वारा विद्याफलप्राप्तिने सम्भवतीति रिष्मिविद्याफल-

^{*} श्रत्र नवमं तदोकोऽधिकरग्रं पूर्णम्।

निरस्ता * ॥

वेदान्तकल्पतस्परिमले । यः ४ पाः २ ऋधिः ११ नियमये।रन्यतरपरित्याग इत्येषा सर्वापि शङ्का राबे। रश्मिनद्वावसमर्थनेन

धा ७६५

अतश्चायने ऽपि दित्तगो ॥ २०॥

द्वितीयाबहुवचनमिति। ग्राह्यतेद्विकमंकत्वादिति भावः। ज्योतिरादित्यदेवतेति । श्रुताबहरादिभ्यः पश्चादादित्यदेवता तद-नुसारेण स्टती पाठक्रमे। नादर्तव्य इति भावः । निर्गुणेति । निर्गुणः सन्वरजस्तमार्राहत: पुरुष: सांख्यात्तपुरुष: तस्य प्राकृताद् बुद्धादेया विवेक: सांख्यात: यश्च यागश्चितवृत्तिनिराध इति यागशास्त्रात्ता यागः तद्विषयत्वेनेत्यर्थः 🕇 ॥

इति श्रोमद्भरद्वाजमुलजलिकोस्तुभश्रोमदद्वेतविद्याचार्यश्रीविश्वजिद्याजि-श्रीरङ्गराजाध्वरिवरसूने।रणयदीचितस्य कृते। वेदान्तकल्पतस्-परिमले चतुर्थस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥



^{*} अत्र दशमं रशस्यधिकरणं पूर्णम्।

[।] अत्र स्वादशं दित्तिषायनाधिकरणं पूर्णम्।

श्रय चतुर्थाध्यायस्य ततीयः पादः।

अर्चिरादिना तत्प्रथितेः॥ १॥

43C 1 8

भिन्नप्रकरणस्थत्वादिति श्लोकप्रतोकमुणदाय व्याच्छे मार्गा अर्चि-राद्य इति । श्राद्यहेतुमेकविद्याविषयत्वेन योजयित कुतः यत्र विद्येक्ये ऽपीति । द्वितीयादिहेतून्वद्याभेदविषयत्वेन योजयित विद्याहेतुभेदे त्विति । त्वरां विवृणिति । स यावत् चिप्योदिति । गुणानां प्रधान्नेन समुचयोपपत्तेरिति । गुणानुरोधेन प्रधानभेदकल्पना न युक्तेति भावः । श्रिपशब्दा न सङ्गच्छेतेति । श्रिपशब्दस्य युक्यन्तरत्वद्यातकन्त्वादिति भावः *॥

वायुमब्दादविशेषविशेषाभ्याम् ॥ २ ॥

ध्रहा =

पाठकमाऽक्रमाभ्यामिति । ननु पाठक्रममुतिक्रमाभ्यामिति वक्तव्यं तेनेति तृतीयामुतेः पै। वीष्यंयंगभंकरणत्ववाचिन्याः पै। वीष्यंयं क्रमे ऽपि मुतत्वात् तयेव सिद्धान्ते वन्त्यमाणत्वादिति चेत् सत्यम् । सिद्धान्ते ऽयंक्रमं वदतामन्येषां व्याख्यातृणामेवं भावः । तेन स कर्ष्यमाक्रमत-इत्यच कर्ष्वादित्यलोक्षण्णव्योषणविशेष्यभावेनेकार्थत्वं न वक्तव्यम् । वाय्वादित्यलोक्षणेवशेष्यभावेनेकार्थत्वं न वक्तव्यम् । वाय्वादित्यलोक्षयोर्मथ्ये गन्तव्यान्तर।लदेशसत्वेन कर्ष्वं शब्दस्य तद्विषयत्व-सम्भवात् । किं चातिवाहिकदेवतानामातिवाहिकदेवतान्तरयुक्तलोक्षान्तर-पर्यन्तनेतृत्वस्य वक्तव्यत्वाद्वायुदत्तिक्षद्रस्थार्थक्रमणत्वात्रया तदनन्तरप्राप्या ऽऽदित्यलोक्षगमनं प्रत्यपि करणत्वमथात्त्रिध्यति । श्रतः सिद्धान्ते श्रार्थे एव क्रमे। न श्रोत इति अचिरात्मकाग्न्याद्यानन्त्रयंप्रत्यभिचानादिति यङ्कान्तरप्राप्तो वायुर्त्विरादिमार्गे क्व चिदवश्यनिवेशनीयः सन् शाखान्तरयुक्तन्तरप्राप्तो वायुर्त्विरादिमार्गे क्व चिदवश्यनिवेशनीयः सन् शाखान्तरयुक्तन्तरप्राप्तो वायुर्त्विरादिमार्गे क्व चिदवश्यनिवेशनीयः सन् शाखान्तरयुक्तन्तरमामुगन्तरदेशप्रत्यभिचानात् तवेव निवेशनीय इति भावः । नन्त्वादित्यप्राप्तिरिति । तेनेत्यस्यादित्यप्राप्त्याकाङ्वाभावे ऽप्यादित्यप्राप्तिनेतेत्वाक्षाङ्का ऽस्ति वाय्वादिक्रमाथे वायुदत्तावकाशिक्तद्रं विना ऽऽदित्यप्राप्तिनेत्वावाक्षाङ्का वायुदत्तावकाशिक्तद्रं विना ऽऽदित्यप्राप्तिनेत्रमार्थे वायुदत्तावकाशिक्तद्रं विना ऽऽदित्यप्राप्तिनेत्रमार्थे

[.] अत्र प्रथमम् स्रिचिराद्यधिकर्गां पूर्णम् ।

५३६ । २५ रनुपपते: श्रतस्तदाकाङ्गया ऽनुषङ्गः स्यादित्यथै: । ऊर्ध्वदेशप्राप्तेजी-तत्वादिति । छिद्रेण वायुव्यवधानं प्रतिबन्धकमपनीयोध्वंदेशप्राप्रेः संपा-दितत्वादित्यादित्यप्राप्तिरपि च्छिद्कतार्ध्वदेशप्राप्ता निराकाङ्गेत्यर्थः । यर-णलोकादावित्यर्थ इति । अनेन क्व चिदवश्यं निवेशनीया वायुः के।षी-त्रिकाणाखानुसारेणाचिरनन्तरं द्वितीयपर्वतया किमिति निवेश्यते यदा वे पुरुषे। ऽस्माल्लाकात्प्रैति च वायुमागच्छतीति बृहदारण्यकयुत्यनुषारेग प्रथ-मपर्वतया उद्यिषः पूर्वे वा किमिति न निवेश्यते इति शङ्का निवारिता। कोषोतकिशाखा हि वस्योन्द्रादिषु बहुषु क्रप्रक्रमा न तूदाहृतबृहदारययकपुति-रिति भाव: । ऊर्ध्वादित्यलोकराब्द्योरिति । सम्पिण्डितग्रामस्य स्वत जध्वेदेशे।त्क्रमणासम्भवादातिवाहिकाधीनं तदिवचितमिति वक्तव्यं तद चातिवाहिकत्वेनाथैप्राप्रा वायुलोकाभिमानिनी देवता लोकान्तरप्राप्रिपर्यन्त-मातिवाहिको न तु किविन्मावपर्यन्तमित्यध्वेदेशस्य लोकविशेषह्रपतया विशेषेणापेचा उस्तीति भावः । तेनोध्वं आक्रमते स आदित्यमागच्छ-तीत्यानन्तर्यायेति । यद्यपि देवलाकादादित्यमित्यादित्यस्य देवलाका-नन्तर्य्यमिव यतं तथापि मासेभ्या देवलाकमिति यतमाससामीप्यानुग्रहाय संवत्सरानन्तरमेव निविष्टे देवलेकि वायुलेकादित्ययोर्मध्ये निविशतस्ति वाय्यादित्ययोनैरन्तय्ये लभ्यतइति भावः । एतस्यापरि देवलाकाद्वा-युमिति पठितव्यमिति। एतस्य संवत्सरादित्यस्योपरि देवले।कर्मिति पठि-त्वा देवलाकाद्वायुलाकमिति पठितव्यमित्यर्थे: । ननु वाचकमेवेति न युक्तं वायु-शब्दस्य लक्षणीये देवलाके शन्यभावादित्याशङ्क्य व्याच्छे बाधकमेवेत्यर्थ इति । कथं तर्हि भाष्यइति । यदि मूचे वायुशब्दे। देवले कोपलच क इति संवत्सरदेवलेकवाय्वादित्यानां क्रमः सुचकाराभिमतः तदा कथं भाष्ये से। बस्य वायुशब्दस्य वायुपरत्वमेवाङ्गीकृत्य वायाः संवत्सरात्यरत्वमादित्यादवीङ्कां च मूचकाराक्ततया ऽनूदितमित्यर्थः । ज्ञान्देग्यपाठमात्रापेच्येति । क्वान्दे। ग्यपाठमाचमपेत्य सूचं प्रवृत्तमित्यभिप्रेत्य भाष्ये तथे।क्तम् । यदि वाजसनेयक-प्राप्नो देवलेको अपि सूचार्थत्वेन नीयते वायुगब्दस्य तदा देवलेके वा देव-**५४०** । १४ लेक्क्यवहितवाये। वा लक्कणा ऽङ्गीकार्येति भावः । प्रजापतिर्विराडिति ।

^{*} स ऊर्ध्वामिति मूने पाठः । 🕴 श्रामक्कतीत्यादित्यानन्तर्यायेति मूने पाठः ।

समिष्टिस्यूनाभिमानी विराट् समिष्टिसूद्मशरीराभिमानी हिरग्यगर्भ इति भेदः । सुक्रपन्तात्सकाशादिति । ऋषूर्यमाणपन्नादिति पञ्चम्या यथाश्रुतार्थमादा-याविधपरतयेदं व्याख्यातम् । ऋचिष इत्याद्याः सर्वाः पञ्चम्यस्तृतीयार्थेइति स्रातिवाहिकाधिकरणे स्थास्यति । स्रादित्य इति श्रुत्यपेनिताध्याहारः * ॥

तिहिता ऽधिवरुगः सम्बन्धात् ॥ ३॥

780 1 20

786 1 de

तेनादित्यमिति अतिविरोधादिति। तेन सजर्ध्वमाक्रमते स ग्रा-दित्यमागच्छतीति युतिविरीधादित्यर्थः । श्रता नामीषां मार्गे निवेश इति । यथा तेन स जर्ध्वमित्यादिश्रुतिविरोधाद्वाये।रनन्तरं न निवेश: एव-मर्चिषे ऽहरित्यादिश्रुतिविरोधादन्यचापि न निवेश: अमानवपुरुषावरी-थात् । श्रातिवाह्वकान्तरसद्भावे विद्युता ऽनन्तरमेवामानवपुरुषस्यातिवाहि-कत्वात्वयोगात्। तस्माद्वरूणादीनामर्चिरहरादिमार्गे निवेशनासंभवात् केषी-त्तिशाखातं मार्गान्तरमिति प्रथमाधिकरणाचेष: । मार्गैश्वनियमेनाऽग्रे यदा वे पुरुषमित्यादिवृहदाराय्यकयुत्युक्तमपि मागीन्तरं वक्तुं शक्यम् अत-स्तव श्रुते। वायु देवले।कादादित्यमिति श्रीतक्रमविरोधेन तयार्मध्ये न निवेशनीय इति समनन्तराधिकरणस्याप्याचेषः । प्रधानशब्दगृहीता-दिति । कल्यस्य प्रकृतिवच्छब्दस्य प्रधानिवशेषणत्वेन तदन्तर्भृतत्वादिति भाव: । त्रन्ते तु बादरायण इति न्यायवत् पाठक्रमे। ऽपि दृष्टान्तदाष्ट्रान्तिक-योम्तुल्यः दृष्टान्ते नारिष्टहोमग्राहकप्रधानकाक्यपाठानन्तरमुपहोमवाक्यपाठः दाष्ट्रान्तिके वस्तानन्तरमिन्द्रप्रजापतिपाठ इति । यदापि वस्तामारभ्यान्ते तु बादरायण इति न्याया वत्तुं शक्यः तथापि वरूणस्य तिंदत्संबन्धा ऽव्य-धिका उस्तीति तदुपन्यासः । विद्युदनन्तरं वस्त्यादीनां सन्वे उप्यमानवपुस्-षस्यातिवाहिकत्वात्तेरभिश्रयं सूचकार ख्वानन्तराधिकरणे बद्यति !॥

आतिवाहिकस्तिल्लात् ॥ ४ ॥

श्रवधिष्विति । पूर्वपूर्वमीमाविष्यु स्थित्वा स्वमीमामितक्रम्य मीमा-न्तरं ये प्रापर्यान्त ते श्राविधका श्रातिवाहिकाश्व । श्रमूर्तेति । श्रमूर्तेः परिच्छित्तपरिमागरिहिला श्रतमाकाशादयः तट्टृतयो बुद्धिशब्दादयः तट्टृति-

^{*} अत्र द्वितीयं वाय्वधिकरणं पूर्णम् ।

[†] श्रीतवायुरिति ५ पुः पाः।

[🕽] अन वतीयं तिंदिधिकरणं पूर्णेम् ।

रवान्तरज्ञातिगुंग्रत्वं तटाधारेषु ह्रणदिषु गुग्गशब्दः पारिभाषिक इत्यर्थः । स्रमूर्तवृत्तिविशेषणाभावे द्रव्यत्वक्षमंत्वह्रणवान्तरज्ञातिमतीद्रव्यक्षमंग्रीरितव्याप्तः । स्रवान्तरविशेषणाभावे उमूर्नवृत्तिपताज्ञातिमतीद्रव्यक्षमंग्रीरातिव्याप्तः । स्रत उभयमुपातम् । न च चैशेषिकेति । नन्वयमनुक्तोपालम्भः । न हि याब्दिका वैशेषिकपरिभाषितं गुग्रं विभाषा गुग्रे उस्त्रियां वोतो गुग्गवचनादित्यादिसूचेषु गुग्गशब्दाये वदन्ति किन्तु जास्यमाद्यायद्यमादेवादिकं द्रव्योपस्वनिमात्याशङ्क्याचिरादेरि तदिविशिष्टमित्यागन्तृन् प्रधानान् प्रतीति । ननु द्रव्योपसर्व्यनमाचे शाब्दिकानां न गुग्गत्वं तस्य भोक्रुपसर्वनत्वे ऽपि गुग्ग-यहणस्य धनेन कुलमित्यादीनां प्रत्युदाहृतत्वात् किं तु द्रव्यधमिवशिषह्पं द्रव्योपसर्व्यनम् । स्रते। ऽचिरादिषु न हेतुपश्चम्युपपदाते । स्रचिरादीनां नेतव्य-जीवधमित्वाभावात् किं तु पितृयाग्रे धूमादीनामप्युक्तन्यायेनातिवाहिकत्वं वाच्यम् । संपिग्रिस्तकरग्रयामाणां स्रते। गमनासम्भवात् तच राविशब्दे हेतुपञ्च-मीति कथमि वक्तुं न शक्यते । स्रस्तियामिति पर्युदासादिति चेदादोवं व्यत्यये। बहुलमिति च्छान्दसेन विभक्तिव्यत्ययेन तृतीयार्थे पञ्चम्यस्तु ॥

प्रथ्य । १०

कार्यं बादरिरस्य गत्युपपत्तेः॥ १॥

न चैतद्दत्यादिग्रन्थेनाद्वाच्य निराकरणीयाम् अवयवसंये।गेनान्यया-सिद्धाववयविसंयोगप्रत्याख्यानशङ्कां विवृणीति शाखामृगावयवीति । न-न्वस्त्ववयविनः संयोगः अवयवे वा ऽवयवान्तराविक्वद्वत्वेनाप्राप्रः शाखा-मृगेण प्राप्यते अवयवविशेषा वा । पूर्वमप्राप्रः प्राप्यतद्दति चेत् । एवं तिह्वं ब्रह्माणि प्रदेशविशेषाविक्वद्वं तत्प्रदेशविशेषा वा मुच्यमानेन प्राप्यते प्रागप्रा-प्रत्वादिति तुल्यम् ।

नतु तहीति । अवयविसंयोगोपलिवतहति भ्रान्त्या यङ्का । काल्प-निकविभागमपेच्येति । अवयवभेदेनापि वास्तवे।वयविभेदे। वतुं न शक्यते । न चावयविनि भेदाभावे तस्यैव प्राप्तिश्च समर्थयितुं शक्यते । अते। भेद-स्याविद्याकल्पितत्वं काल्पनिकशब्देने।क्तम् । यथा ऽश्वमेधादीनीति । अश्वमेधपर्यन्तान्यदृष्टार्थानि कर्माणि क्रियातत्फलादिस्वरूपसद्वावश्रद्धाही-

^{*} अत्र चतुर्थम् ज्ञातिवाहिकाधिकरणं पूर्णम्।

नस्य ब्रह्मिवदे। न फलन्तोत्यश्रद्धस्य कृतं दत्तमित्यादिसृतिमुदाहृत्या-क्तम् प्रथमसूचे तदिचरादिगतिचिन्तने ऽपि तुल्यम् अदृष्टार्थेत्वाविशेषात् पुनः केन विशेषेणादृष्टार्थकर्मान्तरव्यावृतेनाचिरादिगतिचिन्तनस्य वासनामा-षेण प्रवृतिमवलम्ब्य फलपर्यवसानमाशङ्क्यतदत्यर्थः । ऋतश्च वासनावशात् प्रवृतं लै। किकं किं चित्फलतु मा वा विदिकं तु किमिष न फलत्येवेति भाव: । टीकायां का कथेत्येतत्कैमुतिकन्यायप्रदर्शनायं न भवति प्रकृतार्थे तदनन्वयात् किं त्वितरापेचया ऽच्चिरादिगतिचिन्तनस्य के। विशेष: येने-तरेषामफलत्वे ऽप्येतत्फलवत्स्यादित्येतद्वर्षियतुं कानि तान्यफलानीतरा-गोत्याकाङ्घायामाचार्यैरश्वमेघादीनि तानीत्युदाहृतानि ।

अनेनाहत्येति । नान्यः पन्या इत्यच पन्या इत्ययं शब्दो ऽगुः पन्या ५४३ । २५ इत्यादिशुत्यन्तरेषु पन्या इति श्रवणाद् ब्रह्मप्राप्रिसाधनत्वेनाचिरादिमागै। विविचित इति भ्रममपनेतुमेवेति भावः। नन्वणुः पन्या विततः पुराणा मां स्पृष्टे। उनुवित्तो मयैव तेन धीरा ऋषियन्ति ब्रह्मविदः स्वगै लोकमित कथ्वै विमुक्ता इति * पथ इव अर्ध्वदेशवर्तिस्वर्गलोकप्राप्रिमाधनत्वं श्रयतइति चेत् तर्हि इतस्तृतीयले।कह्रपस्वर्गले।कप्राप्निरेव ब्रह्मविद उक्ता स्याद् न तु ब्रह्मलेक्प्राप्तिः । स्वर्गशब्दस्य ब्रह्मलेकि लचणा ऽऽस्रीयतइति चेत् क्रिमधै लचगा ऽऽश्रयितव्या यत्र दुःखेन संभित्रमिति श्रुत्यनुशिष्टे। निरतिशयानन्द इह स्वर्गशब्दार्थे।स्तु ततश्च निर्रातशयानन्दप्रकाशहृपं ब्रह्मेव स्वर्गलाकशब्देन प्राप्यमुक्तं भवति । स्वर्गकामा यजेतेत्यादाविष ब्रह्मानन्द एव स्वर्गशब्दार्थः स्यादिति चेद् अस्तु के। देाषः । अन्तः करणशुद्धिद्वारा कर्मणामपि ब्रह्मप्रा-प्रिमाधनत्वसंभवात् । यः कामयेत सर्वमिदं भवेयमित्यादिब्रह्मप्राप्रिद्धपक-मेफलश्रवणानामेवोपपादनीयत्वात् । दर्शपूर्णमासादिष्वपि दिवि च्योतिरज-रमारभेतामित्यादिमन्त्रलिङ्गेः ब्रह्मप्राप्तिफलावगमाद्य । उत्तं च वार्तिके ।

स्वर्गायमेव प्रागुत्तः स्वर्गकामवचस्यपि । क्रमीमस्तद्षिद्धेहि वेदान्तज्ञानिष्यते॥

यद्वा निरित्रयब्रह्मानन्दवाचकस्य स्वर्गशब्दस्य स्वर्गकामादिवाक्ये-नैकमन्त्रलिङ्गाद्यवगतनाकपृष्ठभाग्यसुखिवशेषे लव्चणास्तु तत्प्रशंसाधे तच

^{*} इति मन्त्रे इति ९ पु॰ पा॰।

तस्य नचणेषपते: । चन्दनं स्वर्गः सूदमाणि वासांसि स्वर्गे इति सुखसाधनेषि प्रशंसाथ तत्प्रयोगदर्शनात् । ऐहिकसुखापेचया नाकलेकमोग्यसुखे नितान्तो-त्कषंसन्त्वेन निरित्तशयसुखवाचिना तत्प्रशंसीचित्याच्च । इह तु संकोचे कार-णाभावाद् मे। चप्रकरणाच्च परमानन्द एव स्वर्गशब्दार्थे। याद्यः न तु कर्मः वाक्येष्विव परिच्छित्रो लच्चणीयः । तदप्यकं वार्तिके ।

परमानन्द एवातः स्वर्गशब्देन गृह्यते ।

मे। चप्रकरणा चित्यः क्रियाचे । तो न गृह्यते ॥ इति ।

यवं च मन्त्रस्यायमधेः । त्रणुः सूचमः दुविज्ञानः वितता विस्तीणेः विस्पष्टतरणहेतुः पन्या ज्ञानरूपब्रह्मप्राप्यपायः पुराणिश्चरन्तनः श्रुतिसिद्धः मां स्पृष्टः मां स्पृष्टवान् मया स्पृष्ट इति वा मया लब्ध इति यावत् । मयानुवितः फलप्य्येवसायिनीं परिपाकदशामानीतः मयेति शब्दे। मन्त्रदृष्ट्यकृषिपरामशीं । तेन धीराः प्रज्ञावन्तः त्रान्ये ऽपि ब्रह्मविदः इतः शरीरपातादूध्वे स्वगंनी-कमिपयन्तीति ।

मुष्ठप्र । १

ब्रह्म वेद् ब्रह्मैव भवतीत्यादिश्रुतिसामथ्येंरिति । यदापु-त्क्रान्तिप्रतिषेधश्रुतिराि टीकाणं ब्रह्मणब्दलचणाहेतृत्वेन विविचितित वर्त्तुं शक्यं तथाप्युत्क्रान्तिप्रतिषेधते। गत्यभाविद्धिः प्रतिषेधादिति चेदित्यिधि-करणेन लब्धेति ब्रह्म वेदेत्यादिश्रुतिसामध्येमाचमेतदिधकरणप्रदर्शनीयमिति तदुणदानम्। फलान्तरवन्त्वे काम्यत्वप्रसङ्गादिति । यदि प्राधान्येन नित्यनै-मितिकानं फलान्तराभावे उप्यन्वाधानप्रस्तरयागादीनाम् श्रङ्गानां करणमन्त्रः प्रकाश्यं वर्चःपुष्ट्यःयुःप्रजादिकमानुषङ्गिकं फलमस्तीति तदिभिप्रायेण भाष्य-कारिरापस्तम्बस्मृतिषदाङ्गतेत्युच्येत तदा तेषां न काम्यत्वप्रसङ्गोः नाप्यनुनिष्या-दिफलानुत्पितिरिति दृष्ट्यम् । भावस्य विनाशप्रसङ्गादित्येतत्स्वेपपत्तिकं व्या-च्येस्तरपाभाव इति । श्रात्मस्वरूपभूतयोः कर्तृत्वभाकृत्वयोनं।श्रे श्रात्मस्वरूपमेन नश्येदित्यर्थः । विकल्पमकृत्वेति । स्वभावास्वभावविकल्पमकृत्वा यथाश्रुतशङ्गां परिगृह्य दूषणं वक्तीत्यर्थः । कल्पकालस्था यित्वादिति । नित्यस्य तु शक्तिमतः कदा चन शक्तिराविभवेदिति भावः । न च कार्ये प्रतिपन्त्यिमर्थिः रिति सूचं गतेः कार्यविषयत्वशङ्कानिराकरणार्थम् । श्रतस्तत्सूच-

^{*} व्याः सूर् ग्रन्थ पार ३ सूर ९४।

च्याख्यानारम्भभाष्ये पूर्वे।त्तस्वतन्त्रयुक्तिभि: समुच्चयार्थे। ऽपिशब्दे। ने।पपदात-इति शङ्कायां तदुपपादनार्थे। न च कार्यमिति सूचिमत्यादि: प्राचीने।पपतीना-माहेत्यन्तो ग्रन्थः । पूर्वे भाष्यगतशब्दव्याख्यानावसरालाभादिह तत्सूचभा-ष्योदाहृताया यशे।हं भवामीत्यादिश्वतेर्व्याख्यानावसरे तदुपपादनमनेन ग्रन्थेन कृतम् । तचोपपतीनामिति बहुवचनेन मुख्यत्वं तयोध्वमायिन्नित दर्शनं से। ऽध्वनः पारमाग्रोतीति दर्शनं च संगृहीतम् । श्राहेत्यस्यापि न च शब्द-निर्देश इति क्रचा ऽन्वयः । यशःप्रकाश श्रात्मिति । यशे। नामकपरब्र-स्मप्रकाशस्त्रपे ब्राह्मणादीनां य श्रात्मा स भवामीत्यर्थः * ॥

श्रमतीकालम्बनाच्चयतीति बादरायण उभयथा देश्यात्तत्क्रतुश्च ॥ १५ ॥

नश्हें । १६

ये चामी इत्यस्य सामान्यविषयत्वादिति । यदायस्य सामा-न्यविषयत्वे ऽपि ये चामी तेर्च्चिषमिति यत्तच्छब्दये।: प्रतीकोपासकविषयत्वं वतुं शक्यं पितृयाणतृतीयस्य।नरहितानां तेषामर्चिरादिगत्यवश्यंभावात् तेषा-मणि ब्रह्मसृगुपासनाकर्तृत्वेन सत्यमुपासतइति शब्दविषयत्वे।पपतेश्च । अङ्गावबद्धापासनानां कासां चिद्रस्मस्पृत्वे ऽप्युद्गातृकर्तृकासु सुत्यासु फलभाजा यजमानस्य स्वतन्त्रक्षतृंत्वाभावेन सत्यमुपासतइत्येततेषामपि परामर्थकं स्यादित्यतिप्रसङ्गाभावातस्यै।त्सर्गि इत्वतन्त्र इतृमाचविषयत्वे संभवति स्वत-न्त्रप्रयोजनस्यारायमञ्चनायागात् । तथापि स गतानित्यन तच्छब्दस्य प्रतीकापासकाऽविषयत्वं वर्तुं शक्यं तदभिप्राया सामान्यवचनस्य प्रतीका-पासकातिरिक्तविषयत्वेकिभविष्यति । ये चामी इत्यस्य सामान्यविषयत्वा-दिति यन्थे येचामीयहणं प्रदेशीयलचकं सत् स एतानित्येतत्यरं भवि-ष्यति । एवं च प्रतीके।पासकानामर्चिरादिमार्गेश विद्युह्लाकपर्यन्ता गति: समाना । ऋमानवपुरुषस्तु ताच्चयतीति शेत्रः । ऋत एवाप्रतीकालम्बनाचन यतीति सूचे नयनविशेष उत्तो नार्चिरादिगती। भाष्ये यद् अनियमन्या-यस्य प्रतीकापासनातिरिक्तविषयत्वमुक्तं तदिष ब्रह्मप्राप्नंशविषयमाचिषयं नार्चिरादिगतिविषयमपि । अनियमाधिकरग्राएव भाष्यकारैरिर्च्चरादिगते: सर्व-

अन पञ्चमं कार्याधिकरणं पूर्णम् ।

विद्यासाधारग्यसमर्थनार्थम् । ऋथ य गता पन्थाना न विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदिदं दन्दश्कमिति च मार्गद्वयभ्रष्टानां कष्ट्रामधार्गातं गमयन्ति देवयानिष-तृयाणयारेव एतानुद्वावयन्ति तनापि विद्याविशेषादेषां देवयानप्रतिपत्तिरित प्रदर्शितस्य प्रतीकापासनासाधारएयाद् देवयानिपतृयाग्ययोर्मध्ये विद्याह्रपाद्धि-शेषाद्रेवयानप्राविरिति । प्रदर्शिता हि न्यायस्तास्वपि तुल्य एव । शास्त्रदण्णे त्वाचार्यैः स एतानित्यस्य प्रतीकीपासकाविषयत्वे न्यायान्तरमुक्तं प्रतीकभा-जां तु ये चामी राये इत्यनेन पञ्जाग्निविद्धिः सम्मार्गे समुद्येये ऽप्यप्राधान्यात् स एतानित्येतच्छब्देन परामणाद् न ब्रह्मप्राप्तिः एतच्छब्दस्य प्राधान्येन प्रकृतपरामर्थित्वात् पञ्चाग्निविदामेव प्रकरणवन्वेन तथाभावादिति । इदमपि युक्तमेव । तदाइत्यं विदु: ये चामी इति यच्छब्दद्वयनिर्दिष्टानां पञ्चाग्नि-विदां ब्रह्मे।पासकानां च तत्प्रतिनिर्देशकेन तच्छब्देन परामर्शे ऽपि स यतानित्येतच्छब्देन प्रक्ररणानुरोधात् पञ्चाग्निविदामेव परामर्थ इत्युपपते:। न हि प्रकरणाम्नातस्य क्व चित्केन चिद्धेतुना प्रकृताप्रकृतसाधारएयं जात-मित्येतावता ऽन्यस्यापि प्रकरणाम्बातस्य तदुभयमाधारएयनियमे। ऽस्ति च्योतिष्ट्रोमप्रकरणाम्बातस्य उपांशु यजुषेति यजुर्वेदविहितकमीङ्गस्वरविशेष-विधानस्य याजुर्वेदिकसकलकर्मसाधारयये ऽपि दीचगौयाप्रभृत्यङ्गविधानस्य च्चेतिष्ट्रीममाचमाधारएयवदुपपते: । ऋहंग्रहोपासकानां ब्रह्मप्राप्टेस्तत्कतु-न्यायत एव सिद्धा स एतानिति वचनानपेचणात् । तदपेचणेप्येष देवपथा ब्रह्मपथ इत्युपके।सलविद्यागतवाक्येन तत्सिद्धेश्व । सर्वथापि प्रतीके।पास-कानामिंद्वरादिमार्गात् पर्युदासः किं तु ब्रह्मप्राप्नेरेवेति सिद्धम् *॥

इति स्रोमद्वरद्वानकुलनलियके।स्तुभन्नोमदद्वेतिवद्यानार्यविश्वनिद्यानिस्रीर-द्वरानार्ध्वारवरसूने।राष्यदीचितस्य कृते। वेदान्तकल्पतरू-परिमले चतुर्थस्याध्यायस्य तृतीयः पादः॥

[ै] अत्र वष्टम् अप्रतीकालम्बनाधिकरशं पूर्णम् ।

त्रय चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः।

संपद्माविभावः स्वेन शब्दात्॥१॥

485 1 €

आये पाद्इति । निर्गुणविद्याफलैकदेशस्या बन्धनिवृत्तिराद्ये पादे प्राधान्येन निरूपिता। भोगेन त्वितरे इति सूचेण तच्छेषतमा तद्यिगम इत्यादिसूचे: पुण्यणपचयश्चिन्तित इति भावः। एवकारश्चावधा-रण्इति । मूलपाठं दृष्ट्वेदं व्याख्यातम् । एवकारश्चैवार्ये नावधारण्इति पाठस्तु स्पष्टार्थे:। रलोकगतं वाक्यादिति हेतुं व्याचष्टे इति । एत-द्याद्यानं सर्वमपि न्ये।तिर्दर्शन।दित्यधिकरण्यव विवृतम् ॥

अविभागेन दृष्टत्वात्॥ ४॥

५४६ । १६

योगानामिवेति । योगशास्त्रविदां हैरययगर्भाणामीश्वराद्वेदेनैव मुत्तस्य स्वद्धपेणावस्थितिरिति तन्मतं दृष्टान्तीकृतम् । तत्त्वमस्यादि-वाक्यादिति । तत्त्वमस्यादिवाक्यं मुित्तसाधनच्चाने।त्यत्यथे तत्त्व पर्योती-त्यादि फलवाक्यम् । एवं च साधनवाक्यात् फलवाक्यस्य प्रधानविषयत्त्वेन प्रावल्यात् तदनुषारेण मुक्ताभेदेनैवावितिष्ठते तत्त्वमस्यादिवाक्यं त्वै।पचारि-काभेदपरम् अभेददृष्टिपरं वा । अभेददृष्ट्राविष भेदेनानवस्थानमहंग्रहोपास-नेष्विवेति पूर्वः पद्यः । तत्राभिनिष्पन्नेति । तथैव तत्त्वमस्यादिवा-क्यानुगुणफलश्रवणात् तदनुरे।धेन स तच पर्योतीत्यादिसगुणविद्यायामुक्त-ष्ट्रव्यं कर्तृक्रमेभावनिदेंगश्च गै।गो नेतव्य इति सिद्धान्तः † ॥

ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः॥ ५॥

युप्त । ७

अनेकाकारतेति क्लोके यदेकताहतेरिति विषववाधकं तद्धर्मिणे। उनेकाकारहृपत्विमिति धर्मपरिशेषपचे अनेकाकाराणामेकधिम्मेहृपत्विमिति धर्मपरिशेषपचे त्वनेकताहतेरिति विषववाधकं द्रष्टव्यमिति योजयित एकस्यानेकाकारत्वं वदन् प्रष्ट्वय इत्यादिना। क्लोकस्योत्तरार्धमवता-

^{*} श्रत्र प्रथमम् संपद्माविभावाधिकरसां पूर्णम् ।

^{† श्रत्र दितीयम्} श्रविभागेन दृष्टत्वाधिकरणं पूर्णम्।

रयित श्रथात्मन इति । सत्यद्वैताविघातकत्वमिति । भावाद्वैताविघानतकत्वमित्यर्थः । श्रभावद्ध्या धर्मा वस्तुतः सन्ति चेत् ते भावा द्वेतं न निद्धन्तीति वर्तु शक्यं न तु ते वस्तुतः सन्ति प्रतिये। गिनां काल्पनिकत्वेन तदधीनिक्षण्यानां तेषामपि काल्पनिकत्वावश्यम्भावादिति परिहारार्थः । धर्माणां तुच्छत्वाभ्युपगमप्रयुक्तं न मृष्यतइति । गताः कलाः पञ्चदश्मित्रष्ठाः षे। इशक्लाः पुरुषायया इति श्रत्योरिति सर्वेश्वरत्वादिगुण-कत्विन्मावद्भपत्वश्रत्योरिप व्यावहारिकपारमार्थिकदृष्टिभ्यामविरे। धे संभवित कस्याश्चन श्रतिनिरालम्बनत्वकल्पना न युक्ता । मृक्तस्यायुक्तद्भपप्रतिबिन्म्बप्रतियोगिकविम्बद्भपपरमेश्वरभावापितश्चावच्चंनीय तिद्वावापत्ती च मृक्ती तुदीयगुणाविभावे। उप्यनिवार्यः । न चैतावता मृक्तस्य चिन्मावद्भपत्व-हानः । परमेश्वरस्येव तद्वावापन्नस्य तस्यापि वस्तुतिश्चन्मावद्भपत्वे। परमेश्वरस्येव तद्वावापन्नस्य तस्यापि वस्तुतिश्चन्मावद्भपत्वे। परमेश्वरस्येव तद्वावापन्नस्य तस्यापि वस्तुतिश्चनमावद्भपत्वे। परमेश्वरस्य ।

मुप्तृ । १८

संकल्पादेव च† तच्छूतेः ॥ ६॥

प्रयतादिसापेन्नसंकलपजन्या इति । श्रादिशब्देन चेष्टाग्रहणं चेष्टाजन्यत्वमपि साध्यत्वमिति समीहितसाध्यलाभाग्रं प्रयत्नादिजन्या इत्येव साध्यं सङ्कल्पजन्यत्वं तु सिद्धान्तिना ऽपि समानं न साध्ये निवेशनीयं प्रयत्ने चादृष्टाद्वारकत्वं विशेषणं तेनोपासनाकालकर्त्व्यासनबन्धाद्युपयोगि-प्रयत्नजन्यत्वेनार्थान्तरम् । मेगसाधनत्वादिति । ननु सकलभोक्तृभोग-साधनेषु परमेश्वरेण प्रयत्नं विना सृज्येषु महाभूतेषु व्यभिचारः । न च भोगे-ष्वसृष्टिसङ्कल्पियतृगतत्वं विशेषणं परमेश्वरस्यापि भूतभौतिकसाध्यभागस-द्वावस्य भोगमाचसाम्यलङ्गाच्चिति सूचे वन्त्यमाणत्वादिति चेद् न । तत्तेजो-सृजतेत्याद्याख्याते।क्तेन तदात्मनः स्वयमकुक्तेत्यादिधातूक्तेन च परमे-श्वरेण यत्नेन साध्यत्वस्य तेजः प्रभृतिष्वपि सत्वात् । न चेवं योगिसङ्कल्प-जन्यपिचादिष्वपि परमेश्वरप्रयत्नजन्यत्वेनार्थान्तरं यस्य यद्वोगः साधनं तत्प्रयत्नजन्यत्वस्य साध्यत्वात् । न चेवं सित पश्वादिभोगसाधनेष्वाटविक-तृगादिषु व्यभिचारः । साध्यादुत्कृष्टस्य संकल्पजत्वस्य हेते। निवेशनात् ।

[&]quot; श्रन वतीयम् ब्रास्टाधिकरणं पूर्णम्।

[†] एव त्यिति पाठान्तरम् ।

म चैवं सति तावनमाचमेव हेतुः स्थादिति वाच्यम् । मनारयसृष्टस्त्र गं व्यभिचारवारणाय भागमाधनत्वस्यापि वक्तव्यत्वात्। सत्ताप्रयुक्तेति । य-चित् पद्पदार्थानवगममात्रइति । त्रावापाद्वापाभ्यामस्य पदस्यायमधे इति शक्तिग्रहरावानुमानापेचा न तु श्रुतिवाक्यार्थवोधे संकल्पन-पिचादिपचकानुमाने त्वनुमित्युत्पादनायास्ति पचिद्धार्थे स्रुत्यपेचा स्रतः श्रत्येवानुमानं साध्यमित्यर्थः । श्रगस्त्यकृतसमुद्रपानवदिति । यद्यपि उ समुद्रपानं तन्मुखसंयोजननिगरगप्रयत्नजन्यमिति वतुं शक्यं तयापि समुद्रस्य यः सकृदेव पयःपानयोग्यतापादको ऽल्पीभावः श्रनल्पस्य वा मुखे कुचौ च मानं तदेव ये।गमामर्थ्यसृष्टमिह दृष्टान्त:*॥

ञ्रभावं बादरिराह्य द्योवम्॥ १०॥

प्रथ्र । १४

न च मनः परैर्दश्यतइति । परे दृष्ट्वा खलु संवदेयुः मनामाचं परै-द्वेष्टुं शक्यमिति तत्संवादपर्यन्तः पुष्कले। भागा न विध्येदित्यर्थः। न च स्य-सदेहरहितस्य स्वकर्तृकत्वाभिवदनमपि न स्यादिति वतुं शक्ये कथं तदृर्श-नसाध्यपरकतृकाभिवदनमाचासंभव उक्त इति शङ्कनीयम् । पर्यङ्कविद्यायामः चिरादिमार्गेण गच्छत: स्थूलदेहरहितस्यापि चन्द्रेण सह संवादस्य शुतस्य मूदमदेहमाचेण कयं चिदुपपादनीया यथा तद्वदस्याप्युपपादियतुं शक्यत्वात् । न च परकर्तृकाभिवदनमपि चन्द्राभिवदनवदुपपादियतुं शक्यमिति बाच्यम् । श्रातिवाहिकदेवतारुपस्य चन्द्रस्येव संकल्पसृष्टृिषचादीनां मनामाचाविशिष्टृवि-षयदर्थनानुपपतेः । दृष्टान्तं विभजतइति । द्वादशाहस्य सचत्वमासनापा-यिचे।दनेन यजमानबहुत्वेन च संचशब्दाभिसंयागाद्† यजतिचादनादहीनत्वं स्वामिनां चास्थितपरिमाग्रत्वा‡दिति जैमिनिसूचाभ्यां सचाहीनलव्यग्रीकिपूर्वकं तदुभयनवणयागाद् द्विविधा द्वादशाह इत्युक्तं तद्रुष्टान्तं विभजतइत्यर्थः ।

त्रासनोपियम्यां ﴿ चेादनइति । उण्यूर्वादिण् गताविति धातीर्धाः धूध्३ । १२ तुनिर्देशार्थे इक्पत्यये इणे। यणिति धात्विकारस्य यकारादेशे च सति उपः यीति हृपेण भाव्यम् । उपेयीति हृपं तु यकारादेशस्थाने इयङादेशे सति भवति न तु स युज्यते । यक्प्रत्ययस्य किन्वादुर्गनिषेधे सति प्राप्रस्य तस्ये-

^{*} अप्रच चतुर्थ संकाल्पाधिकारणां पूर्णम् । † जै॰ सू॰ अ॰ ९० णा॰ ६ सू॰ ४०।

[‡] कि मूर् प्रारं ९० पार्ट सूर् ६०। 🖇 प्रासने।पायिभ्यासिति कर्पुः पाठः ।

वापवादार्थिमिणा यणिति विधानात् । तस्मादुपयीत्येव पाठः । यदि त्वच क्ष विद्यवादिवषये उप्युत्सर्गे उभिनिविश्वतहित परिभाषा समाश्रीयते तदा उपयोत्यिष पाठः साधुः । उपायीति पाठस्तु मीमांसक्षयन्येषु प्रायिकः स तूक्तधातिर्धात्वर्थनिदेशार्थ श्रीणादिके उक्षारप्रत्यये सार्वधातुकार्धधातुक-लच्चणे धात्विकारस्य गुणे श्रयादेशे पूर्वसवर्णदीर्थे च सित साधुः । श्रासनोपायिचादनयोरन्यतरत्वं सत्रवाच्चणिमिति । श्रासनचादनाव्वत्वं षडहेनापासीतित्यहीनगतषडहे श्रवणात् तचातिव्याप्रमिति शङ्काया-मासिचादनायामनुपस्रष्टत्वं विशेषणं देयम् । टीकायामुपायिचादनस्वादा-हरणद्वयमुक्तम् श्रीसचादनं स्वयमुदाहर्गत सप्तद्शावरा इति ।

७० । इध्य

नियतकर्षकत्वमहीन जन्तणमुक्तमिति । मीमां सामाध्ये त्वही-नद्वादशाहस्य गको है। बहवो वा कर्नार इत्यनियतसंख्यकर्तृकत्वं सबद्वाद-शाहस्य बहव एव कर्नार इति नियतसंख्यकतृकत्वं चे। तम् । ऋहीनानां हि यजितचादनेन विधानं द्विरावेण यजेतेत्येवमादिना सवाणां तु नियतं परि-माणं बहव एवेति । एवं च मीमांसाभाष्यकारमते ऋस्थितपरिमाणत्वादिति सीचपदविभागः । अञ्चवस्थितपरिमागुत्वादित्यर्थः । टीकाकारमते त्वा-स्थितपरिमाणत्वादिति नियतपरिमाणत्वादित्यर्थः । ऋहीनद्वादशाहस्यैत्र एव कर्तेति निवता कर्तृसंख्या सत्रस्य तु सप्रदशावराश्चतुर्विशतिपरमा इत्यनियता कर्तृषंख्येति । मतद्वयमपि शाखाभेदाश्रयणेन समाधेयम् । तवाहीनद्वादशाहस्यानियतपंख्ययज्ञमानत्वमुक्तमापस्तम्बयूवे । एका द्वाद-शाहेन यजेत षड् द्वादश चयादश वेति । बाधायनसूचे त्वेक एव यजनान इति नियतसंख्ययजमानत्वमुत्तं द्वादशाहेन यच्यमाया भवत्येका वा बहवा वा यदोका दिवणावता यजेतेति । दिवणावता ऋहीनेन । ऋत एव केश-वस्त्रामी द्वादशाहे। द्विविध: ऋहीन: सर्व च यदोका दीचते ऋहीन: यदि बहवा दीचन्ते सर्वमिति । मीमांसाभाष्यकारमते बहुर्त्वानयतकर्तृक्रत्वं सनस्य तन्नियमरहितकतृंकत्वमहोनस्य च लचणान्तरं द्रष्ट्रव्यम् ।

99 I R9

शरीराभावकालइति । जागरव्यावहारिकशरीराभावकालइत्य-थे: । स्वप्रदृष्टान्तवलेन दृश्यानां पित्रादीनामिव द्रष्टुरुपासकस्यापि वासना-

^{*} मोमांसाग्रन्थेष्त्रिति १ पुः पाः।

प्रभूध । रह

मयप्रातिभाविकशरीरविद्धेः । जागरवत्स्थृत इति । ऋतिस्पष्ट इत्यर्थः । नातिस्पष्टे। हि स्वाप्रशतिभाषः* ॥

प्रदीपवदावेशस्तथा हि दर्शयति ॥ १५ ॥ ५५८ । १ सगुण्विदात्मनापि विद्यासामर्थ्याद् व्याप्तिः संभवतीति ।

ननु तस्य स्त्रहृषेग् विद्यापहितहृषेग्।विद्योपहितहृषेग् वा व्याप्रिराजानसिद्धा न यागप्रभावमपेवते अन्तः करणापहितक्षपेण चेत्सा कथमन्तः करणाद्वहिर्भ-वेत् । उपाधिविकासमन्तरेगोपहितविकासायोगादुपाधेरन्तःकरगस्यापि वि-कासे जीवव्याप्रेरन्तःकरगाटुहिष्ट्रोत्ययोगाद् श्रन्तःकरगान्तरसृष्ट्रिवैयर्थ्यप्रस-ङ्गाच्चिति चेदुच्यते । विद्यासामर्थ्यात्सेद्रियान्तः करग्रेषु शरीरान्तरेषु सृष्टेष्ववि-द्योपहितस्य संगुणाविद्यात्मनस्ततदन्तः करणेषु या ऽभिव्यक्तिस्तदभिप्राया ऽच च्याप्रिशब्द:। त्रयमर्थे। नैजादन्त:करगादित्याद्यग्रिमयन्थेन स्पृष्टीभविष्यति । तच निजं महजमेव नेजं स्वार्थे तद्भितः। महजं निजमाजानमिति नेपगटुकाः। श्वं च युक्तं च तद्विभाविति श्लोकभागे विभुशब्दस्य नानादेशवितेष्वन्तःक-रगोषु युगपदमिव्यक्तिसिद्धर्थम् ऋविद्यापहितहृपेण व्याप्रिमन्वं युगपतावदन्तः-करगाचिष्ठानसिद्धार्थे तदुपये।गिविद्यास।मध्येद्धपं च वैभवमर्थे इत्युक्तं भवित । न चैक्र्यामावे भेदादिति न हेतु: साध्याविशेषादित्याशङ्क्य व्याच्छे भेद्पती-तेरित्यर्थे इति । न तर्हाद्वन्नतैनवर्तिनीनामिति नजा महितं पाठमाथि-त्य निषेयास्येकस्येकस्यानुषङ्गं कृत्वा भेदावित्यस्य भेदातीतेरित्यर्थे इत्युक्तः । टीकायां नजा रहितापि पाठा दृश्यते तच नानुषङ्गादिक्षेण: । एकासिप्रा-येति । परस्पराविरोध्यभिप्रायवन्वमित्यर्थः । संपन्नः केवला मुक्त इत्यादि-टीकाग्रन्थस्थार्थमाह यो मुक्तः स ब्रह्मसंपन्न इत्युच्यतइत्यादिना ।॥

जगद्भापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाञ्च ॥ १० ॥

टीकायां यथा सविकारे ब्रह्मग्युपास्यमाने वस्तुनः स्थितमपि तस्य निर्विकारं रूपं न प्राप्यते तत्कस्य हेताः ज्ञतत्क्रतुत्वादुपासक्रस्येति यन्थान-न्तरं तत्वेषासनासु हि पुरुषक्रतुत्वमिति वाक्यमाचार्णेदृष्ट्रमस्ति तदवतार्य व्याख्यायते यथा सगुणब्रह्मणि स्थितमपीत्यादिना निर्गुणचिन्तकत्व-मित्यन्तेन। टीकायां पर्यायेण सृष्टिसंहारी स्थातामित्येतदनन्तरपठितं न चेति

^{*} श्रत्र पञ्चमम् स्रभावाधिकरणं पूर्णम् । 🕂 सत्र पष्टं प्रदीपाधिकरणं पूर्णम् ।

वाक्यं तद्धेतुवाक्यं च मानुषङ्गं से।पर्णतकं व्याच्छे यदीति । श्रव न वा सृष्टि-संहारी द्वाविष स्यातः मित्यनेन न चेत्यस्य पूर्ववाक्यान्निषेध्यानुषङ्गेणार्थे उतः । तव न चेति वाक्यार्थे द्वाविष न स्यातामित्यिस्मन् टीकाेन्तो हेतुरुभये।: सृष्टुसंह-चें।रीश्वरत्वविद्यातादित्यनेनानूदितः । ईश्वरत्वविद्याते उपपतिरिक्छाप्रतिहति-यदि विस्तृत्वासंजिहीषयाः सत्यारिष सृष्टिसमये संहारः स्यादित्यनेन दिशेता। सत्युपलवणं किंचिदिक्छाधीनसंहारसमये उन्येक्छाधीनसृष्टिनं स्यादित्य-स्यापि । यवं हि द्वयारपीश्वरत्वविद्याते हेतुरिक्छाप्रतिद्याता दिशेता भवति ।

ननु सगुणापास्तिषु तहीति । यद्यपि सत्यकामत्वादीनां निरङ्कण-भूते । ह त्वांशस्थापासनाविषयत्वे ऽपि न तत्क्रतुन्यायविरोधः तस्य न्यायस्थापासक-लभ्यगुगामाचविषयतया पंकोचनीयत्वेन नित्यत्वादिति श्लोकोत्तन्यायैस्तदल-भ्यस्य निरङ्क्षशत्वांशस्य तन्यायविषयत्वात्। श्रन्यथा कार्णं तु ध्येय: सर्वेश्व-येसंपन्नः सर्वेश्वरस्य शंभुराकाशमध्यदत्यादियुत्युक्तसर्वेश्वर्यादिविशिष्टेषामः नायां का गतिः का च गतिः सर्वास्वप्यहंग्रहोपासनास्वभेदोल्लेखे ऋहंग्रहोपा-सकाः खल्वभेदेने।पास्याप्यविद्योपाधिनिषृत्यभावाद् भेदेनैवावितष्ठन्ते तथापि तत्कतुन्यायः क्ष चित्संकोचनीया जात इत्येतावता सत्यकामादिष्वयुतं निरङ्क-श्रात्वमुपास्यं परिकल्य तत्रापि तस्य संकोचकल्पनमयुक्तम् । क्राप्रेन हि विशेष-शास्त्रेण सामान्यशास्त्रस्य संकोचा न तु कल्प्येनापीति तात्पर्य्यम्। तदिदमुक्तं न हि निरवग्रहसत्यकामत्वादिगुणकमीश्वरसुपासीतेति श्रुतिरस्ती-ति । श्रापे। वै खलु मीयन्ते लेकोसावितीति श्रुतिवाक्यस्य टीकायाम् श्रप्-शब्दे।पलिचतानि भूतानि लोकशब्दे।पलिचतिहरएयगर्भबुद्धो।पास्यन्ते इत्यशैं। दर्शित:। त्रयमथे। भाष्यकारागामिमां श्रुति भागसाम्यार्थत्वेनादाहृतवताम् श्राशयस्था न भवतीति स्वयमन्यथा व्याचष्टे तं ब्रह्मलेकिगतमित्यादिना शा इति म्रोमद्भरद्वाजकुलजलधिकौस्तुभम्रोमदद्भैतविद्याचायेविश्वजिद्याजिम्री-

रङ्गराजाध्वरिवरसूनेारणयदीचितस्य कृते। वेदान्तकल्पतस्-परिमले चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः ।

> समाप्तश्च फलाख्यश्चतुर्थे। ऽध्यायः । समाप्तरचायं ग्रन्थः ॥ शुभमस्त् ।

" अत्र सप्तमं जगस्त्रापाराधिकरणं पूर्णम्।